LIMITED, NEW DELHI

.... 20........ 292 **DEBIT**

Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	P.	TOTAL Rs.	P.

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१



॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANIES & HERBS)

(२)

[संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी-१



॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१



॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

& HERBS)

(तीसरा भाग)

लेखक—

श्रीचन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी-१

वि० सं० २०२१] चतुर्थ संस्करण [ई० १९६४

प्रकाशक:—
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
पोस्ट बाक्स नं० ८ वाराणसी

पूरा सेट १० भाग, मूल्य ४०-००
प्रत्येक भाग का मूल्य ५-००

मुद्रक---विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-१

विषय सूची नं० १

हिन्दी नाम

विषय सूची नं० २

संस्कृत नाम

विषय सूची नं० ३

मराठी नाम

विषय सूची नं० ४

बंगाली नाम

INDEX

(Latin Names)



॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(तीसरा भाग)

काँस

नाम—संस्कृत—काशः, सुकाण्डः, काकत्तुः, शिरी। मारवाड़ी—काँस। हिन्दी—काँस। गुजराती—काँसड़ो। मराठी—कसई, कसाड़। बंगाली—केशोर, कशाड़। पंजाबी—कास, किलक। तेलगू—रेलु। लेटिन—Saccharum Apontaneum (सेकेहरम एपोण्टेनम), S. Semidecumbus (सेकेहरम सेमीडेकम्बन)।

वर्णन—यह एक प्रकार की घास होती है। जिस जमीन में यह घास पैदा होती है, उसमें कोई दूसरी फसल पैदा नहीं होती। इसका कारण यह है कि इसकी जड़ें बहुत गहरी बैठती हैं और वे जमीन के सब कीमती तत्वों को चूस लेती हैं। इसलिये दूसरी फसलें पनप नहीं सकतीं। आजकल के कृषि विद्या-विशारदों ने काँस की जड़ों को नष्ट करने के लिये नये-नये औजार बनाये हैं, मगर अभी तक उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली है। शरद् ऋतु में इस घांस पर सफेद सफेद सुन्दर मंजरियाँ लगती हैं, जिससे इस घास की परीक्षा आसानी से हो जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कांस शीतल, मधुर, तृप्तिकारक, रोचक, बल और वीर्य को बढ़ाने वाला, पचने में मधुर, पेट को मुलायम करनेवाला और स्निग्ध होता है।

पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, पथरी, रुधिरविकार, रक्तपित्त, क्षतक्षय और पित्त के रोगों में यह लाभदायक है। इसकी और गोखरू की जड़ को मिश्री के साथ औटाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

कासिम

नाम—यूनानी—कासिम।

वर्णन—एक यूनानी ग्रंथकार के मतानुसार यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसकी डालियाँ बहुत पतली पत्ते इक्लिलुल्मुल्क के पत्तों की तरह, बीज काले, ठोस, और खुशबूदार होते हैं। गिलानी के मतानुसार इसकी जड़ को इस्तरगाज कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह मेदे और मसाने के जमे हुए खून को बिखेर देती है और मूत्रल है। यह सर्दी के दर्द, फालिज और जलोदर में लाभदायक है। इसके बीजों को ६ रत्ती की मात्रा में १० दिन तक शराब के साथ देने से गुर्दे का दर्द जाता रहता है। यह गरम मिजाजवालों को नुकसान पहुँचाती है और उनमें सिर दर्द पैदा करती है।

कांसी

नाम—संस्कृत—काँस्य, विद्युत प्रिय, कंस, ताम्रार्ध, प्रकाश, घंटाशब्द, इत्यादि। हिन्दी—काँसा, काँसी। बंगाल—काँसा। मराठी—काँसे। गुजराती—काँस। कर्नाटकी—कंचु। अंग्रेजी—Bell metal, Bronze। फारसी—राइन। अरबी—तालिकुन।

वर्णन—यह एक उपधातु होती है जो ताँबे और राँगे के संयोग से बनती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से काँसा कसेला, कड़वा, गरम, लेखन, विशद, कुछ दस्तावर, भारी, नेत्रों को हितकारी, रूखा और कफ पित्त को दूर करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क होती है। यह वमन को बन्द करती है, बुद्धि को ताकत देती है, सूजन को बिखेरती है।

खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि काँसी का एक तख्ता आयने के बराबर बना कर अन्धेरे मकान में लटकाया जाय और लकवे का रोगी उस मकान में रह कर हमेशा उसको देखता रहे तो उसका रोग मिट जाता है।

काँसी को भी दूसरी धातु, उपधातुओं की तरह शुद्ध करके उसकी भस्म बनानी चाहिये और उसके बाद उसका उपयोग करना चाहिये। अशुद्ध हालत में इसका उपयोग करने से अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े होते हैं।

किरालू

नाम—पंजाब—किरालू, किरिक, कुकरी। अरबी—साँप की खूंब। लेटिन—Arisaema Speciosum (एरिसेमा स्पेसिओसम)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से सिक्किम तक और भूटान में पाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सर्पदंश में फायदा पहुँचाती है।

कुकुरबिचा

नाम—हिन्दी—कुकुरबिचा। अरबी—कर्फेटुसा। उर्दू—ककरून्दे रूमी। फारसी—करफासमी। बम्बई—गोवली। तेलगू—जीवीलिके। मराठी—गोवाली। लेटिन—Grewia polygama (ग्रेवियापोलिगेमा)।

वर्णन—यह क्षुप जाति का छोटा पौधा होता है। इसकी शाखाएँ नाजुक होती हैं, यह वनस्पति सूखी जमीनों में सर्वत्र होती है। कोंकण, नीलगिरी घाट और सिन्ध से पूर्व की तरफ ४५०० फीट की ऊँचाई पर हिमालय प्रान्त में विशेष रूप से होती है। इसके पत्ते शल्याकृति, कटी हुई किनारों के, फूल सफेद और फल बादामी, चमकीले और रुएँदार होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक कड़वी, दूसरी निःस्वाद। कड़वी जाति के पत्ते कृमिनाशक; प्रदाह को कम करने वाले तथा नाक और आँख की बीमारी में उपयोगी होते हैं। इस वृक्ष की जड़ आँतों को सिकोड़ने वाली, तथा विसूचिका, हड़काव (पागल कुत्ते का विष), मूत्राशय की तकलीफ और बवासीर में लाभ पहुँचाने वाली होती है।

दूसरी जाति के पत्ते बेस्वाद होते हैं। ये रेचक, कफनिस्सारक, पेट के आफरे को दूर करने वाले, ऋतुस्राव नियामक, दुग्धवर्धक और घाव को भरने वाले होते हैं। बवासीर, गठिया, जोड़ों के दर्द, नेत्र रोग और तिल्ली के बढ़ने पर ये लाभदायक हैं।

केम्पबेल के मतानुसार इसका फल सन्थाल लोगों के द्वारा अतिसार और आमातिसार में काम में लिया जाता है। घावों की सफाई के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

कुकुरजिव्हा

नाम—संस्कृत—कर्कटजिवा, कुकुरजिवा। हिन्दी—कुकुरजिव्हा। बंगाल—कुकुरजिवा। मराठी—कर्कणी, क्दिनों। तामिल—नियाक्रू। तेलगू—अक्कदोस। उड़िया—बन तुलसी। कनाड़ी—अन्दिलु। मलयालम—नेलुप, मनिपिरता। लेटिन—Leea Sambucina (लीआ सेम्बुसिना)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा पौधा होता है। यह सारे भारतवर्ष में पैदा होता है, मगर विशेषकर दक्षिणी कोंकण में बहुत पैदा होता है। इसकी शाखाएँ बहुत सीधी और हरी रहती है, इसके पत्ते छोटे

बड़े कई प्रकार के होते हैं। इसका फल ६ से ८ मिली मीटर तक लम्बा होता है। यह चमकीला, मुलायम और बैगनी रंग का होता है। औषधि के प्रयोग में इसकी जड़ की छाल काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कुकुरजिवा शीतल, तृषा निवारक, स्वेदजनक और पाचक होती है।

गोवा के पुर्तगीज लोग इसे रक्तातिसार और जीर्ण आमातीसार में देने के काम लेते है।। इसके भूँजे हुए पत्ते सर पर लगाने से सर में आने वाले चक्कर मिट जाते हैं। इसकी छोटी पत्तियों का रस पाचक होता है।

किरायता छोटा

नाम—संस्कृत—कृमिहरिता। हिन्दी—छोटा किरायता। बंगाली—नागजिव्हा। बम्बई—मामेजवा, गुजराती—मामेजवो। मराठी—मामेजवा। कठियावाड़—मामेजू। मद्रास—वेलारुन्नु। सिंध—मनुचा, तामील—वल्लरी। तेलगू - नेलागुलि। लेटिन—Enicostemma Litorale (एनीकोस्टेमा लिटोरेली)

वर्णन—यह छोटी जाति का क्षुप समुद्र के किनारे व तर जमीन में होता है। बंगाल में यह नहीं होता। गुजरात और उत्तर कोकण में यह बहुत होता है। यह पौधा फुट भर ऊँचा होता है। इसकी शाखाएँ जमीन के बराबर से ही फूट जाती हैं। इसके पत्ते सनाय के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति तिक्त और कटु होती है। यह कृमिनाशक रहती है, यह ज्वर और वात व्याधियों पर भी लाभदायक होती है।

डाक्टर चोपरा के मत के मुताबिक यह वनस्पति भारत के कुछ भागों में छोटा किरायता के नाम से जानी हुई है। इसके फूल वाले पौधे अग्निप्रवर्द्धक, पेट का आफरा उतारने वाले और कटु पौष्टिक औषधि के तौर पर काम में लिये जाते हैं।

कुचले का मलंगा

नाम—हिन्दी—कुचले का मलंगा। बंगाल—बन्दा, परगटचा। दक्षिण—कुचलेची सोनकन, काजरया चे बांडगुल। तामिल—पुलरुई, उच्चिचेडि। तेलगू—बदानिका, वाजिनिका। नीलगिरी—पोलोरिव। लेटिन—Viscum Monoicum (विस्कम मोनोइकम)

वर्णन—यह एक प्रकार की झाड़ीनुमा वेल होती है। जो कुचले के झाड़ पर चढ़ती है। इस के पत्ते औषधि के रूप में काम में लिये जाते हैं। यह अवध, सिक्किम, खासिया पहाड़ी, छोटा नागपुर, बिहार और दक्षिण भारत में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव— इस वनस्पति के गुण और धर्म भी साधारणतया कुचले के समान ही होते हैं। इसके सूखे पत्तों का चूर्ण कलकत्ता के मेडिकल कालेज में स्ट्रिकनिया और ब्रूसाइन के बदले सफलतापूर्वक काम में लिया गया। इसकी मात्रा १ से लेकर ३ ग्रेन तक है और दिन में तीन बार दिया जाता है।

विषम ज्वर और आमवात में इस औषधि को हींग के साथ देने से लाभ होता है। इसके पत्तों को पीसकर आमवात में लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

कुचिला लता

नाम—संस्कृत—विदारलता, कुचलवल्लि, कटुकवल्लि। हिन्दी—कुचिलालता। बंगाली—कुचिलालता। गुजराती—गोवागारी लाकड़। मराठी—गोगारी लकड़ी। कोकण—काजरवेल। तेलगू—नाग मुसड़ी। लेटिन—Strychnos Colubriana (स्ट्रिकनोस कोलूब्रिएना)

वर्णन—यह एक बड़ी जाति की वेल होती है जो विशेषकर हिन्दुस्तान के दक्षिणी हिस्से में होती है। इसका तना मोटा, लकड़ी सख्त, छाल राख के रंग की, पत्ते दालचीनी के पत्तों की तरह तीन २ सिरे वाले, फूल छोटे और फल अहमदाबादी वेर की तरह होते हैं, इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है, औषधि प्रयोग में इसकी लड़की और पत्ते काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कुचिलालता पौष्टिक, कृमिनाशक, चर्म रोग नाशक और ज्वरघ्न होती है। यह कुचले की तरह ही जहरीली होती है। कुचले में पाये जाने वाले दोनों प्रकार के विषैले द्रव्य इसमें भी पाये जाते हैं। इसको अधिक मात्रा में देने से शरीर में वमन इत्यादि विषैले लक्षण पैदा हो जाते हैं। चातुर्थिक ज्वर और तिजारी ज्वर में यह एक उत्तम औषधि है। हड्डियों में बसे हुए ज्वर को दूर करने के लिये इसका काढ़ा दिया जाता है। माता की बीमारी में दर्द और सूजन को कम करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

सन्धिवात में इसकी जड़ को काली मिरच के साथ तेल में औटा कर उस तेल की मालिश किया जाता है। विद्रधि नामक दुष्ट व्रण पर इसके पत्तों को काजू के साथ पीस कर लेप किया जाता है।

तैलंगी वैद्य इसकी जड़ की लड़की को नाग और दूसरे विषैले सर्पों के विष में एक महौषधि समझते हैं। विष को दूर करने के लिये इसका बाह्य और अन्तःप्रयोग किया जाता है। मसूरिका की सूजन और कष्ट निवारण में भी यह मुफीद है।

इसका कुचला हुआ फल उग्र उन्माद के रोगी के सिर पर लगाने से फायदा होता है। इसकी जड़ को काली मिरच के साथ पीस कर देने से अतिसार में लाभ पहुँचता है। यह जड़ तेल में उबाल कर सन्धियों के कष्ट को दूर करने के लिये मरहम रूप में उपयोग में ली जाती है, जावा में इसकी जड़ कुछ चर्म रोगों में बाह्य प्रयोग में ली जाती है। इसकी जड़ ज्वरनाशक है।

केस महस्कर के मतानुसार इसकी जड़ सर्पदंश में निरुपयोगी है।

कुंगकु

नाम—हिन्दी—कुङ्गकु, सीखी, केसरी, पापर। नेपाल—नेवार, कसूरी। शिमला—मेरमहाल। लेटिन—Eunoymus tingens.

वर्णन—इस वनस्पति की करीब ४० जातियाँ होती हैं, ये सब जातियाँ एशिया के सम शीतोष्ण भागों में तथा मलाया द्वीप समूह, यूरोप और अमेरिका में पाई जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति बहुत पुराने समय से औषधि के काम में ली जाती है, इसका विवेचन प्लाइनी (Plyni) ने अपने ग्रन्थ में किया है। इस वनस्पति का विरेचक गुण यद्यपि बहुत जोरदार नहीं है, फिर भी यह कल्पना की जाती है कि यह यकृत को उत्तेजित करके पित्त को अधिक मात्रा में शरीर में पहुँचाती है, लीवर की खराबी में, जिसमें कि कब्जियत और अपचन दोनों ही खास तौर से पाये जाते हैं, इस औषधि का उपयोग अन्य औषधियों के साथमें किया जाता है। इसके छिलके में Eunoymol (यूनोमल) Atropurol एट्रोपरोल Euonysterol, यूनसटेरोल और मोनो यूनिस टेरोल Mono euonysterol नामक तत्व पाये जाते हैं। इन्हीं के कारण यह अपना असर दिखाती है।

कुटकी खुरासानी

नाम—हिन्दी खुरासानी। लेटिन—Helleborus Niger (हेलेबोरस नायगर)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, ऋतुस्राव नियामक और कृमि नाशक है। यह वेदनाशून्यता लाने वाली है। यह डिजिटेलस की तरह हृदय को ताकत देने वाली है. कृमिनाशक है, मृगि और चर्म रोगों में काम में ली जाती है। इसमें हेलेबोरिन नामक पदार्थ पाया जाता है।

कुंझि

नाम—हिन्दी—कुंझि गुलखैर। सिंध—खबाजी। बाँबे—खुबासी। दक्षिण—बिलायतीकगोई। सीमा प्रान्त—कंजि; तिलचुनी। फारसी—खितमी कुचक, खूबाजी। लेटिन—Malva Sylvatsris (मालव सिल्वे स्ट्रीस)

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी रुएँदार वनस्पति होती है, इसका पौधा हाथ भर ऊँचा होता है। इसके पत्ते गोल

और छिलका रुएँदार होता है। फूल पीले और सुन्दर तथा फल पीले और छोटे होते हैं। इसके फल खुबाजी के नाम से बिकते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के तमाम हिस्से शीतल और चिकने होते हैं। यह औषधि ज्वरनाशक, और पलकों की सूजन के लिए मुफीद है। भीतरी प्रयोग में देने से यह कंठ रोग (thrott) पुरानी ब्रोङ्काइटीज, पीलिया और तिल्ली की वृद्धि पर लाभ करती हैं। यह पेशाब की अधिकता, सुजाक और पथरी पर भी लाभदायक है।

अँतड़ियों के आक्षेपजनक मरोड़ पर इसकी वस्ति (एनिमा) देने से लाभ होता है। बाहरी सूजन पर इसका पुल्टिस चढ़ाया जाता है।

कोमान के मतानुसार यह फेफड़े की म्यूकस झिल्ली की विकृति और मूत्राशय के रोगों में उपयोग में ली जाती है। जुकाम और ब्रोङ्काइटीज में भी दी गई मगर इसका परिणाम निराशाजनक रहा है।

कुत्रा

नाम—हिन्दी—कुत्रा। लेटिन—लिम्नोफिला ग्रेटिसिमा Limnophila Gratissima.।

गुण-दोष—आयुर्वेद के मत से इस वनस्पति का रस ज्वर में शीतलता लाने वाली औषधि के तौर पर काम में लिया जाता है। यह माताओं के दूध की खराबी दूर करने के लिये उन्हें दिया जाता है। यह एक उत्तम कृमिघ्न वस्तु है।

कुत्री घास

नाम—संस्कृत—पण्यगन्धा, कंगुनी पत्रा। हिन्दी—बन काँगनी, बाँदरा, गीदड़मुच्छा। गुजराती—कूंची, कुटेलो, कुचीरी। मराठी—भाडली, कोलर। कच्छी—झीपटी, बड़ी झीपटी। लेटिन—Setaria glansa (सेटेरिया ग्लेंसा)।

वर्णन—यह एक प्रकार की घास होती है। जो बरसात के दिनों में सब जगह पैदा होती है। इसको सब पहिचानते हैं, क्योंकि इसके ऊपर एक बारीक रुंएवाली मञ्जरी लगती है जो आदमियों के कपड़ों में और ढोरों की पूंछों पर चिपक जाती है। इस घास को कच्ची हालत में पशु खाते हैं और सूखी हालत में यह काँच के सामान को पैक करने के काम में ली जाती है। इसकी तीन जातियाँ होती हैं। एक बड़ी मंजरीवाली, दूसरी मझली मंजरीवाली और तीसरी छोटी मंजरीवाली। इनमें से मझली मंजरीवाली औषधि उपयोग में उत्तम होती है। इसके पौधे २ से ३ फुट तक ऊँचे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। पर गुजरात के आधुनिक आयुर्वेद जगत् में यह औषधि सर्प-विष के लिये एक उत्तम वस्तु सिद्ध हुई है जिसका गुजरात के सामयिक पत्रों में समय-समय पर काफी उल्लेख हुआ है।

"जंगलनी जड़ी बूँटी" नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि सन् १९१० के श्रावण मास की जन्माष्टमी के दिन एक स्त्री को एक जहरीले साँप ने काटा। वह स्त्री एक मन्त्रशास्त्री के पास लाई गई पर कुछ फायदा न हुआ। तब हमारे पास लाई गई। हमने उसे कुत्री का रस पिलाया, दंश स्थान पर मसला और आँखों में आंजा, मगर उससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तब फिर से दूसरा रस निकाल कर उसमें शुद्ध किये हुए जमालगोटे का एक बीज थोड़ा-सा घिस कर उसकी आँख में आँजा, जिससे आश्चर्यजनक रूप से ५ मिनट के अन्दर उसका जहर उतर गया। जमाल गोटे को आँजने से उसके नेत्रों में भयंकर जलन हुई, मगर वह २, ४ बार घी आँजने से शान्त हो गई।

इसी प्रकार और भी दूसरे कई साँप के काटे हुये लोगों पर इस घास के रस का प्रयोग किया गया और उससे उन लोगों को लाभ हुआ, जहाँ पर अकेले इसके रस से लाभ न हुआ वहाँ जमालगोटे को इसके रस में घिस कर आँख में आँजने से निश्चित रूप से सफलता हुई।

इस रस को देने की क्रिया इस प्रकार है।

ताजी हरी कुत्री घास को लाकर उसको कूट कर रस निकाल लेना चाहिये। जिसको साँप ने काटा हो उसकी

आयु का विचार करके २ तोले से १० तोले तक रस पिला देना चाहिये और उसके काटने की जगह यह रस मसलना चाहिये तथा इस रस में एक जमालगोटे का बीज घिस कर आँख में आँजना चाहिये। जब तक जहर पूरी तरह से दूर न हो जाय, तब तक ये क्रियाएँ बारम्बार चालू रखना चाहिये।

चूँकि यह घास बारहों महीने हरी नहीं मिलती है, इसलिये जिसको बारहों महीने रखने की आवश्यकता हो उसे चाहिये कि इस घास को पकने पर हरी हालत में काट कर छाया में सुखा कर रख ले। जब जरूरत हो तब उस घास को कूटकर उसका क्वाथ बनाकर उपयोग में ले लेना चाहिये। अथवा मौसम के ऊपर इसका सेर भर रस निकाल कर उसमें पाव भर रेक्टीफाइड स्पिरिट मिला कर रख लेना चाहिये। जब जरूरत हो तब इसका उपयोग करना चाहिये।

इसके सिवाय यह औषधि मूत्रकृच्छ्र (सूजाक) रोग में भी बड़ी लाभदायक है। इसके बीजों का चूर्ण करके तीन माशे की मात्रा में ४ तोले बकरी के मूत्र के साथ दिन में दो बार ७ दिन तक लेने से कुछ दिनों में यह रोग दूर हो जाता है।

प्रमेह में भी इस औषधि के चूर्ण को ६ माशे की मात्रा में शक्कर के साथ दिन में ३ बार लेने से लाभ होता है।

दाद के ऊपर भी इसका रस चुपड़ने से बड़ा लाभ होता है।

कुदल चुरिकि

नाम—बंगाली—मुटियाल्लता। नेपाल—गुकि। मराठी—दपोली, गइमरिल। मलाबार—कुदल चुरिकि। कनारी—नेलनेकरे। कोंकण—भूयाननकरि। सिंगापुर—गेटकला। मलयालम्—भरिगुटी, क्रेनिका।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी घाट की तर जमीन पर पैदा होती है। यह भारतीय प्रायद्वीप के किनारों पर कोंकण से केपकामोरिन तक व सीलोन तक होती है। सीकिम में इसके पत्ते चावल के साथ उबाल लिये जाते हैं और वे खाने के काम में लिये जाते हैं। इसके अन्य गुणों का उल्लेख नहीं है। ये पत्ते दक्षिणी केनाड़ा में सभी प्रकार की आँतों की शिकायतों के लिये, अतिसार और रक्तातिसार के लिये व आमातिसार के लिये काम में लिये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—भण्डारकर ने सन् १९२९-३० में इसका परीक्षण किया है। उन्होंने इस सारी वनस्पति के रस और क्वाथ दोनों को अजमाया और वे सन्तोषजनक परिणाम पर पहुँचे। ये आमातिसार पर असर पहुँचाते हैं। जो मरीज एमेटाइन की पिचकारी से भी दुरुस्त न हुए उन्हें भी इनसे फायदा पहुँचा। यह वनस्पति विषैली नहीं है और यह छोटे बच्चों को भी दी जा सकती है। इसका असर विशूचिका की बीमारी में भी पाया गया। यह तीव्र और पुराने वृहदन्त्र प्रदाह में फायदा पहुँचाती है। मद्रास प्रेसीडेन्सी में हैजे का प्रकोप होने पर इसे हैजे में अजमाया गया और इससे उत्तम लाभ हुआ। कुछ अन्य लोगों का मत है कि यह अतिसार में इतनी लाभदायक नहीं है जितनी कि बताई जाती है। दीक्षित का कहना है कि पेचिश की बीमारी में इसकी जो उपयोगिता बताई जाती है वह सत्य नहीं मालूम पड़ती। उन्होंने एमेबिक आमातिसार में करीब ८ बीमारों पर इसका प्रयोग किया, किन्तु लाभ न हुआ। इसका लगातार चार रोज तक इस्तेमाल किया, किन्तु कृमि उसी तादाद में पाये गये। यह अतिसार में भले ही कारगर हो क्योंकि इसमें टेनिन्स की मात्रा रहती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह स्निग्धकारक है और पेचिश तथा विसूचिका में काम में ली जाती है।

कुन्द

नाम—संस्कृत—अतिमुक्त, अट्टहास; अट्टपुष्पक, व्रणबन्धु, दलकोष, कुन्द, मकरंद, मनोदन, वसन्त, कुन्दो, कुन्दफल। बंगाली—कुन्द, कुन्दफूल। कनाडी—कुन्द। मराठी—मोगरा, कस्तूरी मोगरा। तामिल—मगरंदम्, मेलिगई। तेलगू—कुन्दम। लेटिन—Gasminum Pubescens (जेसमिनम प्यूबिसेन्स)।

वर्णन—यह एक झाड़ीदार पौधा होता है। इसका वृक्ष मोगरे के वृक्ष की तरह होता है, इसके फूल भी मोगरे के फूल की तरह होते हैं मगर खुशबू में उससे कम होते हैं। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कुन्द शीतल, अत्यन्त मधुर, कसैला, सारक, हलका, पाचक,

दीपक, हृदय के लिये पौष्टिक, चरपरा और पित्त रोग, मस्तक रोग, विष, सूजन, आम, रुधिर-विकार और वात को हरनेवाला है।

इसके फूल मृदु विरेचक, पाचक और हृदय को बल देनेवाले होते हैं। ये विषनाशक और वातनाशक हैं। पित्त में, प्रदाह में और खून सम्बन्धी शिकायतों में ये उपयोगी हैं। इसके सूखे हुए पत्तों को पानी में भिगोकर उनका पुल्टिस बनाया जाता है। यह पुल्टिस धीरे २ दुरुस्त होनेवाले घावों पर लाभ पहुँचाता है।

इसकी जड़ और इसके पत्तों का रस सर्प विष के लिये लाभदायक माने जाते हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार ये सर्प विष प्रतिरोधक नहीं है।

कुप्पी

नाम—संस्कृत—हरितमंजरी। हिन्दी—कुप्पी, खोकली, खोकला। बंगाली—खोकाली, खोंकली, कुप्पी, मुक्-झुरि, श्वेतबसन्त, मुरकट। बम्बई—खोकली। गुजराती—वेछिकाँटों, दादरो। तामिल—कुपेमेनि। तेलगू—कुप्पीचेट्ट। लेटिन—Acalypha Indica (एकेलिफा इंडिका)।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। यह १ से १॥ फुट तक ऊँची और रुएं रहित होती है। इसके पत्ते गोल और २·५ से ७·५ से० मी० तक लम्बे होते हैं। ये गोलाकार और तीखी नोंकवाले होते हैं। इसके फूल बहुत छोटे और गुच्छों में लगते हैं। इसके बीज गोल, फिसलनेवाले और हलके बादामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी उष्ण भागों में होती है। औषधि में इसका पंचांग ही काम में आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—डाक्टर जार्ज बिडी (George Bidie) का कथन है कि यह वनस्पति जहाँ पैदा होती है वहाँ इसके पत्ते वमन कराने के लिए एक मशहूर औषधि माने जाते है। इसमें किसी प्रकार का खतरा नहीं है, इसका असर फौरन और निश्चित रूप से होता है। इपिकेकोना की तरह यह आँतों के ऊपर दूषित असर नहीं डालती। यह फुफ्फुस की क्रिया को मदद देती है और उनमें ग्रंथि रस को उत्तेजित करती है, इसके स्वरस की खुराक बच्चों के लिये एक चाय का चम्मच है।

सर्जन (E. W. Savings) इ० डब्ल्यू० सेविंग्ज लिखते हैं कि यह औषधि यूनानी हकीमों द्वारा उन्माद रोग की प्राथमिक अवस्था में बहुत काम में ली जाती है। इसका रस एक ड्राम और क्लोराइड ऑफ सोडियम ६ ग्रेन मिलाकर सवेरे नाक के छेदों में टपकाने से और उसके बाद फव्वारे में स्नान करने से बहुत लाभ होता है, यह वस्तु एक तरह से दिमाग के लिए जुलाब का काम करती है, यह पिलाई भी जाती है और पिलाने से अपना कृमिनाशक और मृदु विरेचक गुण दिखाती है।

इस वनस्पति का ताजा रस सुरक्षित बमनकारक और मृदु विरेचक है, इसके ताजा रस और काढ़े की खुराक १ से लगाकर ४ ड्राम तक और इसकी सूखी हुई वनस्पति की खुराक ५ से लेकर १५ रत्ती तक की है। इसके ताजा पत्तों को पीस कर मलद्वार में रखने से बच्चों की कब्जियत मिट जाती है, इसके पत्तों को मसलकर जहरीले कीड़ों के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं।

सर्जन मेजर जॉन लिकेस्टर के मतानुसार इसके पत्तों का ताजा रस चूने के साथ मिलाकर सन्धिवात की पीड़ाओं पर लगाते हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार बच्चों की श्वासनलिका की सूजन में कुप्पी विशेष उपयोगी होती है। बच्चों के कफ रोगों में कुप्पी के पत्तों के रस के साथ नीम के पत्तों का रस मिलाकर देने से वमन और दस्त की राह से कफ निकल जाता है। प्रौढ़ मनुष्यों के दमे में भी इसको वामक मात्रा में देने से लाभ होता है। श्वासनलिका की सूजन, दमा, फेफड़े की सूजन, और राजयक्ष्मा के रोगों में भी यह वनस्पति लाभदायक है। इसके सूखे पत्तों के क्वाथ में सेंधा नमक मिला कर देने से श्वासोच्छ्वास का कष्ट मिटता है और सूजन भी हलका पड़ता है। इसके पत्तों को पीस कर व्रणों पर बाँधने से व्रण अच्छे हो जाते हैं। खाज, खुजली, दाद इत्यादि चर्मरोगों में इसका स्वरस लगाने से लाभ होता है। अरंडी के तेल के साथ इसका स्वरस मिलाकर आमवात पर मसला जाता है। नीम के बीजों के तेल के साथ कुप्पी का स्वरस मिलाकर आमवात और सब प्रकार के चर्म रोगों पर लगाया जाता है।

डूरी के मतानुसार इसके सूखे पत्ते का चूर्ण पेट के कृमियों को नष्ट करने के लिए बच्चों को खिलाया जाता है। इसके पत्तों का काढ़ा लहसुन के साथ में कृमि नाश के लिए दिया जाता है।

कान के दर्द में इसका स्वरस या इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर टपकाया जाता है। इसके पत्तों को पीसकर गरमी से पैदा हुए घावों पर लेप किया जाता है। रक्तपित्त के कारण पैदा हुये सिर दर्द में भी यह वनस्पति लाभदायक है, इसके सूखे हुए पत्तों का चूर्ण कृमियुक्त घावों में और फोड़ों में फायदा पहुँचाता है। इन वनस्पति के पत्ते साधारण नमक के साथ या चूने के साथ मिलाकर उपयोग करने से परोपजीवी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इसको नीबू के रस के साथ दाद पर भी लगाते हैं। श्वास रोग में इसके साढ़े सात तोले पचांग को २॥ पाव स्पिरिट में डालकर एक बन्द बरतन में ७ दिन तक भिगोना चाहिये और दिन में २-३ बार हिलाते रहना चाहिये। अन्त में मल छानकर उसको बोतल में भर लेना चाहिये। इसमें से २० से लेकर ६० बूँद तक शहद के साथ दिन में २—३ बार देने से दमे के रोग में लाभ होता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार यह एक कफ निस्सारक औषधि है। इसमें मूत्रलगुण भी रहते हैं। यह श्वास नलियों के प्रदाह की एक उपयोगी औषधि है। दमा, निमोनिया और आमवात में भी यह लाभदायक है। यह विरेचक, वमनकारक और कृमिनाशक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वमनकारक है। वायु नलियों के प्रदाह और सर्पदंश पर उपयोगी है। इसमें Acalphine एकेलिफिन नामक तत्व पाया जाता है।

कुम्भी

नाम—संस्कृत—कुम्भी, गिरिकर्णिका, भाद्रेन्दाणि, कैदारि, मधुरेणु। हिन्दी—कुम्भि, कुम्भ, वकंब। बंगाल—कुम्बि, कुन्थ। बम्बई—कुम्भ, महाकटःही, कुम्बिया। गुजराती—कुम्बि। मराठी—कुम्भा, कुम्भसाल। तामील—कुम्बि पेला। मैसूर—गोकल्दू। लेटिन Careya Arborea (केरिया आरबोरिया)।

वर्णन—यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष होता है, इसकी छाल गहरे भूरे रंग की रहती है। इसके पत्ते हाथ-हाथ भर लम्बे रहते हैं। ये गोल और तीखी नोक वाले होते हैं, इसके फूल सफेद और दुर्गन्धयुक्त होते हैं। इसका फल गोल और हरा होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष, सीलोन और मलाया प्रायद्वीप में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल चरपरी, गरम, खुश्क, विष नाशक और कृमिनाशक होती है। यह मन्दाग्नि, उदरशूल, सूखी खाँसी, मूत्ररोग, बवासीर, श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग और मृगी की बीमारी में फायदा पहुँचाती है। इसका फल कसेला और कामेच्छानाशक होता है।

कुम्भी की छाल एक बहुत अच्छी स्तम्भक औषधि है। सूखी खाँसी में इसकी छाल की गोली बनाकर देने से और इसके काढ़े के कुल्ले करने से लाभ होता है। इसके फूल सिंध देश में बच्चा पैदा होने पर पौष्टिक वस्तु की बतौर दिये जाते हैं।

बम्बई में इसके फूल और इसकी ताजी छाल का रस खाँसी और जुकाम में शान्तिदायक वस्तु की तौरपर दिया जाता है।

मानभूमि के संथाल लोग सांप के काटे हुए स्थान पर इसकी ताजा छाल को पीसकर लेप करते हैं और इसकी छाल का रस पीने को देते हैं। चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी छाल अन्य औषधियों के साथ में सर्पदंश में लाभदायक होती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है।

कंबोड़िया में इसकी छाल विस्फोटक ज्वर में बहुत अधिक उपयोगी मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक, शान्तिदायक और सर्प विष में उपयोगी है।

कुम्हटिया

नाम—संस्कृत—श्वेत खदिर। मारवाड़ी—कुम्हटिया। हिन्दी—कुमटा कुंभट। अरबी—औरर, हशाब। कच्छी—खेरियो, धोलोखेर। गुजराती—गौराड़, गोराड़ियो बबूल। सिंध—खोर। लेटिन—Acacia Senegal (एकेशिया सेनेगाल)

वर्णन—यह खेर की जाति का एक वृक्ष होता है, यह विशेष कर राजपूताना और कच्छ में बहुत पैदा होता है, मारवाड़ में इसके बीजों की साग बनाई जाती है, कच्छ में इसको धोला खेर कहते हैं। इसके वृक्ष खेर के पेड़ की तरह ही होते हैं पर खेर की लकड़ी का रङ्ग लाल होता है और इसकी लकड़ी का रंग पीला होता है। इसके पत्ते खेर के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं, इसकी फलियों में तीन से लेकर छः तक बीज होते हैं

गुण, दोष और प्रभाव—औषधि के रूप में विशेषकर इसका गोंद काम में आता है। बबूल खेर, धावड़ीं, इत्यादि पेड़ों के गोंद से इसका गोंद विशेष उत्तम माना जाता है। अंग्रेजी में जिसको गम एकेशिया कहते हैं वह वास्तव में इसी पेड़ का गोंद होता है। इसका गोंद स्निग्ध, शिथिलता लाने वाला और शान्तिदायक होता है। इसको सूजन पर तथा जले हुये स्थानों पर लगाया जाता है। स्तन के अग्रभाग की सूजन पर इसका लेप करने से जलन मिट जाती है, दूसरी जलन करने वाली औषधियों के साथ इसको मिला कर देने से उनकी तीक्ष्णता मिट जाती है, इसके गोंद को पीस कर सूंघने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

इसके प्रयोग से पाकस्थली और आँतों की श्लैष्मिक झिल्लियों की जलन मिट जाती है। इस गोंद को मुँह में रखने से खाँसी में लाभ होता है। इसके शान्तिदायक गुण का प्रभाव मूत्राशय तक होता है। मधुमेह रोग में यह एक प्रकार के खाद्य पदार्थ की तरह दिया जाता है। क्योंकि यह पेट में जाकर शक्कर में परिणत नहीं होता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गोंद शान्तिदायक, स्निग्ध और आँतों के श्लैष्मिक प्रदाह को दूर करने वाला होता है।

कुमुदनी

नाम—संस्कृत—उत्पलिनी, कुमुदिनी, चन्द्रेष्टा, कुवलयिनी, नीलोत्पलिनी। हिन्दी—कुमुदनी, कोई। बंगाल—हलाफूल, नालिफल; श्वेतशुद्धि। मराठी—पांढरे कमल। गुजराती—पोयणा। लेटिन—Nymphaca Alba।

वर्णन—यह कमल ही के समान पानी में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। यह भी लाल, नीले, सफेद फूलों के भेद से ३, ४ प्रकार की होती है। कुमुदनी के फूल कमल के फूलों से छोटे होते हैं। कमल के फूल सूर्य के उदय होने पर खिलते हैं और सूर्यास्त पर बन्द हो जाते हैं मगर कुमुदनी के फूल रात्रि को चन्द्रमा के उदय होने पर खिलते हैं और सूर्य का प्रकाश होते ही बन्द हो जाते हैं। इसके फूल पत्ते के ऊपर ही लगे होते हैं। उसमें जावित्री के समान कोष होता है। उस कोष का फल बन जाता है। कच्ची अवस्था में उसके भीतर लाल दाने रहते हैं और पकने पर वे काले पड़ जाते हैं। इसके फल को भंधोल कहते हैं और इसकी जड़ को सालक कहते हैं। इसकी सफेद फूल वाली बेल काश्मीर, साइबेरिया और यूरोप में होती है। लाल फूल वाली बेल सारे हिन्दुस्तान के गरम प्रान्तों में होती हैं। नीले फूल वाली जाति सारे भारतवर्ष के गरम प्रांतों में तो एशिया और अफ्रिका में होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कुमुद—इसको अरबी में नीलोफर, बम्बई में पांढरे कमल और काश्मीर में नीलोफर तथा त्रिमपोश और लेटिन में निफया एल्बा कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से यह स्वादिष्ट, पचने में कड़वी, कफ नाशक तथा रुधिर विकार, दाह, श्रम और पित्त नाश करने वाली है।

इसकी जड़ लुआबदार और तीक्ष्ण होती है, यह संकोचक, निद्रा दायक और पेचिश को दूर करने वाली होती है। इसके फूल काम शक्ति का ह्रास करने वाले होते हैं, इसके फलों और फूलों को शीत निर्यास अतिसार और ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है।

लाल कुमुद—इसको संस्कृत में रक्त कुमुद, बंगाल में रक्त कमल, अरबी में नुलुफर और हिन्दी में लाल कुमुद और लेटिन में N. Pubra कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से इसके फूल कुछ कड़वे, मधुर, शीतल, रक्तविकार को नष्ट करने वाले, ज्वरनिवारक, कामोद्दीपक और त्रिदोष को नाश करने वाले होते हैं। इसकी जड़ का पिसा हुआ चूर्ण मन्दाग्नि, अतिसार, खूनी अतिसार और बवासीर में फायदा पहुँचाता है। इसके फूलों का काढ़ा हृदय की धड़कन में पिलाया जाता है।

नील कुमुद—इसको संस्कृत में—नीलोत्पल, बङ्गाल में—नील पदम, गुजराती में—नील कमल, हिन्दी में—

नील कमल, मराठी में—कृष्ण कमल और लेटिन में—N. Stellata कहते हैं। आयुर्वेदिक मत से यह मीठा, सुगन्धित, शीतल, धातु परिवर्तक, पित्त नाशक, रुचि कारक, शरीर को मजबूत बनाने वाला और बालों को बढ़ाने वाला होता है।

गायना में इसकी जड़ और डण्डी का काढ़ा स्निग्ध और मूत्रल माना जाता है। इसे मूत्राशय की बीमारियों को दूर करने में और मूत्रकृच्छ्र के रोग के इलाज में काम में लेते हैं। इसके फूलों का काढ़ा निद्रादायक और कामेच्छा नाशक होता है। मेडागास्कर में इसके पत्ते विसर्प रोग में लगाये जाते हैं।

इसकी एक जाति और होती है जिसको मद्रास में अलि और लेटिन में N. Pubescens निम्फिया पुबेसिन्स कहते हैं। इसकी जड़ का चूर्ण बवासीर में शान्तिदायक औषधि की तौर पर दिया जाता है। इसे पेचिश और मन्दाग्नि पर भी देते हैं। इसके फूल संकोचक और हृदय को पुष्ट करने वाले होते हैं।

कुरंडवृक्ष

नाम—संस्कृत—अग्निवती, अग्निपत्री। हिन्दी—कुरंड वृक्ष, दादमारी, जल करवीर। बंगाली—आग्या। मारवाड़—आग्यो। पंजाब—ददेर बूँटी। गुजराती—जलआग्यो। मराठी—गुरेन आग्या, आगिनबूँटी। तामील—कल्लूरीबी; नीरूमेलनेरुपु। तेलगू—अग्निबेदम पाकू। बम्बई—जङ्गली जल मेंहदी। लेटिन—Ammania Baccifera (एमेनिया बेकीफेरा)।

वर्णन—कुरंड वृक्ष या अगिया बूटी जल के पास उत्पन्न होती है। इसके पौधे १ फीट से लेकर २ फीट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते कनेर के पत्तों के समान एक से ढाई इंच तक लम्बे, कुछ गोल, पतले और आमने सामने लगते हैं। इसके ऊपर पत्रमूल में गुच्छेदार श्यामाभ गुलाबी रंग वाली होती है। इसमें छोटे २ काले बीज निकलते हैं। इसके पत्तों का स्वाद लाल मिरच के समान चरपरा होता है। इसके फूल नवम्बर और दिसम्बर मास में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते अत्यन्त दाह जनक होते हैं। इन पत्तों को पीसकर लगाने से आधे घंटे में जलन होकर छाला पड़ जाता है। इसकी जलन, चित्रक और तेलिनि मक्खी की जलन से अधिक होती है। सन्धिवात में इससे छाला डालकर पानी निकाल लेने से पीड़ा मिट जाती है। ज्वर युक्त आमवात और बढ़ी हुई तिल्ली में भी इससे छाला डालकर पानी निकाल देने से लाभ होता है। बढ़ी हुई तिल्ली में इसका पञ्चाङ्ग ४ माशा, नागर मोथा ४ माशा और सोंठ ४ माशा, इनका क्वाथ बनाकर देने से लाभ होता है

ज्वर युक्त आमवात में अथवा सतत ज्वर में इसका समान भाग नागर मोथे के साथ क्वाथ बनाकर देने से सूजन भी उतरती हैं और ज्वर भी शान्त होता है। इसकी राख तेल में मिलाकर चर्म रोगों पर लगाने से सभी प्रकार के चर्म रोग मिटते हैं।

यह ख्याल रखना चाहिये कि इसके पत्तों को चमड़े पर लगाने से अत्यन्त जलन होती है। कभी २ छाला नहीं भी उठता है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। अगर पानी की जगह ईथर में इसका टिन्चर बनाकर लगाया जाय तो विशेष आसानी से छाला उठ जाता है।

बनावटें—पारद भस्म—अगिया बूटी के स्वरस में ४,५ दिन तक शुद्ध पारद को घोटकर टिकडी बनाकर, डमरुयंत्र में रखकर उड़ाना चाहिये। जो पारा उड़ जाय उसको फिर बार २ इस वनस्पति के रस में घोटकर डमरुयंत्र में उड़ाते रहना चाहिये। इस प्रकार करते २ पारद नीचे रह जाता है। यह उड़ता नहीं है। कुछ भस्म भी होती जाती है। धीरे २ सब पारे की भस्म हो जाती है। यह भस्म अत्यन्त उत्तम और गुरु साध्य है। इसको बहुत सावधानी से बनाना चाहिये। (भागीरथ स्वामी)

इसी प्रकार इस वनसपति के स्वरस से हरताल, संखिया और अभ्रक की भी बड़ी शक्तिप्रद भस्में तैयार होती हैं।

कुरंडिकाछोटी

नाम—संस्कृत—अग्निवृक्ष, क्षेत्रनाशिनी। गुजराती—आगियो, पत्थरसट्टी। मराठी—लघुकरंडिका।

वर्णन—यह वनस्पति बरसात के कुछ बाद, ज्वार और बाजरा आदि के खेतों में पैदा होती है। इसके पौधे ४।५ इंच से १ फूट तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद पीले और बैगनी रंग के आते हैं। जिस वृक्ष की जड़ पर यह उगती है उस वृक्ष के रस को चूस लेती है।

गुण, दोष और प्रभाव—सफेद फूल वाली अगिया को उबाल कर उससे बवासीर को धोने से और उसको बवासीर पर बाँधने से बवासीर नष्ट हो जाता है।

कुरल

नाम—पंजाबी—कुरल। हिन्दी—कुरल, कण्डला कण्डालू। अलमोडा—कोठला। गढ़वाल—कण्डौल। तेलगू—गोंड्रकुरा। लेटिन—Bauhania Retusa (बोहिनिया रेटुसा)

वर्णन—यह एक मझले आकार का झाड़ होता है। इसकी छाल गहरे बादामी रंग की रहती है। इसके पत्ते ७.५ से १५ सेंटिमिटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद और बीज बादामी रंग के और और मुलायम होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ऋतुस्रावनियामक और मूत्रल होती है, इसका गोंद छालों पर लगाने के काम में आता है।

कुरिला

नाम—मद्रास—कुरविल। टेनिट—Connarus Monocorpus (कोनारस मोनोकारपस)।

वर्णन—यह एक बहुशाखी झाड़ीनुमा पौधा होता है। जो कोकण और त्रावणकोर में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फल का गूदा आँखों की बीमारिमों में और इसकी जड़ का काढ़ा गर्मी की बीमारियों में लाभदायक होता है।

कुल्थी

नाम—संस्कृत—कलवृन्त, कुलिथिका, कुलिथा, श्वेतबीज, ताम्रवृक्ष। हिन्दी—कुलथी, गहाट। पंजाब—बाथुंगट, गगली, गुवार, कलट कुलथ। गुजराती—कलथी, कुलते, हुलगा। मराठी—कुलीथ। सिंध—गगली। मैसूर—हुरली। तामील—कोलू। तेलगू—बुलवल्लि, उलवलु। अरबी—हमुल किलत। बंगाल—कुर्तीकलई। उर्दू—कुलथी। लेटिन—Dolicos Biflorus (डोलीकोस बाइफ्लोरस)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी मशहूर वनस्पति है। इसका दाना मसूर के दाने की तरह मगर कुछ गोलाई लिये हुए होता है। यह खरीफ की फसल में पैदा होती है। इसकी खेती सारे भारतवर्ष में होती है।

आयुर्वैदिक मत से इसके बीज कड़वे, कसैले, गरम और शुष्क होते हैं। यह आँतों को सिकोड़नेवाली, ज्वर नाशक, कृमिनाशक और मज्जा वर्द्धक होती है। श्वास, खाँसी, मुख रोग, हिचकी, उदररोग, हृदय रोग, पीनस और दिमाग सम्बन्धी तकलीफों में यह मुफीद है। आन्त्र शूल, पथरी, नेत्र रोग, बवासीर, कुष्ठ और विष को नष्ट करने में यह उपयोगी है। यह मूत्राशय की पथरी को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह भूख बढ़ानेवाली, मूत्रनिस्सारक, आँख के रोगों को दूर करनेवाली तथा मसाने और गुर्दे की पथरी को तोड़नेवाली है। इसके सेवन से हिचकी मिट जाती है, दस्त साफ आता है। पेशाब और मासिक धर्म खुलकर आता है, तिल्ली की खराबी दूर होती है। बवासीर पर इसका लेप करने से लाभ होता है, इसके लगाने से गालों का रंग साफ होकर कान्ति निखर जाती हैं। इसका दाल कफ और पित्त को दूर करती है। भोजन के पश्चात् होनेवाली कै को यह दूर करती है, इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से श्वेत प्रदर बन्द हो जाता है। यह गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़कर निकाल देती है। बच्चा होने के बाद गर्भाशय में बिगड़े हुए खून का जो मैल और मवाद रह जाता है उसे यह दूर करती है। कुल्थी को पकाकर खाने से शरीर का मोटापन कम होता है। इसके काढ़े में सरपंखे की जड़ और सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से पेशाब में शक्कर का आना बन्द हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मूत्रल, पौष्टिक, मासिक धर्म को नियमित करनेवाली और श्वेत प्रदर में लाभदायक है।

कुलफा

नाम—संस्कृत—लोनी, लूनिया, वृहल्लोनी, घोलिका। हिन्दी—कुल्फा, खुरफा, लोनिया, खुरफे का शाक। गुजराती—लोनी, मोटी लोनी। मराठी—घोल, खुरफे की भाजी। अरबी—खुरफा, बगल तुल खुमक। मध्यप्रांत—घोल। कोकण—गोल, गोलची भाजी। मद्रास—पसलई। सीमाप्रांत—देशी कुलफा, तामील—करिकिरइ। तेलगू—पदुकुए। लेटिन portulaca Oleracea (पोर्चूलका ओलीरेसिया)।

वर्णन—यह एक प्रकार की शाक होती है जो प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये यह जमीन पर फैलने वाली वर्षजीवी वनस्पति है। यह सारे भारत में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कुल्फे की शाक शीतल, ग्राही, सूजन को दूर करनेवाली, रक्त-शोधक, स्नेहन और मूत्रल होती है। इसके पत्ते तुरे और खारे रहते हैं। ये अग्निवर्द्धक, विषनाशक और विरेचक होते हैं। सभी प्रकार के प्रदाह और व्रणों को ये नष्ट करते हैं। श्वास, प्रमेह, अतिसार, कोढ़ और बवासीर में ये लाभ-दायक हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह वनस्पति और इसके बीज मूत्रपिंड और वस्ति के सूजन में उपयोग में लिये जाते हैं। इसकी फांट से पेशाब की तादाद बढ़ती है। इसकी तरकारी बवासीर के अन्दर लाभदायक होती है। दाँत, कफ, पेशाब इत्यादि किसी भी स्थान से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसका रस दिया जाता है। रक्तपित्त और ज्वर के अन्दर भी इसकी तरकारी पथ्य रूप में दी जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते खट्टे होते हैं। ये पित्तसम्बन्धी शिकायतों और मन्द ज्वर को दूर करते हैं। प्यास, सिर दर्द, वमन और मूत्राशय तथा तिल्ली की बीमारी में ये लाभदायक हैं। बवासीर, सिर की गंज और बच्चों के मुख शोथ में भी ये मुफीद हैं। जो लोग शीत व्याधि से पीड़ित हों उन्हें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

आजकल यह वनस्पति शान्तिदायक और धातुपरिवर्तक औषधि के तौर पर काम में ली जाती है। यकृत की बीमारियों में और स्कर्वी रोग में यह एक उत्तम पथ्य के रूप में ली जाती है।

इसकी डाली का रस हर तरह की जलन पर मालिश करने के काम में लिया जाता है। बिच्छू के विष पर भी इसका रस लगाया जाता है।

गोल्ड कास्ट में इसके पत्ते को पीसकर तेल के साथ मिलाकर घाव को पूरने के लिये फोड़ों पर बांधा जाता है। चर्म रोगों में इसे खाने के काम में भी लिया जाता है। ठण्डे पानी में रख कर इन्हें बार-बार खाने के काम में लिया जाय तो ये हृदय को ताकत देते हैं।

इस वनस्पति के पत्तों में लुआब और एसिड पोटेसियम आक्झेलेट पाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति चर्मरोग, मूत्राशय के रोग और फेफड़े के रोगों में लाभदायक है।

कुलाहल

नाम—संस्कृत—कुलाहल, सुन्दिका, विषमुष्टि, भूतकेशी। हिन्दी—कोल्हिमा, कुलर, गदर तम्बाकू। बंगाली—कोल्हिमा। बम्बई—कोलहल। गुजराती—कलहर, कुलहल, कुलहर। मराठी—कोलहल, कुटकी। लेटिन—Celsia Coromandeliana (सेलेसिया कोरोमेंडेलियाना)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति है। यह कुटकी की ही एक उपजाति है। यह दक्षिण में नदियों के किनारे वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका पौधा अरण्य तम्बाकू की तरह होता है। इसमें बहुत तीव्र गन्ध होती है। इसके पत्ते लम्बे, रुएँदार और जमीन के बराबर ही लगते हैं। इसके फूल पीले और फली लम्बी और गोल होती है। इसके बीज कुछ लम्बे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति वात सम्बन्धी शिकायतों और रक्त की तकलीफों में मुफीद होती है। इसके पत्तों का उबाला हुआ रस तेज और पुरानी पेचिश में लाभदायक है। इसका प्रभाव संकोचक और शांतिदायक है।

यूनानी मत से—इस वनस्पति के पंचांग का रस २॥ तोले की मात्रा में दिन में दो बार पीने से उपदंश या गरमी के फोड़े फुन्सियों में लाभ होता है। इसके पत्तों का रस राई के तेल में मिलाकर लगाने से हाथ-पैरों की जलन मिटती है। इसकी जड़ को चबाने से बुखार से पैदा हुई हद से ज्यादा प्यास भी बुझ जाती है। इसके पत्तों के रस में शक्कर मिलाकर देने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। बहुमूत्र और मधुमेह में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ के काढ़े में शहद मिलाकर पिलाने से खाँसी में लाभ होता है।

कुलिन्जन

नाम—संस्कृत—अरुण, धूमल, एलपर्णी, गन्धमूल, गन्धवारुणी, कुलिंजन, रक्तपुष्प, इत्यादि। हिन्दी—कुलिंजन, बड़ा कुलंजन। बंगाल—कुलंजन, बड़ा कुलंजन। बम्बई—बड़ी पंखीजार। मराठी—कोष्ट, कुलिंजन, तामील—अनन्द, अदुर्व, कन्दन गुलियम। तेलगू—दुम परस्नकमम्, कचोरम्। अरबी—खोलंजन, खुलंजने कबिर। फारसी—खुर्दूबवा, खिर्द्दारू। लेटिन—Alpinia Galanga (एलपीनिया गेलंगा)।

कुलिंजन के छोटे पौधे विशेष कर चीन में पैदा होते हैं, भारतवर्ष में इसकी खेती की जाती है। इसके पत्ते लम्बे, तीखी नोक वाले और मुलायम होते हैं। ये ऊपर हरे और पीछे फीके रंग के होते हैं, इनके किनारे सफेद होते हैं। इसके फूल सफेद और हरे होते हैं। इसका फल नारंगी रंग का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कुलिंजन चरपरा, कड़वा, गरम, अग्निदीपक, रुचिकारक, कण्ठ को सुरीला करने वाला, हृदय को हितकारी और मुखदोष, कफ, खाँसी, वात और कफ को नष्ट करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी गाँठ तीव्र गन्ध वाली, जायकेदार रहती है। यह अग्निवर्धक, कामोद्दीपक, मूत्रक, कफ निस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली होती है। सिर दर्द, कटिवात, गले के दर्द, सीने के रोग, मूत्ररोग और क्षयरोग की ग्रंथियों में यह लाभ पहुँचाती है।

हकीम लोग इसे मन्दाग्नि, वायु नलियों के प्रदाह और नपुंसकता को दूर करने के काम में लेते हैं। यह संक्रमण को दूर करने वाली होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि दक्षिणी भारत में कसरत से उपयोग में ली जाती है, मैसूर में यह एक घरेलू दवा है जो कि वृद्ध लोगों के द्वारा जुकाम में पैदा हुई खाँसी में काम में ली जाती है, इसकी गठानें और बीज पेट के आफरे को दूर करने का गुण रखते हैं। यूनानी औषधियों में यह नपुंसकता और स्नायुमंडल की कमजोरी को दूर करने के काम में ली जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—कीर्तिकर और वसु ने इसमें पाये जाने वाले तत्वों का विश्लेषण किया। उन्होंने इसमें केम्फेराइड (Campheride) गेलेंगिन (Galangin) और एलपिनिन (Alpinin) नामक तीन विभिन्न तत्वों को पाया। इसके बाद में इस औषधि पर और बारीक विश्लेषण हुआ। इस वनस्पति की हरी गठानों से एक प्रकार का पीला तेल, जिसकी सुगन्ध बहुत तीव्र होती है, निकाला जाता है। इस तेल में ४८ सैकड़ा मैथिल साइनामेट (Methyl Cinnamate) २० से ३० परसेन्ट तक, सीनेअल (Cineole) तथा केम्फर और डी० पिनेनी (D. Pinene) रहते हैं। इस वस्तु का चिकित्सा शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन विजगापट्टम मेडिकल कालेज के फरमेकोलाजी डिपार्टमेन्ट के मिस्टर एन० टी० एस० यजोलू ने किया है।

इसके सत्व का इन्जेक्शन देने से रक्त का दबाव कम होकर मामूली स्थिति में आ जाता है, रक्त के दबाव के गिरने का कारण प्लीहा की रक्त शिराओं के फैलाव पर निर्भर है। हृदय की गति पर इसका असर अवसादक होता है। यह हृदय की क्रिया को दबाता है।

अगर इसका इन्जेक्शन थोड़ी मात्रा में दिया जाय तो श्वास क्रिया प्रणाली को उत्तेजित कर देता है और ज्यादा मात्रा में दिया जाय तो दूषित असर दिखाता है। इसका श्वास क्रिया प्रणाली पर भी महत्वपूर्ण असर होता है। इसकी

कम खुराक भी श्वास नलियों को फैलाती है, पीलोका पाईन के प्रयोग से जो दमे सरीखी हालत नजर आती है, वह इसकी मामूली खुराक से हट जाती है।

इस वनस्पति का शरीर के अन्य अंगों पर कोई भी प्रभाव नहीं होता है। इसका कुछ प्रभाव मूत्र की ग्रन्थियों पर होता है। मगर ज्यों ही रक्त दबाव में फर्क हुआ कि उन मूत्र ग्रन्थियों के ऊपर का प्रभाव दूर हो जाता है।

उड़नशील तेल ही इस वनस्पति का मुख्य अंग है। इसे भी अन्य उड़नशील तेल की तरह पेट का आफरा दूर करने के काम में लेते हैं। श्लैष्मिक झिल्लियों पर भी इसका प्रभाव गिरता है, ज्यों ही यह तेल फेफड़ों में प्रवेश करता है, अपना कफ निस्सारक गुण दिखाता है, इसे श्वास सम्बन्धी तकलीफों में काम में लेना न्याय संगत है। कुक्कुर खाँसी में बच्चों को इसे शहद में मिलाकर देते हैं। यह खाँसी में लाभ करता है और टेम्परेचर भी कम कर देता है। यह बच्चों के श्वास कष्ट में फायदा पहुँचाता है। मुमकिन है कि यह दमे में भी फायदा पहुँचावे। इसमें सुगन्ध होती है। यह खाँसी और पाचक नुस्खों में भी मिलाया जाता है। कहा जाता है कि यह अँतड़ियों के और पित्त जन्य उदरशूल में भी उपयोगी हो सकता है।

उपयोग—ज्वर—ज्वर मिटाने वाली औषधियों के साथ कुलिंजन का क्वाथ करके पिलाने से ज्वर छूटता है।

खाँसी—इसको अदरख के रस और शहद के साथ चटाने से कफ और खाँसी मिटती है।

उदरशूल—अजवायन और काले नमक के साथ इसकी फंकी देने से उदरशूल मिटता है।

मन्दाग्नि—सोंठ और सेंधा नमक के साथ इसको देने से मंदाग्नि मिटती है।

मूत्रकी रुकावट—इसको पानी के साथ पीस छानकर पिलाने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

छींक—इसको पोटली में बांधकर सूंघने से छींकों का अधिक आना बन्द हो जाता है।

छोटी कुलन्जन—बहुमूत्र—छोटी कुलिन्जन को औटाकर पिलाने से बहुमूत्र या मूत्रातिसार मिटता है।

स्नायु रोग—इसका तेल बनाकर मर्दन करने से स्नायु जाल की शक्ति बढ़ती है।

तुतलापन—बच्चे को इसका चूर्ण चटाने से वह शीघ्र बोलने लगता है।

पीले चट्टे—तेल या पानी में इसको पीस कर लगाने से शरीर के पीले चट्टे मिट जाते हैं।

कुसरुन्ट

नाम—हिन्दी—कुसरुन्ट, कुसरंट। बम्बई—नुन्दार, कनफुटी। दार्जिलिंग—ब्रोलु। संथाल—सिम्बूस्तक। अवध—कुसरोत। तेलगू—नलवाडु। लेटिन—Flemingis Strolclifera (फ्लेमिंगिया स्ट्रालिसिलि फेरा)।

वर्णन—यह एक सीधा बहुशाखी झाड़ीनुमा वृक्ष होता है जो सिंध, राजपूताना, बंगाल और दक्षिणी हिन्दुस्तान में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कैंपवेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ों को अपस्मार रोग में काम में लेते हैं। आसाम निवासी नींद लाने के लिए इसकी जड़ को थोड़ी तादाद में देते हैं। ऐसा कहा जाता है कि चाहे जितना ही कष्ट क्यों न हो इसकी जड़ के प्रयोग से नींद लग जाती है और किसी किस्म का खराब प्रभाव नहीं होता है।

कर्नल चोपरा के मत से इसकी जड़ अपस्मार और उन्माद रोगों में काम में आती है।

कुश

नाम—संस्कृत—दर्भ, कुशा, कुशः, सूच्यग्र, यज्ञ भूषण। हिन्दी—कुश, डाभ, दबोलि। बङ्गाल—कुश। बम्बई—दर्भ। मध्य प्रान्त—चिर, कुशा। गुजराती—दाभ। पंजाब—कुशा, दाभ। तेलगू—अस्वलयन दर्भ, कुशदर्भा। लेटिन—(1) Desmostachya Bipinnata (डिसमोसटेचा विपिनेटा) (2) Eragrostis Cynoscuroides (इराग्रोसटिस सिनोसुराइड्स)।

वर्णन—कुश या डाभ हिन्दू धर्मशास्त्र की एक पवित्र वस्तु है। ग्रहण के समय में हर एक वस्तु की पवित्रता

की रक्षा करने के लिए इसको रख दिया जाता है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध है इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से इसकी जड़ मधुर और शीतल होती है। यह प्यास, श्वास, पीलिया और रक्त रोगों में फायदा देने वाली होती है । यह वनस्पति मधुर, कसैली, शीतल, कामोद्दीपक और मूत्रल होती है। यह स्निग्ध भी है। यह रक्तविकार, पित्त, दमा, तृषा और मूत्रकृच्छ्र रोग में लाभदायक है। पीलिया, मूत्राशय के रोग, विस्फोटक और वमन में भी लाभदायक है। यह गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को शांति पहुँचाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कुश पेचिश और अत्यधिक रजःस्राव में उपयोगी है, यह मूत्रल है।

उपयोग--**आमातिसार**--इसकी जड़ का क्वाथ करके पिलाने से आमातिसार मिटता है।

रक्त प्रदर--(१) उपरोक्त क्वाथ में रसोत गलाकर छान के पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

(२) इसकी और बेल की जड़ को चाँवलों के पानी के साथ पीसकर पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

हिचकी—इसमें कुछ घी मिलाकर उसका धुआँ पिलाने से हिचकी मिटती है।

प्रदर--इसकी जड़ को चावलों के पानी के साथ पीसकर तीन दिन तक पिलाने से प्रदर मिटता है।

कूट

नाम--**संस्कृत**—कुष्ठ, अगद, भासुर, हरिभद्रक, काश्मीरजा इत्यादि। **हिन्दी**—कूट, कोट, कुर, पाचक। **बङ्गाल**—कुर, पाचक। **बम्बई**—उपलेट, वैराती, कूट, अपलेता। **काश्मीर**—पोस्तरवई। **फारसी**—कोशना, कूट, सीरिन कुटल्क। **पंजाब**—कोठ, कुष्ठ। **तामील**—गोश्तम, कोष्टम्। **तेलगू**—चंगेला, कुष्टम। **उर्दू**—कूट। **लेटिन**—Saussurea Lappa (सुसारिया लेपा)।

वर्णन—यह एक बहुवर्षजीवी मोटी और ऊँची वनस्पति होती है। इसका तना सीधा रहता है। इसके पत्ते झिल्लीदार और कटे हुए त्रिकोणाकार रहते हैं। नीचे ही नीचे के पत्ते बड़े रहते हैं। इसके फूलों का बाहरी आकार गोल रहता है। इसका फल टेढ़ा और दबा हुआ रहता है। इसकी जड़ें खुशबूदार कड़वी और तीखी रहती हैं।

बाजार के अन्दर मिलनेवाली कूट की जड़ों में और भी कई दूसरी चीजों का मिश्रण कर दिया जाता है। खास करके रासना की जड़ोंमें, मीठे कूट की जड़ों में मिला दी जाती हैं। इसलिए इनको लेते वक्त सावधानी रखना चाहिये। यह वनस्पति काश्मीर के ८००० फीट से १२००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से इसकी जड़ गरम, कड़वी, तीक्ष्ण, चर्बी बढ़ाने वाली, सुगन्धित, दीपक, पाचन, कामोद्दीपक, धातु परिवर्तन, वातनाशक, कफनाशक, उत्तेजक, मासिक धर्म नियामक और व्रण शोधक होती है। यह मुँह की कांति को सुधारती है। धवल रोग को मिटाती है। विसर्प रोग, दाद, खुजली, रक्तविकार, वायु नलियों का प्रदाह, वमन और वातरोगों में लाभदायक है। इसे सिर दर्द, उन्माद और अपस्मार रोग में काम में लेते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसकी जड़ दो प्रकार की होती है। एक मीठी और दूसरी कड़वी। कूट, कृमिनाशक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, विष नाशक, ऋतु स्राव को नियमित करने वाली, कामोद्दीपक और पौष्टिक होती है। यह मस्तिष्क को उत्तेजना देती है। रक्त विकार, यकृत और मूत्राशय के रोगों में मुफीद है। सिर दर्द, बहिरापन, सन्निपात, लकवा, दमा, खाँसी, चक्षुरोग, और जीर्ण ज्वरों में भी यह लाभदायक है।

खजाइनुल अदविया का लेखक लिखता है कि इसको सिरके में पीसकर शहद में मिलाकर झाईं, दाद, खुजली, श्वेत कुष्ट और बाल तोड़ पर लगाने से आराम हो जाता है। अगर हाथों में छाजन (एक्जिमा) पड़ जाय तो आधा पाव कूट लेकर उसको जौ कुट करके सेर भर पानी में औटावें, जब उसका सत्व पानी में आ जाय तब आग को कमकर दें, जब पानी हाथ डालने के काबिल हो जाय तब उसमें रोगी का हाथ डालकर दवा को मलते रहें, इस प्रकार एक

प्रहर तक करें, उसके बाद हाथ निकाल कर हाथों पर घी की मालिश करें, फिर हाथ पर कपड़ा लपेट कर सो जाएँ। यह दवा बिल्कुल अनुभूत है और एक बार से ज्यादा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। अगर तमाम बदन में छाजन हो तो बड़े बर्तन में ज्यादा कूट लेकर जोश दें और उस बर्तन में बैठकर उसी प्रकार मालिश करें।

इसको शराब में पीस कर साँप और बिच्छू की काटी हुई जगह पर लेप करने से लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मत से कूट की जड़ ही केवल चिकित्सा के काम में ली जा सकती है। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है और इसमें एक किस्म की सुगन्ध रहती है। भारतीय चिकित्सा प्रणाली में यह बहुत समय से उपयोग में ली जाती है। निघंटु शास्त्रों ने इसे उत्तेजक और कामोद्दीपक माना है। यह खाँसी, ज्वर, अग्निमांद्य, चर्मरोग, दमा और दमे के कारण जो रोग पैदा हुए हों उनमें उपयोगी बताई गई है। यह वात विकारों का भी नाश करती है। यूनानी चिकित्सकों के मतानुसार यह मूत्रल और कृमिनाशक है। इसे चौथिया ज्वर, कोढ़, कुक्कुर खाँसी और सन्धिवात में उपयोग में लेते हैं। इसको सुखाकर और पीस कर कुछ अन्य ओषधियों के साथ में एक प्रकार का मलहम बनाते हैं, जो कि फोड़ों के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। हैजे की बीमारी में भी अन्य औषधियों के साथ इसे काम में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—इस वनस्पति का रासायनिक विश्लेषण स्कीमेल एण्ड कम्पनी ने सन् १८६२ में किया था। उन्होंने इसमें १ प्रति सैकड़ा इसेंसियल आइल पाया। इस तेल में मस्त सुगन्ध रहती है। इसकी जड़ से एक प्रकार की सुगन्ध तैयार की जाती है जो व्हायोंलेट फ्लावर की सुगन्ध से मिलती-जुलती है। इसकी कीमत बहुत अधिक रहती है। इसके पश्चात् सन् १६२६ में घोष और उनके साथियों ने इसकी जड़ का फिर से विश्लेषण किया और इसमें एक प्रकार का उपक्षार पाया गया। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित तत्व और पाये गये।

(१) इसेंशियल आइल (उड़नशील तेल) १५ प्रति सैकड़ा।
(२) सौसेराइन (Saussarine) नामक उपक्षार ·०५ प्रतिशत।
(३) रेजिन्स (एक प्रकार का राल) ६·० प्रतिशत।
(४) कटुतत्व।
(५) (Tannins) टेनिन्स, थोड़ी तादाद में पाये गये। ये टेनिन, माजूफल, बबूल की छाल व अन्य वनस्पतियों की तरह पाये जाने वाले अम्ल विशेष की तरह है जो चमड़े के काम में, औषधियों में व बनाने के काम में लिया जाता है।
(६) (Insulin) इन्स्युलिन १८० प्रति सैकड़ा पाया गया।

इस औषधि के इन्जेक्शन मधुमेह के रोगियों को दिये जाते हैं। सन् १६२१ में डाक्टर वेटिंग ने इसका आविष्कार किया था।

(७) फिक्स्ड ऑइल।
(८) पोटेशियम नाइट्रेट और शकर इत्यादि।

एस० लेपा (कूट) के पत्तों का भी विश्लेषण किया गया। इनमें इसेंशियल ऑइल तो नहीं रहता है; किन्तु ०·०२५ प्रति सैकड़ा उपक्षार रहते हैं जैसे कि इसकी जड़ में पाये जाते हैं।

इसमें पाया जाने वाला इसेंशियल आइल एक बहुत तेज कृमिनाशक वस्तु है। यह खास करके स्ट्रेप्टोकोकस (Streptoccocus) और स्टेफाइलोकोकस (Staphylococeus) नामक कृमियों को नाश करने में बहुत तीव्र है। यह तेल स्वाद में बहुत तीक्ष्ण और कड़वा रहता है। साधारण मात्रा में लिये जाने पर यह पेट में गर्मी लाता है। इसमें पेट का आफरा उतारने की विचित्र शक्ति है। खरगोश की आँतों पर इसका परीक्षण किया गया। इसमें आँतों के कीटाणु मारने की अद्भुत शक्ति है। यह पेट की नलियों को शान्ति देता है। इस इसेंशियल ऑइल के इन्ट्राव्हेनस इन्जेक्शन भी दिये जाते हैं, जिससे यह शरीर के आन्त्रिक यन्त्रों में पहुँच कर रक्तवाहिनी का विस्तार करता है। इस तेल को अन्य ओषधियों के साथ मिलाकर उसके इन्जेक्शन दिये गये। इन से रक्त के दबाव (Blood Pressure) में कुछ अधिकता पाई गई। खरगोश के हृदय को अलग निकाल कर उसपर भी इसका परीक्षण किया

गया, उससे यह मालूम हुआ कि यह हृदय की गति को तेज करता है। इसके इन्ट्राव्हेनस इन्जेक्शन्स देने से फेफड़े पर कफ निस्सारक प्रभाव होता है और वायु नलियों का प्रसरण हो जाता है। स्नायुमंडल के ऊपर इसका प्रभाव दूसरे व्होलोटाइलप ऑइल के समान ही होता है। केन्द्रीय स्नायुमण्डल पर इसका प्रभाव अधिक जोरदार होता है। यदि इसका सत्व अधिक तादाद में दिया जाय तो शरीर में भारीपन मालूम होता है और शिर दर्द तथा तन्द्रा शुरू हो जाती है। इसका कारण इसेंशियल आइल को अधिक तादाद में दिये जाने के अतिरिक्त और कुछ नजर नहीं आता। यदि इसकी जड़ को पीस कर उसका धूम्रपान किया जाय तो केन्द्रीय स्नायुमण्डल में ढीलापन आ जाता है। इसके इसी प्रभाव के कारण यह अफीम के बदले काम में ली जाती है।

इसमें पाया जाने वाला दूसरा तत्व सोसेराइन नामक उपक्षार है। सन् १९२९ में चोपरा और डे० ने सोसेराइन टारट्रेट के जो कुछ असर फेफड़ों और श्वास प्रणालियों पर होते हैं, उनका अध्ययन किया। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि इसका प्रभाव सूक्ष्म वायु नलियों पर एड्रेनेलाइन के समान ही होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि एड्रेनेलाइन का प्रभाव ज्यादा जोरदार और शीघ्र होता है मगर इसका प्रभाव इतना जोरदार नहीं है और इसमें कुछ समय भी लगता है किन्तु इसका जितना भी प्रभाव होता है, वह स्थाई होता है। इसके उपक्षार मज्जा के ऊपर भी अपना असर दिखाते हैं। यह आँतों की क्रिया को ढीली कर देता है, रक्त के दबाव को बढ़ाता है, मज्जा तन्तुओं पर इसका प्रभाव विशेष रूप में देखा जाता है। आरिकल्स (हृदय का ग्राहक कोष्ठ) की अपेक्षा व्हेन्ट्रिकल (हृदय के नीचे का हिस्सा) पर इसका प्रभाव विशेष होता है। सौसेराइन के उपयोग से हृदय की गति नियमित और हृदय के ठोंके ज्यादा जोरदार हो जाते हैं। यह हृदय को मजबूत करता है और फेल हो जाने वाले हार्ट को भी शक्ति देता है।

कूट और दमे का रोग—कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके आक्षेप निवारक, श्वास प्रणाली को फैलाने वाले और कफ निःस्सारक गुणों के कारण इसकी परीक्षा वायु नलियों से सम्बन्ध रखने वाले दमे के रोग (Bronchial Asthama) पर की गई। इसकी जड़ से निकाला हुआ सत्व, जिसमें कि इसेंशियल आइल और उपक्षार मौजूद थे और जो अलकोहल के साथ तैयार किया गया था, आधे से लेकर २ ड्राम तक की मात्रा में रोगियों को दिया गया। इसके परीक्षण से यह पता लगा कि इसके प्रभाव से वायुनलियों में ढीलापन आ जाता है। यह कफ निस्सारक शक्ति को उत्तेजित करता है। कफ के निकल जाने से श्वास क्रिया प्रणाली में मदद देने वाली झिल्लियाँ साफ हो जाती हैं और श्वास का मार्ग बिलकुल साफ हो जाता है। दमे के दौरे की पीड़ा हल्की मालूम पड़ती है। यह वायुनलियों को फैला देता है। इसलिये श्वास लेने में किसी तरह की तकलीफ मालूम नहीं पड़ती। एड्रेनेलाइन और इफेड्राइन के भी इसी किस्म के प्रभाव होते हैं। लेकिन उनके उपयोग से ब्लड प्रेशर अधिक बढ़ जाता है और हृदय की क्रिया में अनियमितता आजाती है। इसके उपयोग से इस किस्म के विकार नहीं होते।

इस औषधि के अवसन्नता लाने वाले गुण मस्तिष्क पर अपना प्रभाव दिखाते हैं। इस प्रभाव की वजह से दमे के दौरे के वक्त के आक्षेपों में या तनाव में इसका अच्छा असर होता है। इसकी मस्त सुगन्ध की वजह से और इस वनस्पति के स्वाद से जैसा लाभ है वैसी हानि भी है। कुछ बीमार लोग इसको ले नहीं सकते। अगर उन्हें जबरदस्ती दी जाय तो कै कर डालते हैं।

इस औषधि को लेने की मात्रा आधे से दो ड्राम तक है। यह स्वतंत्र रीति से अकेली भी ली जाती है और नीचे की औषधियों के साथ मिलाकर भी दी जाती है:—पोटास आयोडाइड अथवा पोटास ब्रोमाइड १० ग्रेन, टिंचर बेलाडोना ५ बूँद, भोरेक्स २ ग्रेन, कूट का लिक्विड एक्सट्रेक्ट आधे से एक ड्राम तक, स्पिरिट क्लोरोफार्म १० बूँद, इन सब चीजों को १ औन्स पानी में मिलाकर एक बार में पी जाना चाहिये।

जब बीमार को दमे का दौरा हो रहा हो तब तात्कालिक आराम के लिये उसे मिश्रण न देकर केवल कूट का एक्ट्रेक्ट ही देना चाहिये। परन्तु दमे का दौरा बैठ जाने के पश्चात् स्थायी इलाज के लिये इस मिश्रण को देना चाहिये और इस बात की जाँच करते रहना चाहिये कि किन कारणों से रोगी पर दमे का आक्रमण होता है। बहुत से रोगी ऐसे भी होते हैं जिनको कोई खास चीज के खाने से किसी खास स्थान पर जाने से अथवा चलने फिरने से एक दम दमे का हमला हो जाता है। इसलिये उसका बारीकी से अध्ययन करते रहना चाहिये।

१५--२० दिन तक दवा देकर थोड़े समय तक दवा बन्द करके यह देखना चाहिये कि अब दमे का दौरा होता है या नहीं। क्योंकि कई रोगी तो ऐसे होते हैं कि जिनको क्षणिक और साधारण कारणों से दमा हो जाता है, ऐसे रोगियों का दमा जल्दी ही मिट जाता है और भविष्य में रोग को उत्पन्न करने वाले मूल कारणों की ओर से सावधानी रक्खी जाय तो फिर यह रोग नहीं होने पाता। जब दवा चलती हो तब दिन में ३ या ४ बार इस दवा को लेना चाहिये और सोते वक्त भी इसकी एक खुराक पास लेकर सोना चाहिये। रात में जब दमे के दौरे का भय लगने लगे तब उस खुराक को पी लेना चाहिये जिससे दमे का दौरा बैठ जायगा और फौरन नींद आ जायगी। एड्रिनेलिन के इन्जेक्शन अथवा धतूरे के धूम्रपान से निद्रा भंग का जो कष्ट होता है। वह इस दवा से नहीं होता।

कर्नल चोपरा ने दमे के रोग से पीड़ित ६० रोगियों पर इस औषधि का प्रयोग किया। जिन रोगियों के हृदय अथवा फेफड़ों की खराबी से दमे का रोग था उनको इस औषधि से विशेष फायदा हुआ। एक रोगी जिसकी आँतों में जमी हुई विषैली सामग्री की वजह से दमे का रोग था उसको इस औषधि से स्थायी लाभ नहीं हुआ।

एक यूरोपियन आफिसर को ऐसी भयंकर दमे की तकलीफ थी कि वह लम्बे पैर करके सो नहीं सकता था। इस कारण वह तीन महिने से आराम कुर्सी पर ही पड़ा हुआ था। इस रोगी को कूट का एक्स्ट्रैक्ट नियमित रूप से देने पर तथा जिन चीजों के खाने से उसका दमा उभड़ता था, वे बन्द कर देने पर उसका रोग मिट गया और फिर तीन वर्ष समय व्यतीत होने पर भी उस पर हमला नहीं हुआ।

जिन रोगियों के दमे के कारण बहुत प्रबल हों, खास करके, जिन के शरीर में तीव्र विषैली सामग्री जमा हो गई हो, जिनके नाक में घाव हो, छाती में गांठें बँध गई हों, पाचन यन्त्र विकृत हो गया हो, अथवा इसी प्रकार के और कारणों से जिनको दमा हो और जिनको एट्रोपिन, एफिड्रिन, ड्रीनीट्रिन, इत्यादि के इन्जेक्शनों से, धतूरे के धूम्रपान से तथा दूसरे चालू मिश्रणों से इच्छित लाभ न होता हो ऐसे रोगियों को भी कूट के एक्सट्रेक्ट से क्षणिक लाभ अवश्य मिल सकता है।

मतलब यह कि कूट में ब्रोंकियल एस्थेमा अर्थात् कफ युक्त दमे के हमले को तुरन्त दबा देने का चमत्कारिक गुण है। यह श्वास नलिकाओं को फैला देती है और श्वास नली की श्लेष्म कला की सूजन को भी कम करती है। इसके उपयोग से जमा हुआ कफ, खुला होकर बाहर निकल जाता है और श्वास मार्ग बिलकुल साफ हो जाता है। जिससे दमे के नवीन हमले की आशंका कम हो जाती है और स्थायो लाभ दृष्टिगोचर होने लगता है। फिर भी दमे को उत्पन्न करने वाले मूल कारणों की जाँच हमेशा करते रहना चाहिये। जब तक उन कारणों को खोजकर दूर नहीं कर दिया जायगा तब तक केवल औषधि के सहारे स्थायी लाभ की आशा करना व्यर्थ है।

भारतवर्ष की देशी औषधियों में इसकी जड़ कामोद्दीपक और पौष्टिक मानी गई है। यह सम्भव है कि यह कामोद्दीपक हों कारण कि इसके मूत्राशय पर पड़ने वाले प्रभाव किसी रूप में अपने कामोद्दीपक प्रभाव भी दिखा देते हों। पुराने संस्कृत ग्रन्थों में मलेरिया के इलाज में इस औषधि का उल्लेख किया है। इसकी परीक्षा मलेरिया के कई भेदों पर की गई लेकिन कुछ भी लाभ नहीं हुआ। यूनानी चिकित्सक इसे सन्धिवात में, कुक्कर खांसी में, और कृमि नाश करने के उपयोग में लेने की राय देते हैं। कुक्कर खाँसी में यह फायदा पहुँचा सकती है किन्तु इसमें कृमि नाश करने की शक्ति नहीं है इस विषय में इसकी परीक्षा भी की गई किन्तु किसी भी प्रकार का लाभ नहीं दीखा। शाल और अन्य ऊनी कपड़ों में इसको रखने से उन्हें कीड़े नुकसान नहीं पहुँचा सकते इसका कारण इसके इसेंशिअल आइल की खुशबू है।

इस वनस्पति को तारीफ कोढ़ को नाश करने के लिये भी की गई है। किन्तु डाक्टर म्यूर (Muir) ने जो कि लेप्रासी रिसर्च के जिम्मेदार थे, इसकी जड़ के चूर्ण और इसेंसियल आइल दोनों ही को कई मरीजों पर अजमाया लेकिन किसी भी प्रकार का लाभ नहीं हुआ।

डाक्टर बामन गणेश देशाई के मतानुसार कूट चर्म रोगों की एक प्रधान औषधि है। इसके लेप से रुधिराभिसरण और विनिमय क्रिया सुधरती है। इसको खाने और लगाने से यह कुष्ठ, विसर्प, दाद, खाज, इत्यादि में लाभ

पहुँचाती है। इसके चूर्ण को दांतों की पेढ़ियों पर लगाने से दाँतों का दुखना बन्द होता है। व्रणों के ऊपर इसका लेप करने से व्रण जल्दी भर जाते हैं। आमवात में एरण्डी के तेल के साथ इसका चूर्ण पिलाने से और उसका लेप करने से लाभ होता है।

यह उत्तेजक और कफ नाशक है। कफ रोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में इसको देने से यह कफ को बाहर फेंक देती है जिससे खाँसी और दमे में लाभ होता है। जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय पर भी इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। जिससे यह मनुष्य की कामशक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है। प्रसूति काल के समय भी इसको देने से लाभ होता है। यह मासिक धर्म को शुद्ध और व्यवस्थित करती है। इसलिये मासिक धर्म की रुकावट और कष्ट प्रद मासिक धर्म में इसका उपयोग किया जाता है।

उपयोग—

श्वास—इसके चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से श्वास में बड़ा लाभ होता है।

हिचकी—कूट और राल का धुआँ पीने से हिचकी बन्द होती है।

मस्तक पीड़ा—कूट और एरण्ड की जड़ को काँजी के साथ पीस कर लेप करने से बादी से पैदा हुई मस्तक पीड़ा मिटती है।

गठिया—इसके बनाये हुए तेल का मर्दन करने से गठिया की पीड़ा में लाभ होता है।

बनावटें-श्वासहर कषाय—कुलथी, सोंठ, भोरीगंगणी (कटेरी छोटी) की जड़, अडूसे के पत्ते, इन चारों चीजों को एक एक तोला लेकर कूटकर, ६४ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब चार तोला पानी शेष रह जाय तब उसमें १५ रत्ती कूट का चूर्ण डाल कर पीने से श्वास, खाँसी तथा हिचकी में लाभ होता है।

कूट की फांट—कूट का चूर्ण ३ ड्राम, इलायची दाने का चूर्ण १ ड्राम, इन दोनों को ४ औंस खौलते हुए पानी में डालकर बर्त्तन का मुंह बन्द करके आधे घण्टे तक पड़ा रखना चाहिये। इस फांट को प्रति आधे घण्टे में १ औंस की मात्रा में पीना चाहिये। यह फांट चर्म रोग नाशक, दीपन, पाचन और वेदना नाशक होती है। यह हृदयोत्तेजक और चेतनाकारक है। जननेन्द्रिय पर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है।

कूट का चूर्ण—कूट के पीसे हुए चूर्ण को मक्खन के साथ मिलाकर शरीर पर मालिश करने से और ५ से लेकर १५ रत्ती तक की मात्रा में सेवन करने से शरीर की रक्त क्रिया सुधरती है और धातु परिवर्तन होता है। जिसके परिणामस्वरूप दाद, खुजली, कुष्ठ इत्यादि सब तरह के चर्म रोगों में अच्छा लाभ होता है (जंगलनी जड़ी बूटी)।

केल (क्यूएल)

नाम—हिन्दी—किल, केल, कुएल। पहाड़ी—क्यूएल। काश्मीर—कैरू, वेयर, कैल। ईरान—क्यूइल। अरबी—क्यूएर। तामील—कितलार। सीमाप्रान्त—चिल, चिला, चिलू, चेर, केल, कर्चिला। पंजाब—अरएडल, बीयर, चिर, कचिर, कैर, केल, केरि, पालसम, समशिंग, येरि, येरो। लेटिन—Pinus Excelsa (पिनस एक्सेलसा)

वर्णन—यह एक चीड़ की जाति का ऊँचा वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम खाकी रंग की होती है। पुराने झाड़ों की छाल खुरदरी हो जाती है। इसके पत्तों के पाँच-पाँच के गुच्छे लगते हैं। यह वृक्ष हिमालय प्रान्त में गढ़वाल, कुमाऊँ और सिकिम में ६००० से १२५०० फीट की ऊँचाई तक होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि कफ, कण्डू और चर्म रोगों को नाश करनेवाली होती है। इसका तेल क्यूएल तेल के नाम से प्रसिद्ध है।

श्वास नलिका की पुरानी सूजन की वजह से पैदा हुए कफ रोगों में क्युएल तेल बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे कफ की दुर्गन्धि नष्ट होती है। कफ उत्पन्न होने की क्रिया कम होती है। कफ जल्दी गिरता है और श्वास नलिका में उत्तेजना पैदा होती है। इसका कफ नाशक धर्म उच्च कोटि का है।

यह जीर्ण और सूखे हुए चर्म रोगों में खाने को भी दिया जाता है और इसका लेप भी किया जाता है। दाद, सूखी खुजली वगैरह चर्म रोगों में इससे लाभ होता है।

कोकम

नाम—संस्कृत—अम्लबीज, अम्लशाका, अम्लपुरा, साराम्ल, वृन्दार। हिन्दी—कोकम। बम्बई—कोकम। कोकण—रताम्बि, भिरंड, रातंत्री। कनाड़ी—धूपडामर, टिटिडिका। गुजराती—कोकम। मराठी—आमसोली, बिरंड, चिरंड, कलाम्बि, कोकम। तामील—मुर्गल। लेटिन—Garcinia Indica (गार्सीनिया इंडिका)। G. Purpurea (गार्सीनिया परपूरिया)।

वर्णन—यह वृक्ष कोकण और मलाबार में होता है। इसके फल, इसके बीजों का तेल और इसकी छाल औषधि के रूप में काम में आती हैं। इसका फल खट्टा और लाल रंग का होता है। इसके सूखे हुए फलों को आमसूल सोलें या कोकम कहते हैं और इसके बीजों के तेल को कोकम का तेल, भिरंडेल या मुठलें कहते हैं। यह गाढ़ा होता है। इसके बीजों में १० प्रति सैकड़ा तेल होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके ताजे फल हृदय को बल देने वाले, रक्त पित्त को नष्ट करने वाले और ग्राही होते हैं। इसके सूखे फल रोचक, पाचक, दीपक, ग्राही और रक्त पित्त को नष्ट करने वाले होते हैं। इसकी छाल स्तम्भक होती है। इसके बीजों का तेल स्तम्भक और व्रणरोपक होता है।

इसका पका हुआ फल, कृमिनाशक, पौष्टिक, कब्जियत पैदा करनेवाला और मुश्किल से हजम होने वाला होता है। खूनी बवासीर, पेचिश और हृदय रोगों में यह लाभदायक है।

उत्तर में जिस प्रकार खटाई के लिए अमलवेत का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार दक्षिण में कोकम का उपयोग होता है। अतिसार, संग्रहणी और खूनी अतिसार में इसकी फांट बनाकर दी जाती है। शरीर में पित्त उछलने पर इसके रस का मालिश किया जाता है। सरदी के दिनों में जब हाथ पैरों में बिवाई फट जाती है उसमें इसका तेल गरम करके लगाने से तत्काल लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कोकम के बीजों के तेल से मलहम तैयार किया जाता है जो चर्म रोगों में लाभदायक होता है। इसका फल शीतादि रोग प्रतिशोधक, शीतल, पित्तनाशक, स्निग्ध कारक और शान्तिदायक होता है।

गोआ के अत्तार लोग इसके फल के रस से बहुत अच्छा शरबत तैयार करते हैं जो पित्त की तकलीफों में उपयोगी होता है। इसकी छाल संकोचक होती है। इसके कोमल पत्तों को केले के पत्तों में लपेट कर पुट पाक विधि से आग में भूँज लेते हैं और फिर उन्हें ठण्डे दूध में मसल कर आमातिसार को नष्ट करने के लिये देते हैं। फुफ्फुस के रोग और शरीर की निर्बलता में यह काडलीवर आइल के समान ही उपयोग में लिया जाता है।

कोट गन्धल

नाम—संस्कृत—नेवालि। हिन्दी—कोटगन्धल। बंगाल—रंगन। बम्बई—कुरट, लोकण्डी, नरकुरट। मराठी—माकड़ी, खुरा, कुरट, लोकण्डी, नेवाली, रायकोरा। गुजराती—नेवारि। कनाड़ी—गोरवी। तेलगू—कोरिमी-पाल, कचिपड़ेल। तामील—शुलुण्डुकोर। लेटिन—Ixora Parviflora (इक्सोरा परवीफ्लोरा)।

वर्णन—यह एक हमेशा हरा रहनेवाला झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसके फूल सफेद, सुगन्धित और बड़े-बड़े गुच्छों में होते हैं। औषधि में इसके फूल ही काम में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इस औषधि के फूल हूपिंग कफ (कुक्कुर खाँसी) के अन्दर लाभदायक हैं। इनको दूध में पीस कर दिया जाता है।

सन्थाल लोग इस वनस्पति को स्त्रियों की मूत्र सम्बन्धी तकलीफों में उपयोग में लाते हैं।

कौंच बीज

नाम—संस्कृत—कपिकच्छु, आत्मगुप्ता, कचुमति, कपिरोमफल, मर्कटी इत्यादि। हिन्दी—कौंच बीज। बंगाल—

आलकुसी, बिच्छोटि, कामचा। बम्बई—कुहिली। गुजराती—कौंच। मराठी—खाजकुहिली, केंवच। पंजाब—गुंच-गजि, कौंवच, कुञ्च। तामील—अमुदारि, अरुप्रतम्, शुगशिंबि। तेलगू—दुगगुन्दि। उर्दू—कौंच। लेटिन—Macuna Pruriens (मेकूना प्रूरिऐन्स)।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी लता है। इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं। इसके पान तिकोने होते हैं। इसके फूल दो-दो तीन-तीन के गुच्छे में लगते हैं। इसकी फलियाँ रुएँदार होती हैं; यह रुआँ शरीर के किसी भी हिस्से पर लगने से अत्यन्त खुजली चल कर बदन सूज जाता है। इन फलियों के अन्दर अरण्डी के बीजों के समान कौंच के बीज निकलते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसके बीज वायु, कफ और रक्त पित्त को नष्ट करनेवाले बाजीकरण, बलदायक और दुष्ट व्रणों को नष्ट करने वाले होते हैं। इसकी जड़ पेचिश और गर्भाशय की तकलीफों में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ ऋतुस्राव नियामक होती है। इसका धुआँ प्रसूति कष्ट को दूर करता है। इसके पत्ते कामोद्दीपक, पौष्टिक, कृमिनाशक व रक्तशोधक होते हैं। ये प्रदाह को नष्ट करते हैं। इनका रस सिरदर्द में दिया जाता है। इसके बीज विरेचक, कामोद्दीपक और बिच्छू के जहर पर उपयोगी हैं ये सुजाक में भी उपयोगी होते हैं।

आयुर्वेद के अन्दर कामोद्दीपक और बाजीकरण औषधियों का जो वर्णन किया गया है उसके वानस्पतिक विभाग में कौंचबीज एक प्रधान वस्तु मानी गई है। इसमें उत्तेजक, स्तम्भक और धातुवर्धक तीनों ही गुण मौजूद हैं, इसीलिये बाजीकरण औषधियों सम्बन्धी प्रायः हर एक नुस्खे में इसका उपयोग किया जाता है।

इसकी फलियों के ऊपर का रुआँ अत्यन्त कृमिनाशक वस्तु मानी गई है। मटेरिया मेडिका आफ इण्डिया का लेखक लिखता है कि इसकी फलियों के ऊपर का रुआँ गोल कृमियों को नष्ट करने के लिये दिया जाता है। इसके स्पर्श से कृमि जखमी होकर निकल जाते हैं। मगर यदि इसका कुछ हिस्सा आँतों में संचित रह जाय तो वह अत्यन्त दाहजनक हो जाता है। इसलिये इसको देने के पश्चात् अरण्डी के तेल, काला दाना अथवा केलोमेल में से किसी भी औषधि का जुलाब दे देना चाहिये। फली के रुएँ की मात्रा आधी से पौन रत्ती तक की है, जो गुड़ में गोली बाँध कर दिया जा सकता है।

इसकी जड़ का काढ़ा पीने से अर्दित तथा हाथ, पैर वगैरह शरीर का कोई हिस्सा जो वात से शक्तिहीन हो गया हो, उसमें लाभ होता है। इस काढ़े को शहद के साथ देने से हैजे में भी लाभ होता है। इसकी जड़ में ज्ञान तन्तुओं को शक्ति देने का गुण होने से सन्निपात की बेहोशी में भी इसका काढ़ा लाभदायक होता है।

केम्पबेल के मतानुसार नागपुर में ज्वर में मूर्च्छा या सन्निपात होने पर इसकी जड़ का उपयोग किया जाता है। जलोदर में इसकी जड़ को पीस कर उसका लेप पेट पर लगाया जाता है। इसका टुकड़ा कलाई पर बाँधने के काम में भी लिया जाता है। इसके बीज बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लगाये जाते हैं।

वेस्ट इण्डिज में इसके जड़ का काढ़ा तेज मूत्रल माना जाता है। यह मूत्राशय को साफ करता है। श्लीपद रोग में इसका लेप बना कर लगाया जाता है। इसकी फलियों का शीत निर्यास जलोदर रोग की एक निश्चित दवा मानी जाती है।

डायमाक के मतानुसार इसके बीज उत्तम कामोद्दीपक हैं। इसकी जड़ स्नायु मण्डल को पुष्ट करने वाली होती है। इसे पक्षाघात की बीमारी में देते हैं। तामील के वैद्य इसकी जड़ का शीत निर्यास शहद के साथ हैजे में देते हैं।

दत्त के मतानुसार इसकी जड़ स्नायु मण्डल की तकलीफों में बड़ी लाभदायक है। यह मुँह के पक्षाघात और अर्द्धाङ्ग में भी लाभदायक है।

रस रत्नाकर, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन ग्रंथकारों के मतानुसार इसके बीज दूसरी औषधियों के साथ में साँप और बिच्छू के जहर पर दिये जाते हैं, मगर केस और महस्कर के मतानुसार साँप के विष में इसका हर एक हिस्सा निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज कामोद्दीपक, कृमिनाशक और वृश्चिक दंश में उपयोगी होते हैं।

बनावटें—बानरी वटिका—कौंच बीजों को दूध में अच्छी तरह से उबाल कर उनके छिलके अलग कर देना चाहिये। उसके बाद उन बीजों को अच्छी तरह से पीस कर फिर उसको गाय के दूध में बेसन की तरह गाढ़ा-गाढ़ा सान लेना चाहिये और पकौड़ी बनाने लायक ढीला रखना चाहिये। फिर कढ़ाई में घी डाल कर मन्दी-मन्दी आँच पर चढ़ाना चाहिये। जब घी अच्छा गरम हो जाय तब उस घी में उसकी पकौड़ियाँ बनाना चाहिये, उन पकौड़ियों को निकालकर मिश्री की गाढ़ी चासनी में डाल देना चाहिये। जब पकौड़ियें खूब चासनी पीलें तब उनको निकालकर शहद से भरे हुए बरतन में भर देना चाहिये और बरतन का मुँह बाँध कर रख देना चाहिये। इस औषधि की मात्रा दो तोले की है। सवेरे और शाम एक-एक मात्रा खाने से नपुंसकता नष्ट होकर प्रबल कामशक्ति पैदा होती है। यह उत्तम बाजीकरण योग है।

कौंच पाक—कौंच के बीजों का मगज एक सेर लेकर ५ सेर गाय के दूध में कलई के बरतन में उसका खोआ बनाना चाहिये। फिर एक कलईदार कढ़ाई में आध सेर गाय का घी डालकर उसके खोवे (मावे) को भूनना चाहिये। जब खोवा लाल हो जाय तब उसे दो सेर मिश्री की चासनी में मिलाकर जायफल, जायपत्री, कंकोल, नागकेशर, लौंग, अजवायन, अकरकरा, समन्दरशोष, सोंठ, मिर्च, पीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, सफेदजीरा, प्रियंगु और गजपीपल इन सब औषधियों को एक-एक तोला लेकर कूट पीस छानकर इस पाक में मिला देना चाहिये और ढाई-ढाई तोले के लड्डू बाँध लेना चाहिये। इस पाक के सेवन से भी कामशक्ति बहुत बढ़ती है और नपुंसकता का नाश होता है।

बानरी चूर्ण—कौंच के बीज, तालमखाना, सफेद मूसली, उटंगन के बीज, मोचरस, ऊँट कटारे की जड़ की छाल, बीजबन्द, कमरकस, शतावरी, समन्दरशोष, सूखेसिंघाड़े, इन सब चीजों को कूट पीस छानकर चूर्ण बनाकर रख लेना चाहिये। इसमें से ६ माशा चूर्ण, ६ माशा मिश्री मिलाकर खाने से और ऊपर गाय का दूध पीने से कामशक्ति बहुत बढ़ती है।

योनि संकोचन योग—कौंच की जड़ों का काढ़ा बनाकर उसमें कपड़े के टुकड़े को तर करके योनि मार्ग में रखने से ढीला पड़ा हुआ भाग संकुचित होता है।

कोकीन

नाम—हिन्दी कोकीन। अंग्रेजी—कोकीन। तामील—शिवदारि। लेटिन—Erythroxylon Coca (एरीथ्रोक्झीलोन कोका)।

वर्णन—इस वनस्पति का वृक्ष ६ से ७ फीट तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते हलके रङ्ग के और पतले रहते हैं। ये अण्डाकार और किनारों पर तीखे होते हैं। यह वनस्पति उष्ण व आर्द्र स्थानों पर अच्छी तरह से पैदा हो सकती है। लेकिन उपचार में ली जाने वाली वनस्पति शुष्क जलवायु में ही बोई जाती है। इस वनस्पति का खास घर दक्षिणी अमेरिका है मगर वह वेस्ट इण्डिज, हिन्दुस्तान, जावा, सीलोन और अन्य स्थानों में भी पैदा होती है। भिन्न-भिन्न स्थानों में पैदा होने वाली वनस्पति के रासायनिक तत्वों में भी काफी भिन्नता रहती है। इसके अन्दर पाया जाने वाला सब से महत्व का उपक्षार कोकीन होता है जो इस वनस्पति में .१५ से लगाकर .८ प्रतिशत तक पाया जाता है इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में सिनेमाइल कोकीन [Cinnamyal cocaine] ट्रक्सि लाइन (Truxilline A. B.) वेन्झाइल इगोनाइन (Benzoial Ecgonine), ट्रापे कोकीन (Tropa cocaine) हायग्राइन (Hygrine) और कुस्को हायग्राइन नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति में पाया जाने वाला उपक्षार कोकीन स्नायु मण्डल को उत्तेजना देने वाला एक जोरदार पदार्थ है। इसके प्रभाव अफीम के प्रभाव से मिलते जुलते हैं अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें अफीम से कम उग्रता रहती है, किन्तु इसका प्रभाव अफीम से अधिक स्थायी होता है।

दक्षिण अमेरिका के निवासी इसके पत्तों को चूने के साथ चूसते हैं, ऐसा करने से यह अपना उत्तेजक गुण फौरन दिखलाता है। इसके अन्दर किसी भी स्थान को संज्ञाशून्य करने का गुण भी बहुत प्रभावशाली रूप में मौजूद रहता है।

इसकी संज्ञा शून्यता का गुण मालूम होने पर यूरोप में इस वृक्ष के पत्तों की अधिक मांग हुई और इसकी खेती अधिक मात्रा में की जाने लगी। भारतवर्ष के चिकित्सकों द्वारा भी यह औषधि विशेष रूप से काम में ली जाने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप सन् १६२८-२६ में १२५६ पौंड कोकीन बाहर से भारतवर्ष में आई।

इसके कामोद्दीपक गुणों के मालूम होने पर और गवर्नमेन्ट के द्वारा इस पर रोक लगाये जाने पर भारतवर्ष के अन्दर इसका गुप्त प्रचार भी बहुत बढ़ गया। ऐसा कहा जाता है कि इसका प्रचार सन् १८८० से १८९० के बीच सबसे पहले भागलपुर में शुरू हुआ और वहाँ से यह बंगाल, बिहार, यू० पी०, पंजाब और सीमाप्रांत में फैल गई। पेसावर के लोगों के द्वारा इस वस्तु का प्रचार बहुत अधिक तादाद में हुआ।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि भारतवर्ष में यह वस्तु पान के साथ अधिक उपयोग में ली जाती है। इसी कारण इसको सेवन करने की आदत पान खाने वालों में विशेष रूप से पाई जाती है। कई लोगों का विश्वास है कि इस वस्तु के सेवन से सम्भोग क्रिया में बहुत आनन्द आता है और महज इसी कारण से कई लोग इसको खाने के आदी बन जाते हैं। दूसरा गुण इसमें यह माना जाता है कि यह मानसिक और शारीरिक थकान को दूर करने में बहुत प्रभाव दिखाती है। वेश्यायें भी इसका प्रयोग करती हैं। वे दूसरे पदार्थों के साथ में इसका इन्जेक्शन योनि में लगवा लेती हैं। इसका प्रभाव भी फौरन मालूम पड़ जाता है, इससे योनि संकोचन हो जाता है और सम्भोग क्रिया में अधिक समय लगता है और अधिक आनन्द आता है।

मगर जो लोग इसके सेवन के आदी होते हैं वे शायद इसके दुर्गुणों से परिचित नहीं रहते हैं। इस औषधि का लगातार सेवन सारे शरीर पर ऐसा विषैला प्रभाव डालता है कि जिससे मुक्त होना मनुष्य के लिये शायद जीवन भर असम्भव हो जाता है। पहला नुकसान तो इससे यह होता है कि मनुष्य इसके खाने का आदी हो जाता है। और उसे बिना खाये चैन नहीं पड़ता। दूसरे इस वस्तु का मस्तिष्क पर बहुत ही तेज प्रभाव पड़ता है, इससे मस्तिष्क में विकार खड़ा हो जाता है, भ्रम पैदा होता है और साथ ही में विषाद पूर्ण उन्माद के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ये बातें एकाध दिन के बाद ही नजर आने लगती है और प्रायः सप्ताह और महीनों तक बनी रहती है। इसके निरन्तर उपयोग से इससे भी अधिक विकार नजर आने लगते हैं, काफी अशक्तता मालूम पड़ती है, विशेष प्रकार की धातु विकृति होने लगती है, उदासीनता नजर आती है, चरित्र में फरक होने लगता है, भ्रांति होती है और इस वस्तु के सेवन करने की इच्छा अधिक प्रबल हो जाती है। इच्छा शक्ति कम होती जाती है, निर्णय शक्ति का ह्रास हो जाता है, कार्य करने की क्षमता घटती जाती है, विस्मरण होता है, चंचलता अधिक बढ़ती है और जिद भी पकड़ने लगती है। मानसिक और शारीरिक अस्थिरता दिन प्रति दिन बढ़ती है, बोलने और लिखने में निश्चितता का अभाव रहता है। सत्य बोलने वाले मिथ्या भाषी बन जाते हैं और बड़े बड़े अपराध करने लग जाते हैं। समाज प्रिय लोग एकान्त सेवी बन जाते हैं। चेतना की अपेक्षा भुलाव ज्यादा नजर आता है और मस्तिष्क के कार्यों पर इसका विध्वंसक प्रभाव अधिकाधिक विदित होता जाता है। मानसिक अशक्तता, चिड़चिड़ापन, असत्य निर्णय, वहम, वातावरण के साथ कटु व्यवहार, अनिद्रा, भ्रम, किसी भी वस्तु को असत्य रूप में समझना, ये इसके प्रत्यक्ष प्रभाव हैं। शरीर में चमड़ी के नीचे एक विशेष प्रकार का अस्वाभाविक, अप्राकृतिक अनुभव होने लगता है। अस्वाभाविक चेतना मालूम पड़ती है। अभागा प्राणी बड़ा ही दुखी जीवन व्यतीत करता है, अपना समय इसकी खुराक की प्रतीक्षा में ही व्यतीत करता है और धीरे-धीरे शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक तीनों ही दृष्टि से बिलकुल निकम्मा हो जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देशाई के मतानुसार कोका के पत्ते उत्तेजक, थकान नाशक और बल कारक होते हैं। इनको थोड़े से चूने के साथ खाने से बहुत काम करने पर भी थकावट नहीं आती और भूख नहीं लगती। बड़ी मात्रा में लेने से ये बहुत नुकसान करते हैं। इनको पीस कर किसी अङ्ग पर लेप करने से उस अंग में संज्ञा शून्यता पैदा हो जाती है। कोका के पत्ते किसी भी रोग के पश्चात् कमजोरी को दूर करने के लिये दिये जाते हैं। पेशाब के अन्दर अधिक क्षार जाने से अगर मनुष्य कमजोर होता जाय तो उसमें भी ये लाभ करते हैं। अधिक दिनों तक इनका सेवन

करने से, अफीम और शराब की तरह इनको भी लेने की आदत पड़ जाती है। जो फिर नहीं छूटती है।

दाँतों के दर्द में अथवा दाँत को निकालते समय इनको लगाने से या इसका इन्जेक्शन लेने से कष्ट नहीं होता है।

कोइनार

नाम—संस्कृत—रक्तपुष्प, कोविदार, वनराज। हिन्दी—कोइलारि, कोइनार, गैलार, कालियार, इत्यादि। वंगाल—देवकंचन, कोइरालि, रक्तकंचन। मराठी—अटमटी, देवकांचन, रक्तकांचन। पंजाब—कार्लो, कारा, कोइराल। देहरादून - खैरवान। गढ़वाल—गुइरा। तामील—कलविल इचि, मण्डरइ, नीलतिरुवति। तेलगू—वोदन्त, कंजनम्। लेटिन—Bauhinia Purpurea (बौहिनिया परपूरिआ)।

वर्णन—यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसकी छाल खाकी रंग की तथा कहीं २ गहरे बादामी रंग की होती है। इसके पत्ते ७-५ से १० सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके कोमल पत्तों के पीछे मुलायम रुआँ रहता है। इसकी फलियां पन्द्रह से पच्चीस सेण्टीमीटर तक लम्बी होती हैं। इनमें बारह से लेकर पन्द्रह तक बीज रहते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में बहुत थोड़ी तादाद में पैदा होती है। चीन में यह विशेष पैदा होती है। वहाँ इसकी खेती भी की जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ शांतिदायक और पेट के आफरे को दूर करती है। इसकी छाल रक्तातिसार में संकोचक औषधि की तौर पर काम में ली जाती है। इसका काढ़ा घावों को धोने के काम में लिया जाता है। इसके फूल मृदु विरेचक होते हैं। इसकी छाल, जड़ें और फूलों को चांवल के पानी के साथ मिलाकर व्रण और विद्रधि को पकाने के लिये काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल संकोचक, जड़ पेट के आफरे को दूर करने वाली और फूल मृदु विरेचक होते हैं।

कोएशिया [क्वाशिया]

नाम—अंग्रेजी—क्वाशिया।

वर्णन—वह एक बड़े झाड़ की लकड़ी होती है। इस लकड़ी का रंग पीलापन लिये सफेद और इसका स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—बुखार को दूर करने के लिये इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है यह कृमि नाशक और हाजमें को दुरुस्त करनेवाली होती है। इस लकड़ी में ज्वरनाशक गुण इतना अधिक है कि अगर इसकी लकड़ी से बनाये हुए प्याले में रात भर पानी को रखकर सवेरे उसको पी लिया जाय तो बुखार उतर जाता है।

कोदों

नाम—संस्कृत—कोद्रा, कोद्रवा, कोरादुशा, कोरद्रवा, कुदला, मेंद्रग्रका, उदला, वनकोद्रवा। हिन्दी—कोदक, कोदव, कोदों। बंगाल—कोदोंधान। मराटी—कोद्र, हाकि। गुजराती—कोदरा। बम्बई—कोद्र, कोद्रि, हरिक; कोद्रो कोरा, पकोड़, इत्यादि। पंजाब—कोद्रा, कोदों। तामील—वरगू वराकु। तेलगू—अरिकालु, आरिके। उर्दू—कोदो। लेटिन—Paspalum Scrobiculatum. [पेसपेलम स्क्राबिक्युलेटम]।

वर्णन—यह एक प्रकार का अनाज होता है जो हिन्दुस्तान के बहुत से हिस्सों में बरसात के दिनों में पैदा किया जाता है। इसके पत्ते नुकीले, लम्बे और बहुत कम चौड़े होते हैं। इसके दो से लगाकर छः तक बालियाँ लगती हैं जिनमें गोल-गोल और बारीक दाने निकलते हैं।

गरीब लोग इस अनाज को खाने के काम में लेते हैं। मगर यह वस्तु स्वास्थ्य प्रद नहीं होती है। इसको खाने से किसी-किसी को वमन होने लगता है और किसी-किसी को सन्निपात ज्वर हो जाता है। इस वस्तु में एक प्रकार का विषैला प्रभाव रहता है जिसकी वजह से वेहोशी, प्रलाप, कम्पन इत्यादि लक्षण पैदा हो जाते हैं। इन लक्षणों को दूर

करने के लिये केले के पत्तों की डण्डी का रस जामफल का रस खट्टा या गुड़ मिला हुआ कद्दू का रस पिलाना चाहिये। हारसिंगार के पत्तों का रस पिलाने से भी इस वस्तु का विष उतर जाता है। इसके बीजों में दो प्रतिशत तेल और ७१.४ प्रतिशत मैदा रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह वनस्पति कब्जियत पैदा करने वाली और पेट के कीड़ों को नष्ट करने वाली है। यह वातकारक और रक्तस्राव रोधक है। प्रदाह और यकृत की तकलीफों में भी यह लाभदायक है।

सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति दूसरी औषधियों के साथ में बिच्छू के विष पर लाभदायक होती है।

कैस और महस्कर के मतानुसार यह बिच्छू के विष पर लाभदायक नहीं है।

कोधव

नाम—हिन्दी—कोध। बम्बई—वेलिबी, हबब। कच्छ—कालोकटकियों, जंगली मिरची, भटकीआल। गुजराती—खोड्डु, कीमियानुझाड़, थानियू। मद्रास—विलूदि। तामील—कड़गटि। तैलगू—अदमोरी निका। लेटिन—Cadaba Indica C. Farinosa (कैडेबा इण्डिका, कैडेवा फेरिनोसा)।

वर्णन—यह एक बहु शाखी झाड़ीनुमा बेल होती है। इसकी ऊँचाई ३ से ५ हाथ तक होती है। पर यदि किसी वृक्ष का सहारा मिल जाय तो इसकी शाखाएँ बहुत ऊँची चढ़ जाती है। इसके पत्ते लम्बगोल और बालिस्त भर लम्बे होते हैं। फूल पीलापन लिये हुये सफेद होते हैं! ये गुच्छे में लगते हैं इसके फल या फलियाँ गर्मी में पकती है। ये जामुनी अथवा काले रंग की और मूँगफली की तरह होती हैं। ये पक कर के जब फटती है तब इनमें नारङ्गी रंग का गूदा निकलता है, जिसमें मदार के समान काले बीज निकलते हैं। यह वनस्पति कच्छ, गुजरात, सिन्ध, राजपुताना, मध्यभारत, कोकण और कर्नाटक में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—मुरे के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी जड़ रुके हुये मासिक धर्म को खोलती है और गर्भाशय के शूल को दूर करती है। यह ऋतुस्राव नियामक है। इसका काढ़ा गर्भाशय की तकलीफों को दूर करता है।

बच्चों को खून के दस्त, सफेद दस्त अथवा सूखा रोग हो गया हो तो इसके पत्तों को पीसकर पिलाने से लाभ होता है, इसके पत्तों का अथवा जड़ का काढ़ा कृमियों को नष्ट करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते विरेचक, कृमिनाशक, ऋतुस्रावनियामक और उपदंश में लाभदायक माने जाते हैं।

कोमल

नाम—संस्कृत—अविप्रिया। हिन्दी—कोमल। बम्बई—फिथूरसलियून। पंजाब—फितूरसलियून। परशियन-बादियान-इ-कोही। उर्दू—बादियानेखताई। लेटिन—Prangos Pobularia (प्रेंगोस पेब्यूलेरिया)।

वर्णन—यह वनस्पति काश्मीर और तिब्बत में पैदा होती है। इसका फल लम्बा और लकीरों वाला होता है। यही औषधि के रूप में आता है। इसमें बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसका फल सुगन्धित, अग्निवर्धक, विरेचक, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, विष नाशक, यकृत को पुष्ट करने वाला और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है। यह प्रदाह और शूल को नष्ट करता है। इसे कटिवात में उपयोग में लेते हैं। इसकी जड़ें खुजली में लाभदायक होती हैं। ये भी मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होती हैं।

वेलफोर के मतानुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होती है। इसमें इसेंशियल आइल, ग्लूकोसाइड्स और वेलरिक एसिड पाया जाता है।

कोलमाऊ

नाम—कनाड़ी—चितुतन्त्री, गुलिमाऊ। कुर्ग—क्रूरमाउ। कोकन—गुमाटा। मलयालम—उरउ। तामील—अनिकुरु, कोलमउ, मुलई। सिंहली—उलूलु। तुलु—नर्ककुकु। लेटिन—Machilus macrantha (मेकीलस मेक्रेन्था)।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी प्रायद्वीप व सीलोन में पैदा होती है। इसका वृक्ष बड़ा रहता है। इसके पत्ते अण्डाकार व नुकीले होते हैं, इनका ऊपर का हिस्सा चमकीला और फिसलना होता है। इसके फूल पीले और गुच्छेदार होते हैं। इसका फल गहरे रंग का होता है। इस पर सफेद धब्बे रहते हैं। यह धीरे २ काला होता जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसका छिलटा दमा, क्षय और आमवात में काम में लिया जाता है। इसके पत्ते घाव पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

कोलिके कुतार

नाम—बम्बई—कोलिके कुतार। मद्रास—करपनपुन्दु। मराठी—भुयातरेन्दा। संथाली—ओतदोम्पो। लेटिन—Lepidagathis Cristata (लेपिडेगेथिस क्रिस्टेटा)।

वर्णन—यह वनस्पति कोकण, डेकन, और कर्नाटक में पैदा होती है। इसके तना नहीं होता। इसके कई शाखाएं होती हैं, जो कि जड़ से ही फूट जाती हैं। ये शाखाएं मुलायम रहती हैं। इसके पत्ते बरछी आकार के रहते हैं। इसकी फलियां लम्बी, गोल, कुछ तीखी नोक वाली और मुलायम रहती है। प्रत्येक में २ बीज होते हैं। ये बीज गोल और चपटे होते हैं। इनके ऊपर रुआं रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह एक कटु वनस्पति है। इसे ज्वर में पौष्टिक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं। यह चर्म रोगों में खास कर खुजली में काम में ली जाती है। इसकी राख छोटा नागपुर में फोड़ों पर लगाई जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर में उपयोग में ली जाती है।

कोलीकांदा [जङ्गली प्याज]

नाम—संस्कृत—कोलकन्द, कृमिघ्न, पंजाला, पटेलू, पूतकन्द, सुपूत। हिन्दी—कोलिकन्दा, जंगली कांदा, जंगली प्याज। गुजराती—जंगली कांदा, रानकाँदो। बंगाल—बनप्याज, जंगली प्याज। मराठी—जंगली प्याज, जंगली कांदा। काश्मीर—पुटालु। कुमाऊ—घेसुआ। सीमा प्रान्त—इरकिल, कुन्दा, कुन्द्री। अरबी—अंसले-हिन्द, बस्लुल फेर हिन्द, इस्किले हिन्दी। लेटिन—Urginea Indica [आर्जीनीया इण्डिका]।

वर्णन—इस वनस्पति का कन्द देखने में प्याज की ही तरह होता है। इसका पौधा भी करीब २ वैसा ही होता है। मगर इसमें और उसमें बहुत फरक है। यह वनस्पति समुद्र के किनारे की खारी जमीनों में और पहाड़ी जमीनों पर प्रायः सब दूर पैदा होती है। इसका कन्द औषधि के रूप में काम आता है और एक वर्ष से कम उम्र का ही ज्यादा लाभदायक होता है। पुराना कन्द निःसत्व हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कोलकन्द चरपरा, गरम, कृमि रोग नाशक, वमन को दूर करने वाला और विष के विकारों को नष्ट करने वाला होता है।

यूनानी मत—से यह विरेचक, पेट दर्द को दूर करने वाला, ऋतुस्राव नियामक और लकवा, ब्रोंकाइटीज, दमा, जलोदर, गठिया, चर्मरोग, सिर दर्द, नाक के रोग इत्यादि रोगों में लाभदायक है।

कोमान के मतानुसार इसके कन्द का उपयोग जीर्ण वायु नलियों के प्रदाह में व नाक के बहने पर शरबत के रूप में आउट पेशंट्स (बीमारों) को दिया गया। वह इन दोनों ही रोगों में उपयोगी पाया गया।

डाक्टर चोपरा और डे० ने सन् १९२६ में जो प्रयत्न किये हैं, उनसे पता चलता है कि यह वस्तु युनाइटेड स्टेट्स में पाई जाने वाली Urginea Miritima से व इंग्लैंड में पायी जाने वाली U, Scilla से किसी कदर कम नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को उत्तेजना देने वाली और मूत्रल है।

डा० देसाई के मतानुसार इस औषधि की क्रिया हृदय पर बिल्कुल डीजीटेलिस के समान होती है। यह छोटी मात्रा में पसीना लाने वाली है, मूत्र विरेचन करती है, कफ को नाश करती है और हृदय को ताकत देती है। बड़ी मात्रा में यह वमन और दस्त लाती है तथा आमाशय और अंतड़ियों में दाह पैदा करती है, और भी अधिक मात्रा में लेने से यह दस्त और उल्टी लाकर प्राण नाश करती है। इसके अन्दर के द्रव्य आंतों के द्वारा मूत्रपिंड के द्वारा और फेफड़ों के द्वारा बाहर निकलते हैं। आंतों से बाहर निकलते समय ये मल को पतला कर देते हैं। मूत्रपिण्ड से बाहर निकलते समय ये मूत्र के प्रमाण को बढ़ा देते हैं और फेफड़े द्वारा बाहर निकलते समय ये कफ को पतला कर देते हैं।

यह वनस्पति डिजीटेलिस की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली, मूत्र-निस्सारक और पाचननली में दाह करने वाली होती है। डिजिटेलिस में कफनाशक धर्म नहीं होता, मगर कोलीकन्द में कफनाशक धर्म रहता है। कोलीकन्द से हृदय को बल मिलता है। उसके ठोके साफ हो जाते हैं और वह शान्ति गति से चलने लगता है। हृदय का अनुसरण नाड़ी भी करती हैं और वह भी शान्ति गति से स्थिरता के साथ चलने लगती है। इसकी मात्रा आधी रत्ती से १।। रत्ती तक है।

जिन २ स्थानों पर डिजिटेलिस का व्यवहार किया जाता है उन २ स्थानों पर इस औषधि का प्रयोग करने से यथेष्ट लाभ होता है। खास करके फेफड़े के रोगों पर इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। जब कफ अधिक और चिकना होकर जम जाता है तब इसको देने से यह उसको निकाल देता है। श्वास नली की जीर्ण सूजन में यह बहुत लाभ पहुँचाता है। पुराने कफ रोग में इसको देने से तीन प्रकार के लाभ होते हैं। १—जीर्ण कफ रोग की वजह से हृदय के अन्दर हमेशा एक प्रकार की शिथिलता बनी रहती है, वह दूर हो जाती है। २—कफ छूट कर जल्दी बाहर निकलता है। ३—आमाशय की ताकत बढ़ कर भूख लगती है और अन्न का पाचन होकर दस्त साफ होती है।

यह औषधि नवीन कफ रोगों में नहीं देना चाहिये। इपिकाक की अपेक्षा यह विशेष दाहजनक होती है, इसलिये इसे वमन कराने के लिये कभी नहीं देना चाहिये।

मूत्र का परिमाण बढ़ाने के लिये इसको अकेले न देकर दूसरी औषधियों के साथ देना चाहिये। हृदयोदर रोग में इसका विशेष उपयोग किया जाता है और इस कार्य में यह विशेष कर पारा और डिजिटेलिस के साथ दी जाती है। हृदय की शिथिलता को दूर करने के लिये इसे डिजिटेलिस के बदले में दिया जाता है और कभी-कभी डिजिटेलिस के साथ मिलाकर भी दिया जाता है। हृदय की शिथिलता में—फिर वह चाहे ज्वर की वजह से हुई हो, हृदयपटल के रोगों से हुई हो, मूत्र पिण्ड के रोगों से नाड़ी कठिन हो जाने की वजह से हुई हो अथवा पाण्डु रोग या और किसी कारण से हुई हो—इसको छोटी मात्रा में देने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—मूत्रावरोध—नींबू के सामान आकार के कोलीकांदे को ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में देने से मूत्र वृद्धि होती है।

गठिया—कोलीकांदे को कूट कर पुल्टिस बनाकर बाँधने से गठिया और चोट की सूजन मिटती है।

बनावटें—कोलीकन्द उषक बटिका—कोलीकन्द पचीस भाग, बच्छ बीस भाग, उषक गोंद बीस भाग और शहद बीस भाग। इन सब औषधियों को मिलाकर २ से ४ रत्ती तक की गोलियाँ बना लेना चाहिये। ऊपर जिन २ रोगों में कोलीकन्द के लाभ बताये गये हैं, उनमें इसको देने से भी वही लाभ होता है।

कोलीकन्द का सिरका—कोलीकन्द १ भाग को उससे चौगुने सिरके में मिलाकर उपयोग करना चाहिये।

अर्क कोलीकन्द—कोलीकन्द को पाँच गुनी रेक्टिफाइड स्पिरिट में ८ दिन तक भिगोना चाहिये। उसके बाद पाँच से लेकर पन्द्रह बूँद तक की मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये। इससे भी वे ही लाभ होते हैं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है।

कोलकन्द अवलेह—कोलकन्द २ तोला, आकड़े की जड़ का चूर्ण १।। तोला, अफीम ७ माशे, सेंधा नमक ४।। तोला, उषक गोंद २ तोला। इन सब चीजों को कूट पीस कर इनके कुल वजन से तिगुने शहद में मिला देना चाहिये। इसको १ माशे की मात्रा में देने से भी उपरोक्त वर्णित सब रोगों में लाभ होता है।

कोलेझान

नाम—बम्बई—कोलेझान। मराठी—नादेन। नेपाल—चर्चेर। तेलगू—गुदमेतिगे, कोकित् यारआलू। लेटिन—Vitis Adnata [विटिस एडनेटा]

वर्णन—यह एक प्रकार की बेल होती है। इसके पत्ते ७.५ से १२.५ सेन्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल हरे पीले रंग के होते हैं। इसका फल अण्डाकार होता है। इस फल में प्रायः एक बीज रहता है। फल पकने पर काला हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके सूखे कन्द का काढ़ा देने से खून साफ होता है। यह काढ़ा धातु परिवर्तक और मूत्र निस्सारक होता है।

संथाल के लोग इसकी जड़ को पीस कर, गरम करके हड्डी के मुड़ जाने पर बांधते हैं।

कौसू

नाम—यूनानी—कोसू जिश्की। लेटिन—वरीरा एन्थल मेटिका [Varira Anthalmetica]।

वर्णन—यह एक प्रकार का वृक्ष होता है जो अबीसीनिया, अफ्रिका, टर्की इत्यादि में पैदा होता है। इस वस्तु के कृमिनाशक गुण की शोध सब से पहिले बरीरा नामक एक फ्रांसिसी डाक्टर ने की, जो उस समय कुस्तुन्तुनियां में रहता था। उसी के नाम से इस औषधि का नाम बरीरा एन्थल मेटिका रखा गया। इस दरख्त के पत्ते आड़ू के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों पर ऊँची २ नसें उभरी हुई रहती है। इस पर नर और मादा दोनों प्रकार के फूल आते हैं। नर फूल की रंगत भूरी और मादा फूल की रंगत लाल होती है। इसका स्वाद कड़वा और बे मजा होता है। इसे औषधि में कोसियन नामक एक प्रकार का उपक्षार, तथा राख और गोंद में पाये जाते हैं [ख० अ०]

गुण दोष और प्रभाव—यह औषधि पेट के कृमियों को अर्थात् कद्दू दानों को नष्ट करने में बहुत प्रशंसा पा चुकी है। इसके सूखे चूर्ण को आधे पाइण्ट गरम पानी में १५ मिनट तक भिगों कर यह पानी बड़े सवेरे निराहार हालत में रोगी को पिला दें। उसके तीन-चार घण्टे बाद उसको एक हलका जुलाब देदें। अगर रोगी का जी मिचलाने लगे तो थोड़ा सा नींबू का शिकंजबीन पिला दें। इस प्रयोग से पेट के सब कीड़े दस्त की राह बाहर हो जाएँगे। इसकी मात्रा आधे औंस से चार औंस तक है। [ख० अ०]

कौड़ी

नाम—संस्कृत—कपर्दिका, वराट, चराचर, बालक्रीड़क। हिन्दी—कौड़ी। बंगला—कड़ि। मराठी--कवड़ी। गुजराती--कोड़ी।

वर्णन--कौड़ियाँ सारे हिन्दुस्तान में मिलती हैं। ये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इनकी सफेद, लाल और पीली ऐसी तीन प्रकार की जातियाँ होती हैं।

कौड़ी को शुद्ध करके उसकी भस्म बनाकर उपयोग में लिया जाता है। इसको एक प्रहर तक कांजी में औटाने से यह शुद्ध हो जाती है। उसके बाद कोयले की अग्नि में रख कर धौकनी से फूँकने से इसकी सफेद रंग की भस्म तैयार हो जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से कौड़ी की भस्म गरम, दीपन, चरपरी तथा वायुगोला, वात, कफ, परिणाम शूल संग्रहणी, क्षय रोग, कर्ण रोग और नेत्र रोग को हरनेवाली होती है। किसी-किसी आचार्य के मत से कौड़ी ठण्ढी होती है।

कौड़ी की भस्म में केलशियम का बहुत अंश रहता है। इसलिये जिन रोगों में मनुष्य शरीर के अन्दर केल्शियम की कमी हो जाती है, उन रोगों में इस भस्म का प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दरजे में गरम और खुश्क और किसी २ के मत से सर्द खुश्क होती है। यह बदहजमी, संग्रहणी और कान के बहने में बहुत मुफीद है। 'पीली' कौड़ी को पीसकर मसाने पर लेप करने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इनको पानी में घिस कर आँख में लगाने से जाला कट जाता है और देखने की

ताकत बढ़ जाती है। इसका लेप करने से दाद और कोढ़ के दाग में भी लाभ होता है, नोसादर के साथ कौड़ी को पीसकर लगाने से चर्मरोग मिटते हैं। पीली कौड़ी को जला कर, पीस कर आधे माशे के करीब कान में डालने से और ऊपर से नींबू का रस टपकाने से उफान आता है और कान का दर्द मिट जाता है।

उपयोग—सूखी खाँसी—इसकी भस्म को २ रत्ती की मात्रा में पान में रखकर खाने से सूखी खाँसी मिटती है।

क्षयरोग—इसकी भस्म को मक्खन के साथ चाटने से क्षयरोग में लाभ होता है।

मन्दाग्नि—इसकी भस्म को पीपलामूल के साथ देने से मन्दाग्नि मिटती है।

उदरशूल—इसकी भस्म को कालीमिर्च के साथ मिलाकर आधे नींबू में भरकर उसको गरम करके चूसने से उदरशूल मिटता है।

संग्रहणी—कौड़ी की भस्म ३ माशे, शहद ७ माशे और नमक १ माशा। इन तीनों चीजों को चटाने से संग्रहणी मिटती है, मगर इसके सेवन करनेवाले को केवल सांठी का चावल और दूध के पथ्य पर रहना चाहिये।

मुहाँसे—पीली कौड़ी को पीसकर नींबू के रस में भिगो देना चाहिये। जब रस सूख जाय तब खरल करके लगाने से मुँह की झांई और मुहांसे मिटते हैं।

कान का बहना—इसकी राख को कान में डालने से कान का जखम भर कर पीप का बहना बन्द हो जाता है।

कोसम

नाम—संस्कृत—कोषाम्र, कृमिवृक्ष, क्षुद्राम्र, रक्ताम्र, बनाम्र। हिन्दी—कोसुम, कुसुग, गोसुम। मराठी—कोसिम्भ, कुसुम्भ, काहेन, पेडूमन। बम्बई—गोसम, कोचम, कोसम, कोशिम्भ। मध्यप्रदेश—कुसुम। गुजराती—कौसमी, कोसुम्ब। पंजाब—गोसम, जमोआ, कुसुम्ब, सुमा। तामील—कोलमा, कोजिपुमरम। तेलगू—कोदलीपुलुस, पपार्टि। लेटिन—Schleichera Triguta [स्केलिचेरा ट्रिगुटा]।

वर्णन—यह एक खूबसूरत और बड़ा वृक्ष होता है, जो हिमालय में सतलज से नेपाल तक तथा छोटा नागपुर, मध्यभारत, सीलोन और बरमा में पैदा होता है। इसको जंगली आम भी कहते हैं। इसका वृक्ष मध्यम ऊँचाई का रहता है। इसकी छाल मोटी, नरम, हलके बदामी रंग की और फिसलनी होती है। इसके पत्ते २० से ४० सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए पीले होते हैं। इसके फल जायफल की तरह होते हैं। इन फलों में १ से ३ तक बीज रहते हैं। इसके फल का गूदा सफेद, खट्टा, रोचक और खाने लायक होता है। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है। कलकत्ते में इसके बीजों को पक कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मतानुसार इसका छिलटा चर्मरोग, प्रदाह, व्रण और कफ में लाभदायक होता है। इसका कच्चा फल तूरा व खट्टा, गरम और मुश्किल से पचनेवाला होता है। यह पित्तकारक, वातनाशक और आँतों को सिकोड़ने वाला होता है। इसका पका फल मीठा, खट्टा, सरलता से पचनेवाला, आँतों को सिकोड़नेवाला व रुचिकर और भूख को बढ़ाने वाला होता है। इसके बीज स्निग्ध, सुस्वादु और क्षुधावर्धक होते हैं, ये पौष्टिक और पित्तनाशक होते हैं। इसका तेल कड़वा, तूरा और मीठा होता है। यह पौष्टिक, अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और विरेचक होता है। यह चर्मरोग में लाभ पहुँचाता है और घाव को पूरता है।

इसका छिलका संकोचक है। इसे तेल में लिलाकर खुजली की बीमारी पर लगाते हैं। संथाल जाति के लोग इसको पीठ और कटि की पीड़ा दूर करने के लिये काम में लेते हैं।

इसका तेल खुजली और मुँहासे के ऊपर लगाया जाता है।

इसके बीजों का तेल गंज में अत्यधिक लाभ पहुँचाता है। इसके लगाने से गंज मिटकर बाल उगने लग जाते हैं। नीलगिरी निवासी इसके तेल को शरीर पर मलते हैं। इसके प्रभाव भिन्न २ बताये गये हैं। संयुक्त प्रान्त के लोग इसे विरेचक बताते हैं। बम्बई प्रान्त के थाना डिवीजन के लोग इसे विसूचिका रोग में रोग निवारक बताते हैं। बम्बई के लोग इसे आमवात में मालिश करने के काम में लेते हैं। मध्य प्रान्त में सम्भलपुर के निवासी इसे सिरदर्द मिटाने के

लिये काम में लेते हैं। बाम्बे, मलाबार और कुर्ग में इसे खुजली और अन्य चर्म रोग मिटाने के लिये काम में लेते हैं। यह इलाज जंगली जातियों में ज्यादा प्रचलित है। इसके बीजों को पीसकर जानवरों के घावों पर लगाते हैं और भीतर के कृमियों को नाश करने के काम में भी देते हैं।

कम्बोडिया में इसका छिलका मलेरिया की बीमारी में शीत निर्यास के रूप में काम में लिया जाता है। सुश्रुत और बापट इसके फूल को सर्पदंश में उपयोगी बताते हैं, किन्तु केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पविष नाशक नहीं है।

कोष्ट

नाम—संस्कृत—दीर्घपत्री, दिव्यगन्धा, विषारि, नाड़ीक, बृहच्चँचु। हिन्दी—कोष्ट, वनपात, पात। बंगाल—कोष्ट पात, ललितपात, वनपात, मुंगीपात,। गुजराती—छुन्छो, मोटी छुन्छो। मद्रास—सनेल। पंजाब—वन.फल। तामील—पेटाति, पुनपु। तेलगू—परितां, परितंकुरा। लेटिन—Corchorus Olitorius (कार कोरस ओलिटोरियस)।

वर्णन—यह सन के वर्ग की एक वनस्पति हैं। इसके झाड़ तरकारी के लिए लगाये जाते हैं। इसके पत्ते ६-३ से १० सेन्टीमीटर तक लम्बे और ३.५ से ५ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हलके पीले रंग के रहते हैं। इसकी फलियाँ ३ से लेकर ६.३ सेण्टीमीटर तक लम्बी रहती हैं। इसके बीज काले रहते हैं। इसके सूखे हुए पत्ते नलित या नालित के नाम से बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते तीखे उष्ण और कसैले होते हैं। ये दाह नष्ट न करने वाले, संकोचक, मूत्र निस्सारक, बलदायक, मृदु स्वभावी, ज्वरनाशक और धातुपरिवर्तक होते हैं। इस: अतिरिक्त ये अर्बुद, शूल, जलोदर, बवासीर और पेट के उपद्रवों को भी दूर करते हैं।

इस बनस्पति को सुखाकर, जलाकर, पीस लेते हैं और घाव पर लगाने के उपयोग में लेते हैं। दक्षिणी हिन्दुस्तान में इसे शान्तिदायक वस्तु के तौर पर काम में लेते हैं।

इसके पत्ते शांतिदायक, पौष्टिक और मूत्रल हैं। ये मूत्राशय के प्रदाह के जीर्ण रोगों में और सुजाक में लाभदायक हैं। इसके पत्ते और कोमल डालियाँ खाने के काम में ली जाती हैं। यह पौष्टिक और ज्वर निवारक होने के कारण एक प्रकार की घरेलू औषधि है। इसे ज्वर में पीने के काम में लेते हैं।

इसके सूखे पत्ते बाजार में बेचे जाते हैं। इसका शीत निर्यास कटुपौष्टिक औषधि की तौर पर काम में लिया जाता है। इसमें उत्तेजक गुण नहीं रहते हैं जो बीमार तीव्र पेचिश रोग से मुक्त हो जाते हैं उन्हें यह औषधि भूख और ताकत बढ़ाने के लिए दी जाती है। इसके बीज विरेचक हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर व पेचिस में उपयोगी है।

ज्वर के अन्दर इस वनस्पति के पत्तों की फांट बनाकर दी जाती है। अतिसार में इसके पत्ते १ रत्ती की मात्रा में सोंठ और शहद के साथ दिये जाते हैं। इसके पंचांग की राख शहद में मिलाकर गुल्म रोग (वायु गोला) को नष्ट करने के लिये दी जाती है। मूत्रकृच्छ्र और जीर्ण वस्तिशोथ में इसके पत्तों की फांट लाभदायक होती है। इसके पत्तों के हिम कषाय से भूख बढ़ती है और पाचन शक्ति दुरुस्त होती है।

कड़ कोष्ट

नाम—संस्कृत—दीर्घचंचु, कौंटि। हिन्दी—कड़ुकोष्ट, कड़वा पात। मराठी—कड़ुचंच। बम्बई—कड़ छुंछ, कुरुछुंभ। गुजराती—कड़वी छुंछड़ी। लेटिन—Corchorus Triloc ılaris (कारकोरस ट्रिलोक्यूलेरिस)

वर्णन—यह वनस्पति बंगाल, दक्षिण, मद्रास और बाम्बे प्रेसीडेन्सी, खानदेश, गुजरात, कच्छ, सिन्ध, ब्लूचिस्तान, अफगानिस्तान, अरेबिया और दक्षिण अफ्रीका में पैदा होती है। यह एक वर्षजीवी वनस्पति है। इसका प्रकाण्ड और शाखाएँ कुछ रुएंदार होती हैं। इसके पत्ते बरछी के आकार के रहते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी व नोकदार रहती हैं। इसके बीज काले रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, गरम, कसैली और आंतों को सिकोड़ने वाली होती है। यह अर्बुद, जलोदर, बवासीर और पेचिश में फायदा पहुँचाती है। इसके पत्ते सुस्वादु होते हैं। ये शीतल, विरेचक, उत्तेजक, पौष्टिक और कामोद्दीपक रहते हैं। इसके बीज गरम, तीक्ष्ण, शूलनासक तथा अर्बुदनाशक होते हैं। ये खुजली, पेट की तकलीफ और चर्म रोगों को मिटाने वाले रहते हैं।

इस वनस्पति को कुछ देर पानी में गलाकर और मसल कर शांतिदायक औषधि के तौर पर काम में लेते हैं। इसके बीज़ कटु होते हैं और इन्हें ८० ग्रेन की मात्रा में ज्वर में, पेट की तकलीफों में और खास करके आंतों की पीड़ा में काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज ज्वर में उपयोगी हैं।

कोपेबा

नाम—अंग्रेजी—Copiabea कोपेबा।

वर्णन—यह वृक्ष ब्रॉंझील, झंजीरा और अमेरिका में पैदा होता है। इसके झाड़ के पिंड में चीरा देने से एक प्रकार की हलके पीले रंग की चिपचिपी राल निकलती है। इसमें एक प्रकार का तेल भी रहता हैं, जो कोपेबा आइल के नाम से मशहूर है।

गुण दोष और प्रभाव—कोपेबा आइल का असर चमड़े के ऊपर खास तौर से होता है। इसके खाने से जी मिचलाता है और बहुत डकारें आती हैं। अधिक मात्रा में इसको लेने से दस्त और उल्टियाँ होने लगती हैं। ज्यादा समय तक इसको लेने से हाजमा खराब हो जाता है। श्लेष्मिक झिल्ली पर इसका असर दूसरे मुलायम तेलों की तरह होता है। यह वस्तु खून में बहुत जल्दी प्रवेश कर जाती है और रक्तवाहिनी नाड़ियों को फैला देती है। गुर्दे के ऊपर इसका असर बहुत तेज होता है। यह मूत्र निस्सारक भी है। सुजाक में भी यह लाभ पहुँचाती है। गुर्दे और मसाने की सूजन, योनि की सूजन, श्वेत प्रदर और पुरानी खांसी में यह अच्छा लाभ करती है। सुजाक में जब कि उपद्रव बहुंत जोरों पर हो तब इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। बल्कि जब सूजन दूर हो जाय तब इसका प्रयोग करना चाहिये।

जिगर या दिल की खराबी से होनेवाले जलोदर में भी यह बहुत मुफीद है।

कोपेबा बहुत बदजायका दवा है। इसके इस्तेमाल से हाजमा भी खराब हो जाता है। इसलिए इसको सुजाक के सिवाय दूसरे रोगों में कम उपयोग में लेना चाहिये।

कोरंतो

नाम—संस्कृत—एकनायकम। मद्रास—कोरंती। सिंहली—हिम्बुतुरवेल कोलतल हिम्बुट्ट। लेटिन—Salacia Reticulata [सेलेशिया रेटिक्यूलेटा]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष के दक्षिण पश्चिम में और सीलोन में पैदा होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ का छिलका आमवात, सुजाक और चर्म रोगों में काम में लिया जाता है।

कोपाटा

नाम—बंगाली—कोपटा। लेटिन—Bryophyllum Calycinum [ब्रियोफिलम केलिसिनम]।

वर्णन—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते घाव, फोड़े और कीड़ों के काटने पर उपयोग में लिये जाते हैं।

कुन्दश

नाम—यूनानी—कुन्दश।

वर्णन—कुन्दश के विषय में यूनानी हकीमों में बड़ा मतभेद है। कोई २ इसे अकलबेर की जड़ मानते हैं। किसी ने इसको चूक बतलाया है जो कि सत्यानाशी की जड़ को कहते हैं। किसी २ ने इसको नक छींकनी माना है। लेकिन खजाइनुल अदविया के लेखक ने इसे वेख गाजरान माना है।

गुण दोष और प्रभाव—खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह तीसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। यह प्यास लगाती है, कफ को छांटती है। पित्त, वात को दूर करती है। पेट के कृमियों को नष्ट करती है। तथा जलोदर, पीलिया, गठिया, लकवा, फालिज, मृगी, कुष्ठ, तिल्ली की सूजन और रतौंधी में लाभ पहुँचाती है। आवाज को साफ करती है और आँख की रोशनी को तेज करती है। इसको रोगन बनफसा में जोश देकर कान में टपकाने से कान का मैल, कान की भनभनाहट और बहिरेपन में लाभ होता है।

इसके तेल को नाक में सुँघाने से बहुत छींकें आती हैं और छींकों के जरिये दिमाग का सब कफ और विक दूर हो जाते हैं। अगर छींकें अपने आप न रुकें तो बनफशा के तेल को नाक में टपकाने से छींकें रुक जाती हैं। य औषधि मूत्र निस्सारक और रक्तावरोध को मिटाने वाली है। इसके सेवन से मासिक धर्म चालू हो जाता है। गर्भवत स्त्रियों को इसे नहीं देना चाहिये क्योंकि इसके सेवन से गर्भपात हो जाता है।

इसको शहद के साथ लेप करने से चेहरे की झाँईं, श्वेत कुष्ठ के दाग और दूसरे चर्म रोग मिट जाते हैं यह औषधि फेफड़े को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा और दूध का प्रयो करना चाहिये।

इसकी मात्रा वमन करने के लिए ६ रत्ती से १२ रत्ती तक की है और ताप, तिल्ली तथा पीलिया के लिये १२ जौ से २१ जौ तक है।

खजूर

नाम—संस्कृत—दीप्य, मुदारिका, पिंडखर्जुरा, पिण्डखर्जुरिका, पिण्डफला, स्वादुपिण्डा। हिन्दी—खजि, खजूर खारक। अरबी—नखलेह। बंगाल—खजूर। बम्बई—खजूर। ब्रह्मा—सुनबलून। कनाड़ी—कजुरा, कारिंका, खर्जुरा गुजराती—खारेक, खजूर। मलयालम—इत्तपालम। मराठी—खजूर। नसीराबाद—खाजि, खुरमा। पंजाब—खाजि खजूर। सिंध—कुरमा, काजि, तार, पिण्डचदी। तामील—इचु, इन्जु कर्चुर, पेरेण्डु, पेरिन्जु, तिति। तेलगू—खर्जुरम मंजीइता, पेरिड, पेरिता। टर्की—करमा। उर्दू—खुरमा। उड़िया—खांर्जुरि। लेटिन—Phoenix Dactylifera [फोइनिक्स डेक्टिलिफेरा]।

वर्णन—यह वनस्पति सिन्ध में और दक्षिण पंजाब में ज्यादा पैदा होती है। यह पश्चिमीय एशिया, उत्त अफ्रिका, स्पेन, इटली, ग्रीक और सिसेली में भी होती हैं। इसका वृक्ष ऊँचा होता है। इसके प्रकांड पर पत्रबन्त डण्ठल लगे हुए रहते हैं। इसके पत्ते कुछ-कुछ भूरापन लिये हुये रहते हैं और खजूरी के पत्तों से छोटे होते हैं इसका फल २·५ से ७·५ सेन्टिमिटर तक लम्बा रहता है। यह पकने पर कुछ लाल या हलके बदामी रंग का हो जाता है और मीठा रहता है। इसको कई भिन्न २ जातियों की खेती की जाती है। इसका बीज लम्बगोल रहता है और इसके फल के बीच में खड़ी लकीर शुरू से आखीर तक रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा और शीतल रहता है। यह पौष्टिक, मोटा कर वाला, कामोद्दीपक और विषहर होता है। यह कुष्ठ, प्यास, श्वास, वायुनलियों का प्रदाह, थकान, क्षय, उदर रो ज्वर, वमन, मस्तिष्कविकार और चेतना नष्ट होने पर लाभदायी होता है। इस वृक्ष से तैयार की हुई मदिरा कामोद्दीपक नशा लाने वाली, मोटा बनाने वाली और रुचि पैदा करने वाली होती है। यह वायु नलियों के प्रदाह में और बात में उपयोगी तथा पित्त कारक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते कामोद्दीपक होते हैं। ये यकृत रोग में लाभदायी हैं। इसका फूल कटु, विरेचक, कफनिस्सारक और यकृत को पुष्ट करने वाला होता है। यह ज्वर और खून सम्बन्धी शिकायतों में फायदा करने वाला होता है। इसका फल कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है। यह गुर्दा वह मूत्राशय को मजबूत बनाता है और रक्तवर्द्धक है। यह पक्षाघात, सीना और फेफड़े की तकलीफों में लाभदायी है। इस का सूखा फल मीठा, मूत्रल, कामोद्दीपक और रक्तवर्द्धक है। यह वायु नलियों के प्रदाह में लाभदायक है। इसके बीज को चोट पर लगाने के काम में लेते हैं। यह प्रदाह को कम करता है।

खारक या खजूर शान्तिदायक, कफ, निस्सारक, विरेचक और कामोद्दीपक मानी जाती है। यह खांसी, श्वास व छाती की तकलीफों में लाभदायक है। ज्वर, सुजाक इत्यादि में भी यह फायदा पहुँचती है। इसका गोंद अतिसार रोग की एक उत्तम औषधि मानी गई है। यह मूत्राशय व गर्भाशय के विकारों को दूर करती है। इस फल के अधिक उपयोग से मसूड़े फूल जाते हैं।

दक्षिण भारत के निवासी इसके बीजों की लुग्दी तैयार करते हैं और चक्षु पटल की तकलीफ में पलक के ऊपर लगाने के काम में लेते हैं। इसका ताजा रस शीतल और विरेचक है। ठंड की मौसिम में यह रस नहीं बिगड़ता क्योंकि उस समय इसमें खमीर नहीं उठता। अतएव यह एक उत्तम औषधि है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक, कफनिस्सारक, मृदुविरेचक और कामोद्दीपक है। यह श्वास में उपयोगी है।

खजूरी

नाम—संस्कृत—भूमि खजूरिका, हरिप्रिया, काककर्कटी, कपिता, खार्जु, खर्जूरी, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, वादुमुरतका, इत्यादि। हिन्दी—केजूरखाजि, खजूर, खजूरि, सालमा, सेन्धि थक्लि, थलमा। बंगाल—काजर, केजूर। बरार—सेन्दि। बम्बई—खजूर, खजूरा और सेन्दि। कनाडी—अन्दईचलु, पिचालु, इचेला, कलिचालु। डेकन—सेंदोले कनार। कोकनी—कजूरी। मराठी—शिन्दि, सेन्धि, सिन्दी। मुंडारि—दरुकिता। पंजाब—खाजि, खजूर। सिंहली—इन्दि। तामील—इन्जु, करवम, करिंजु। तेलगू—पेडईदा। उड़िया—खोजुरि, खोजिरो। लेटिन—Phoenix Sylvestris (फोइनिक्स सिलवेस्ट्रिस)

वर्णन—यह एक बहुत सुन्दर वृक्ष रहता है। इसका प्रकांड खुर्दरा होता है क्योंकि इस पर पत्तों के डण्ठल मौजूद रहते हैं इसका ऊपरी हिस्सा गोल, बहुत बड़ा और घना होता है। इसके पत्ते कुछ हरे रङ्ग के होते हैं। यह प्रायः सारे ही भारतवर्ष में पैदा होती है। इसे लगाते भी हैं और जङ्गल में यह अपने आप भी लग जाती है। इसके नर पुष्प सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसके ऊपर काँटे भी रहते हैं। इसके नारी पुष्प नर पुष्प ही की तरह होते हैं। इसके फल इसके लम्बे ब्रन्तों पर लगे हुए रहते हैं। इसका फल २-५ से ३-२ सेन्टीमीटर तक लम्बा होता है। यह लम्बगोल होता है। इसका रंग नारंगी की तरह पीला होता है। इसकी गुठली पर एक सफेद झिल्ली रहती है। यह झिल्लीगूदे और गिरी को प्रथक २ करती है। इसके बीज को नोकें गोल रहती हैं। इसके एक बाजू पर गहरी लकीर रहती है और दूसरी बाजु पर भी हलकी व अधूरी लकीर रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा, स्निग्ध, पौष्टिक, चर्बी बढ़ाने वाला कब्जियत करने वाला और कामोद्दीपक होता है। यह हृदयरोग, ज्वर, वमन और चेतना नष्ट होने पर लाभ पहुँचाता है।

इसके वृक्ष से प्राप्त किया हुआ रस शीतल होता है। यह एक उत्तेजक पेय है। इसके मध्य का कोमल हिस्सा सुजाक और प्रमेह में लाभदायक है। इसकी जड़ दाँतों के दर्द में उपयोगी है।

इसका फल बादाम, पिश्ते, शकर और अन्य मशालों के साथ में मिलाकर पौष्टिक पदार्थ के रूप में काम में लिया जाता है। इसके फल के गूदे को लुगदी बनाकर अपामार्ग के साथ में उसे मिलाकर पान के साथ खाने से जूड़ी बुखार में फायदा होता है।

कर्नल चोपरा के मत से यह पौष्टिक, उत्तेजक तथा शक्तिदायक पदार्थ है।

खजामा

नाम—यूनानी—खजामा।

वर्णन—इसका झाड़ बनफशा के झाड़ की तरह होता है इसके फूल भी बनफशा के फूलों की तरह लेकिन कुछ नीलापन लिये हुए होते हैं। इन फूलों से सेव के फूलों की तरह खुशबू आती है। इसके बीज कुछ काले रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय पहाड़ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव——यूनानी मत से यह दूसरे दरजे में गरम और खुश्क है। इसके फूल, पत्तों से ज्यादा गरम होते हैं। इसके फूल गरमी पैदा करते हैं, जुकाम को दूर करते हैं, दिल और दिमाग को ताक़त देते हैं। इनको पीसकर योनिमार्ग में रखने से सफेद प्रदर में लाभ होता है। मूत्रेन्द्रिय पर इनका लेप करने से कामशक्ति बढ़ती है। यह वनस्पति गरम मिजाज वालों को सिरदर्द पैदा करती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये आस का प्रयोग करना चाहिये। इस वनस्पति का प्रतिनिधि अकलकरा है।

खतमी

नाम—यूनानी—खतमी।

वर्णन—यह एक पौधा होता है। इसके पत्ते गोल, खुरदरे और फीके हरे रंग के होते हैं। इसके फूल बड़े, गोल और सफेद, गुलाबी, लाल, पीले इत्यादि कई रंगों के होते हैं। अलग २ रङ्ग के फूलों वाली खतमी के गुणों में भी कुछ अन्तर रहता है, सफेद रङ्ग के फूलों वाली जाति सब से अधिक गुणों वाली मानी जाती है। इसकी जामुनी फूल वाली जाति को भारतवर्ष में गुलेखैरू कहते हैं। खतमी के बीज काले रङ्ग के और चपटे होते हैं। इसकी जड़ बहुत चिकनी और लुआबदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी चिकित्सा में खतमी एक बहुत महत्त्वपूर्ण औषधि मानी जाती है। गावजवान और बनफशा की तरह यह भी यूनानी हकीमों के रात-दिन काम में आने वाली एक घरेलू औषधि है।

यूनानी मत के अनुसार यह औषधि सर्द और तर होती है। किसी-किसी के मत से यह मौतदिल होती है। इसके पत्ते गर्मी से पैदा होने वाली सूजन, कण्ठमाला, गठिया, लंगड़ी का दर्द [Siatica] संधिवात और गुदा के रोग में बहुत लाभदायक माने जाते हैं। इनके पत्तों सिरके में पीसकर श्वेत कुष्ठ के सफेद दागों पर लगाकर धूप बैठने से लाभ पहुँचता है। स्त्रियों के स्तनों पर अगर गरमी की वजह से सूजन आ जाय तो इन पत्तों के लेप से व बिखर जाती है। निमोनिया में बूसरी दवाओं के साथ इसको खिलाने से अच्छा लाभ होता है इसके पत्तों को चबाने गरमी की वजह से पैदा हुआ पेट का दर्द और मरोड़ी के दस्त बन्द हो जाते हैं। आँतों की दाह और पेशाब की जलन को भी इसके पत्ते बन्द करते हैं। रोगन जैतून में इन पत्तों को पीसकर लगाने से जहरीले जानवरों के डंक की पीड़ा दूर होती है।

खतमी के फूल—इसके फूल गरमी से पैदा हुए सिरदर्द में मुफीद हैं। ये शरीर के अन्दर संचित हुए दोषों को फुलाकर दस्त की राह निकाल देते हैं, इसलिये यूनानी हकीम इनको मुँजिशों में डालते हैं। दूसरी दवाओं के साथ इनका जोशांदा बनाकर उस जोशांदे की धार पैर की पिण्डलियों पर (परकुँवा करने) से दिमाग की हर तरह की खराबी दूर होती है। खतमी के फूलों का काढ़ा मसाने की पथरी और आँतों के जखम को दूर करता है। यह गरमी से पैदा हुए लंगड़ी के दर्द (ग्रध्रसी) लकवा और मिर्गी में भी लाभ पहुँचाता है और मासिक धर्म को साफ करता है।

खतमी के फूल मेदे को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके दर्प को नाश करने के लिये शहद का प्रयोग करना चाहिये। इसकी प्रतिनिधि खबाजी हैं।

खतमी के बीज—खतमी के बीज शरीर में संचित हुई गन्दगी को फुलायम करके, फुलाकर दस्त की राह निकाल देने में काफी प्रसिद्ध हैं। इनके सेवन से गुरदे की पथरी कट जाती है तथा गठिया, उदरशूल और निमोनिया में भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। खाँसी और कफ में खून जाने [Halmoptysis] की बीमारी में भी ये मुफीद हैं। सफेद दाग पर इन बीजों का लेप कर धूप में बैठना अच्छा है। इन बीजों को समान भाग बबूल के गोंद के साथ पानी में पकाकर हाथ पैरों को धोने से खाल की फटन [बिवाई फटना] मिट जाती है।

शेख हकीम के मतानुसार, खतमी के बीजों का कुन-कुने पानी में लुआब निकालकर कुछ शक्कर मिलाकर पीने से कुछ ही दिनों में गरमी से पैदा हुई खांसी मिट जाती है तथा कफ के साथ खून गिरना भी बन्द हो जाता है।

गर्भाशय की सूजन में इसके लुआब में कपड़े को तर करके गर्भाशय में रखने से सूजन मिट जाती है। यह प्रयोग तीन हफ्ते तक करना चाहिये।

पित्त के दस्त, कब्जियत और आंतों के फोड़े में भी इन बीजों को लेने से बहुत लाभ होता है। ये आंतों और पेशाब की जलन को दूर करते हैं। इनकी मात्रा चार माशे से नौ माशे तक की है।

मूत्रेन्द्रिय की कष्ट साध्य सूजन में इन बीजों को सिरके में पिसकर लेप करने से बड़ा लाभ होता है। खजाइनुल अदविया के ग्रन्थकार का कथन है कि इस प्रयोग से कई रोगी आराम हुए हैं।

अगर बाँझ स्त्री के गर्भाशय का मुँह बन्द हो तो इन इन बीजों के काढ़े से टब को भरकर उस टब में उस स्त्री की नाभि के नीचे के भाग को रखने से गर्भाशय का मुँह खुल जाता है। इन बीजों को शराब में पकाकर बतम के गोंद और मुर्गाबी की चरबी के साथ मिलाकर गर्भाशय में रखने से गर्भाशय का वरम उतर जाता है और उसका मुंह खुल जाता है। मतलब यह कि यह वस्तु स्त्रियों का बन्ध्यत्व नष्ट करने में अच्छा काम करती है।

इसमें काढ़े को पीने से प्रसव के समय का रुका हुआ खराब खून भी साफ होता है। इसको सिरके में पीसकर शहद की मक्खी के काटे हुए स्थान पर लगाने से जहर का जोर कम हो जाता है। इसको उबाल कर घोड़े के सूम [खुर] पर लगाने से सूम बढ़ने लगता है।

खतमी के बीज मेदा और फेफड़े को नुकसान पहुँचाते हैं। इनके दर्प को नाश करने के लिये शहद और जरेशक का प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रतिनिधि नीलोफर और बबूल का गोंद है।

खतमी की जड़ – खतमी की जड़ कब्जियत को मिटाने वाली और पेचिश को दूर करने वाली होती है। पित्त के दस्त, पेशाब की जलन तथा आंतों की जलन तथा खुश्की में यह लाभ पहुंचाती है। गरमी की खांसी, मलद्वार की जलन, कफ में खून जाना इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है। यह आंतों के सुद्दे खोलती है। इसको पीसकर सुअर या बकरी की चरबी और रोगन सोसन और बाकले के आटे में मिलाकर, पकाकर जोड़ों को सूजन और जोड़ों के दर्दपर लगाने से सख्त से सख्त सूजन बिखर जाती है और दर्द मिट जाता है। अगर कान के आसपास की जगह पर सूजन आ जाय तो इसके लेप से बिखर जाती है।

दांतों के दर्द में इसके काढ़े में सिरका मिलाकर कुल्ले करने से बड़ा लाभ होता है। किसी वजह से अगर पेशाब में रुकावट आ जाय तो शराब के साथ इसका जोशांदा पीने से पेशाब खुल जाता है। अगर पथरी हो तो वह टूट कर निकल जाती है। मासाने की खराबी और गुरदे की पथरी भी इससे दूर हो जाती है।

खतमी का गोंद:—जब हवा में गरमी आती है उस समय इसके पेड़ों में गोंद फूटता है। यह गोंद पीला और सुर्ख होता है। इसकी प्रकृति सर्द और खुश्क होती है। यह प्यास को रोकता है, दस्त को बन्द करता है तथा पित्त के वमन को दूर करता है।

खपरा (खापरा)

नाम—संस्कृत—वसुक, चिर्तिका, धानपत्रा, कथिला, श्वेतमूल, श्वेतध्नि, श्वेतपुनर्नवा, विशाखा, वर्षगी। हिन्दी—खपरा, साबुनि विषखपरा। बंगाल—साबुनि। बम्बई—विषखपरा, श्वेतपुनर्नवा। दक्षिण—नसुर जिघी, वलाह। मराठी—कुंडारि, घेंटुलि, वसु। नसीराबाद—विशाख।

वर्णन—यह क्षुद्रजाति की वनस्पति पुनर्नवा के पौधे की तरह ही दिखाई देती है। इसलिए इसका नाम श्वेत पुनर्नवा भी रक्खा गया है मगर वास्तव में पुनर्नवा का और इसका वर्ग अलग-अलग है। यह Ficoedaeeae (फिकोइडासीए) वर्ग की औषधि है और पुनर्नवा Nycctaginaceae (निक्टेजिनेसोई) वर्ग की औषधि है। रक्त पुनर्नवा का वर्णन पुनर्नवा के प्रकरण में दिया जायगा।

खपरा सारे भारतवर्ष, बलूचिस्तान और सीलोन में पैदा होता है। इसका पौधा जमीन पर फैला हुआ रहता है। इसके पत्ते दो-दो के जोड़े में आते हैं। पर उस जोड़े में एक पत्ता बड़ा और गोल होता है और दूसरा छोटा और लम्बा होता है। पुनर्नवा के पत्तों की अपेक्षा इसके पत्ते दलदार होते हैं। वह वनस्पति वर्षाऋतु के प्रारम्भ में सर्वत्र पैदा हो जाती है। औषधि के रूप में इसकी जड़ ही अधिक काम आती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, उष्ण, विष नाशक, वेदना नाशक, अग्निवर्धक, मृदु विरेचक और खांसी, वायु नलियों के प्रदाह, हृदय रोग, रक्त रोग और पाँडु रोग में लाभ पहुँचाने वाली होती है। यह वादी के बवासीर और जलोदर रोग में भी लाभदायक होती है। नेत्र शक्ति की कमजोरी और रतौंधी में भी यह उपयोगी है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह एक तीव्र विरेचक औषधि है। इससे आंतों में तीव्र दाह उत्पन्न होती है। इसके कोलम पत्तों की तरकारी दीपन, वात नाशक और कफ नाशक होती है।

जिन-जिन रोगों में तीव्र जुलाब की जरूरत होती है उन रोगों में यह औषधि दी जाती है। यकृत में रक्ताभिसरण होने की वजह से पैदा हुए यकृतोदर, जीर्ण मलावरोध की वजह से पैदा हुए कण्डु वगैरह चर्म रोगों में तथा पाण्डु रोगों में इस औषधि का प्रयोग किया जाता है। यकृत और तिल्ली की खराबी की वजह से पैदा हुए सूजन में तथा अपच की वजह से पैदा हुए सूजन युक्त दमें में तथा गर्भाशय की सूजन की वजह से पैदा हुए रजोरोग में इस औषधि को देने से लाभ होता है। इसकी पूरी मात्रा १५ से लेकर ६० रत्ती तक की है। मगर इन रोगों में इसकी पूरी मात्रा न देकर एक मात्रा के दो तीन भाग करके तीन २ घंटे के अन्तर से देना चाहिये।

के० एल० देसाई के मतानुसार इसके बीज भारतवर्ष में बहुत पहले से मशहूर हैं। इसके विरेचक गुण जेलप (Jalup) के गुणों से मिलते-जुलते हैं। यह एक उत्तम और तीव्र विरेचक है, इसके एक्ट्रेक्ट्स, टिंक्चर्स और रेजिन्स फरमाकोपिया आफ इंण्डिया में सम्मत माने गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक और गर्भश्रावक है। यह नष्टार्तव में लाभदायक है।

खपरिया

नाम—संस्कृत—खर्पर। हिन्दी—खपरिया। गुजराती—खपरीयू। बंगाल—खार्पर। लेटिन—Zinici Carbonas.

वर्णन—खपरिया एक उपधातु है। इसके विषय में वैद्यों के अन्दर बड़ा मतभेद है। इसके विषय में जयपुर के आयुर्वैद सम्मेलन में विशेष चर्चा चली थी और उसके पश्चात् वैद्यराज जादवजी त्रिकमजी ने भी इस विषय पर विवेचन किया था मगर इस पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया। बहुत लोग इसको जस्त को एक उपधातु मानते हैं और जब तक इसका निर्णय न हो तब तक उसके बदले में जस्त के फूल लेने की सूचना देते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार खपरिया ज्ञान तन्तुओं को बल देने वाला तथा उपदंश, कण्ठमाला और चर्म रोग में लाभदायक है।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग सुवर्ण बसन्त मालती के अन्दर खपरिया एक प्रधान अङ्ग की तरह लिया जाता है और इसी से इसका इतना महत्व भी माना गया है।

बनावटें—बृहद सुवर्ण मालती बसन्त—सोना १ तोला, प्रवाल ३ तोला, सिंगरफ ५ तोला, काली मिर्च तोला, गोलोचन १ तोला, नागभस्म २ तोला बंगभस्म ३ तोला, केसर १ तोला, अभ्रक ३ तोला, मोती ७ तोला, पीपर १ तोला, खपरिया ११ तोला, इन सब चीजों का बारीक चूर्ण करके उसमें ६ तोला गाय का मक्खन डालकर नींबू के रस में खूब खरल करना चाहिये, यहाँ तक कि मक्खन का सब चिकनापन निकल जाय। उसके बाद दो २ रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये।

यह सुवर्ण वसन्त मालती आयुर्वेद का एक बहुत सुप्रसिद्ध योग है। इसके नियमित सेवन से जीर्ण ज्वर, रक्त प्रमेह, मूत्र प्रमेह, पाण्डु रोग, कामला, श्वास, खांसी, क्षय, सुजाक, पथरी, संग्रहणी, बवासीर, नपुंसकता, पित्तरोग प्रसूति रोग, योनिशूल, रक्तप्रदर, सोम रोग इत्यादि अनेकों प्रकार के रोग मिटते हैं। यह सारे शरीर के संगठन को सुधारती है और ओज को बढ़ाती है।

लघु वसन्त मालती—स्वर्ण १ भाग, मोती २ भाग, सिंगरफ ३ भाग, मिर्चों ४ भाग और खपरिया ८ भाग इन वस्तुओं को मक्खन और नींबू के रस में खूब खरल करके दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। यह लघु वसन्त मालती भी उचित अनुपात में देने से अनेक रोगों को नष्ट करती है।

खम

नाम—संस्कृत—पिंडालु। हिन्दी—चुपरी, आलूखम। बम्बई—चेना, चोपरि आलू, खनफल, म्यूकफल, सफेद कौफल। बंगाल—चुपरिआलु। तामील—कचलु। उड़िया—फोंकाआलु। लेटिन—Dioscorea Alata [डिसकोरिया एलेटा] D. globesa [डि० ग्लोबेसा]।

वर्णन—इस वनस्पति की खेती होती है। इसकी आलू की तरह गठानें होती हैं। यह गठन लम्ब गोल और भीतर से सफेद होती है। इसका प्रकांड नुकीला रहता है। इसके पत्ते एक दूसरे के आमने-सामने आते हैं। ये चौड़े और अण्डाकार रहते हैं। इनकी नोक तीखी होती है। इसकी डौड़ी २·५ सेण्टीमीटर लम्बी और ३-८ सेण्टीमीटर चौड़ी होती है। इसके बीजों के चारों तरफ हलका रुंआ होता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसका पिण्ड कृमिनाशक होता है। यह कुष्ठ, बवासीर और सुजाक में उपयोगी है।

खमान

यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक छोटी और दूसरी बड़ी। बड़ी जाति के पत्ते अखरोट से पत्तों की तरह होते हैं। फूल का रङ्ग ललाई लिये हुए सफेद होता है। इसका फल बतम के फल की तरह होता है। इसमें शराब की-सी बू आती है। दूसरी छोटी जाति एक घास की तरह होती है। इसकी डालियाँ नरम और गाँठदार होती हैं। इसके पत्ते बादाम के पत्तों की तरह होते हैं जो कटी हुई किनारों के रहते हैं। इसके बीज राई के दाने की तरह और जड़ अंगुली की तरह मोटी होती है। कहीं २ बड़ी जाति को शबूक और छोटी को यजका कहते हैं। औषधि के रूप में इसकी छोटी जाति विशेष काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी बड़ी जाति गरम और खुश्क तथा छोटी जाति सरद तथा खुश्क मानी जाती है। बड़ी जाति का लेप करने से सब प्रकार के जखम भर जाते हैं। इसकी छोटी जाति के प्रयोग से शरीर के अन्दर संचित हुई गन्दगी दस्तों की राह बाहर निकल जाती है। इसके पके हुए फलों को पीसकर बालों पर लगाने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है।

इसके ताजे पत्तों को काटकर जौ के आटे के साथ मिलाकर आग से जले स्थान पर लेप करने से शान्ति मिलती है। इसकी जड़ को पीसकर टूटी हुई हड्डी पर लगाने तथा मोच अथवा चोट पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

इसकी जड़ को शराब में पकाकर सेवन करने से जलोदर में लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों और जड़ का रस पीने से दूषित पित्त और कफ दस्त की राह बाहर निकल जाते हैं। इसके पानी से कुल्ले करने से दाँतों के कीड़े मर जाते हैं। इसके रस को नाक में टपकाने से आँख की सुर्खी निकल जाती है। इसके काढ़े से टब को भर कर उस टब में स्त्री की नाभि के नीचे का भाग डुबोने से गर्भाशय का मुँह खुल जाता है और उसकी सूजन दूर हो जाती है। नासूर में इसकी बत्ती को रखने से लाभ होता है। इसकी जड़ का काढ़ा गठिया के रोग में भी लाभ पहुँचाता है। [ख० अ०]

यह वनस्पति फेफड़े को और मेदे को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये शहद का प्रयोग करना चाहिये। इसको मात्रा ७ माशे की है।

खमाहिन

खमाहिन—यह एक जाति का पत्थर है। इसको सुल्तान मोहरा भी कहते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक सख्त और दूसरी मुलायम। सख्त जाति का पत्थर मैले रंग का होता है और पीसने पर पीला हो जाता है। मुलायम जाति का पत्थर पीसने पर लाल हो जाता है। इस पत्थर के नग बनाकर अंगूठियों में रखे जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस पत्थर का लेप करने से गरमी से पैदा हुई सूजन और उसकी जलन दूर होती है। इसके पीने से पित्त की वजह से पैदा हुआ पागलपन दूर हो जाता है। इसको घिस कर लगाने से आँखों का दुखना और आँखों की खुजली दूर होती है। इसके सेवन से शराब की आदत छूट जाती है।

इसकी मात्रा साधारण रूप से छः रत्ती की है और इसके दर्प को दूर करने के लिये शहद उपयोगी है। [ख० अ०]

खरेण्टी

नाम—संस्कृत—बला, बलिनी, भद्रबला, जयन्ती, रक्ततन्दुला, खरयष्टिका इत्यादि। हिन्दी—खरेंटी, बरियार। बम्बई—बला, बरीला। गुजराती—खरेंटी, बलदाना। पंजाब—खरेंटी। सिंध—बरियारा। मराठी—चिकना, खिरंती। तामील—नीलतुति। तेलगू—अन्तिस। लेटिन—Sida cordifolia [सिडा कोर्डिफोलिया]।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वर्षजीवी वनस्पति है। इसके पत्ते १॥ से २ इञ्च तक लम्बे और लम्ब गोल होते हैं। ये हृदय की आकृति के होते हैं। इसके फूल हलके पीले रंग के होते हैं जो वर्षा ऋतु में आते हैं। इसके फल बहुत छोटे २ होते हैं जिनमें राई के समान बीज निकलते हैं। इसके बीज, पत्ते व जड़ औषधि के काम में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से खरेण्टी, कड़वी, मीठी, पित्तातिसार को नष्ट करनेवा[ली], बलवीर्यवर्धक, कामोद्दीपक और वात तथा पित्त को नष्ट करनेवाली है। इसकी जड़ की छाल का चूर्ण मिश्री मिले [हु]ए दूध में मिलाकर पीने से बहुमूत्र रोग दूर होता है। इसका फल कसैला, मधुर, शीतवीर्य और पचने में स्वादिष्ट होता है। यह भारी, स्तम्भक, वातवर्धक तथा पित्त, कफ और रुधिर विकार को दूर करनेवाला होता है। गले के रोग, खूनी बवासीर, क्षय और पागलपन में भी यह लाभदायक है।

पार्यायिक ज्वरों में इसका काढ़ा अदरख के रस के साथ दिया जाता है। कम्पनयुक्त ज्वर में यह विशेष उपयोगी माना जाता है। इसकी जड़ को पीस कर दूध व शकर के साथ मिलाकर श्वेत प्रदर और बहुमूत्र रोग में देते हैं। स्नायु-मण्डल के रोगों में भी इसे दूसरी औषधियों के साथ काम में लेते हैं।

कोमान के मतानुसार इसकी जड़ की छाल में तिल मिलाकर दूध के साथ देने से मुँह के पक्षाघात अर जंघाओं के स्नायु शूल में लाभ होता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार इसके बीज कामोद्दीपक होते हैं और सुजाक में इनका उपयोग किया जाता है। उदरशूल और मरोड़ी के दस्तों में भी ये लाभदायक होते हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार नेत्राभिष्यन्द रोग में इसके पत्तों को पीसकर पलकों पर लगाते हैं। गर्मी के चट्ठों और दूसरे जख्मों पर इसकी जड़ की छाल को पीसकर लगाते हैं और इसके पचांग के काढ़े से जख्मों को धोते हैं जिससे बहुत जल्दी आराम होता है। सुजाक और प्रदर रोग में इसकी जड़ की छाल को दूध और शहद के साथ देने से लाभ होता है।

पक्षाघात, अर्दित इत्यादि वात रोगों में मूंग के साथ इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर देते हैं और जड़ की छाल से बनाये हुए तेल से मालिश करते हैं। कारबंकल और प्रमेह पीठिका पर इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से और उस पर तर कपड़ा बाँधने से जलन और चटका बन्द हो जाता है।

पुर्तगाल और ईस्ट अफ्रिका में इसके पौधे को बच्चों की बीमारियों में काम में लेते हैं। कम्बोडिया में इसकी जड़ें मूत्रल व मृदु विरेचक मानी जाती हैं और सुजाक तथा दाद में काम में ली जाती हैं।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्तों का रस नेत्र शुल्क रोग पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का रस, खराब और बहुत धीरे भरनेवाले घावों पर शीघ्र भरने के लिये लगाया जाता है।

सुजाक की बीमारी में इस सारे पौधे का शीत निर्यास एक २ औंस की मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है। इससे पसीना आता है और पेशाब साफ होकर रोग में लाभ होता है।

डा० मुडीन शरीफ के मतानुसार इसका तेज काढ़ा ज्वरनाशक, अग्निदीपक और पौष्टिक होता है। अग्निमांद्य और किसी भी रोग के बाद की कमजोरी में यह लाभदायक है।

चरक के मतानुसार इसकी जड़ की छाल दूध और घी के साथ अत्यन्त बलवर्धक होती है। बुढ़ापे की कमज़ोरी को भी यह दूर करती है। फेफड़ों के क्षय में इसकी जड़ की छाल को दूध के साथ दो महीने तक देने से और रोगी को केवल दूध ही पर रखने से अच्छा लाभ होता है। खूनी बवासीर और भीतरी रक्तस्राव में इसकी जड़ की छाल का काढ़ा उपयोगी होता है। सन्निपातिक ज्वर में इसका शीत निर्यास बार २ पिलाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार खरेएटी या बला आयुर्वेदिक और हिन्दू चिकित्सा में बहुत उपयोगी वस्तु मानी जाती है। हिन्दू वैद्य इसको बहुत उपयोगी वस्तु मानते हैं और इसको बहुत प्राचीन काल से उपयोग में लेते आ रहे हैं। तिब्बी या मुसलमानी औषधियों में यह इसके कामोद्दीपक गुणों के कारण उपयोग में ली जाती है। इसके रासायनिक विश्लेषण और चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिता के विषय में कलकत्ता स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन में पूरा अध्ययन किया गया है।

देशी औषधियों में इसका उपयोग—इसकी जड़ें, पत्ते और बीज सब ही चिकित्सा के काम में आते हैं। ये स्वाद में कटु रहते हैं। इस जाति के सभी भेदों की जड़ें शीतल, संकोचक, अग्निप्रवर्धक और पौष्टिक मानी जाती हैं। इनसे बनाया हुआ शीत निर्यास स्नायु मण्डल व मूत्राशय सम्बन्धी बीमारियों को दूर करता है। यह रक्त और पित्त के विकारों में भी लाभदायक है। इसके अंग सुगन्धित और कटु होते हैं। ये ज्वर-निवारक, शान्तिदायक और मूत्रल समझे जाते हैं। इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं और ये सुजाक और मूत्राशय के प्रदाह की बीमारी में उपयोग में लिये जाते हैं। उदरशूल और मरोड़ी में भी ये लाभदायक हैं। इसके पत्ते चक्षु वेदना में उपयोगी हैं। इसकी जड़ का रस घाव पूरता है और इस सारे वृक्ष का रस अनैच्छिक वीर्यस्राव और सन्धिवात रोग में उपयोग में लिया जाता है। इसे एरंड के रस के साथ में श्लीपद रोग में लगाने के काम में लेते हैं। इसकी जड़ व सोंठ का काढ़ा पार्यायिक और अन्य ज्वरों में जिनमें कम्पन ज्यादा रहती है, दिया जाता है। इसकी जड़ के छिलके का चूर्ण दूध और शकर के साथ मिश्रण करके अनैच्छिक मूत्रस्राव और श्वेत प्रदर के रोगियों को दिया जाता है। बहुत-सी स्नायुमण्डल की बीमारियों में उदाहरणार्थ अर्द्धाङ्ग, सिरदर्द और मुँह के पक्षाघात में इसकी जड़ को हींग और सेंधे नमक के साथ काम में लिया जाता है। इससे एक तेल प्राप्त किया जाता है। इस तेल को दूध और सरसों के साथ मिलाकर मालिश करने के काम में लेते हैं। इसे मकरध्वज और कस्तूरी के साथ मिलाकर हृदय को मजबूत बनाने के लिये उपयोग में लेते हैं।

औपचारिक उपयोगिता के अतिरिक्त इसका व्यापारिक महत्व भी काफी है। इससे एक प्रकार का सफेद तन्तु प्राप्त होता है जिसमें सेल्यूलोस (Cellulose) नामक तत्व ८४ प्रतिशत पाया जाता है। यह सन में सिर्फ ७५ प्र० श० ही प्राप्त होता है। कुछ दक्ष लोगों का मत है कि इससे बढ़ कर सन का प्रतिनिधि और दूसरा वृक्ष नहीं हो सकता।

रासयनिक विश्लेषण—आज से कई वर्ष पूर्व सन् १८९० में इसका विश्लेषण हुआ था। इसमें एस्पेरेगिन नामक पदार्थ पदार्थ पाया गया है और इसके साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें पाये जाने वाले तत्वों का गहरा अध्ययन नहीं किया गया। सन् १९३० में घोष और दत्ता ने भी इसका विश्लेषण किया जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

इसकी परीक्षा से इसमें जो उपक्षार पाये गये जिनकी तादाद ·०८५ थी। इसके बीजों से इसके बाकी अंगों में ४ गुने अधिक उपक्षार हैं।

इसका रस निकाल कर उसका व्यवस्थित अध्ययन किया गया है जिसमें निम्नलिखित तत्त्व हैं।

[१] इसमें स्थायी तेल रहता है और पोटेशियम नाइट्रेट, रेजिन्स, रेजिन, एसिड्स, फिटास्टेराल और मुसिन्स रहते हैं। इसमें टेनिन और ग्लुकौसाइड नहीं रहते हैं।

[२] इसमें उपक्षार ०.०८५ प्र०श० की तादाद में रहते हैं। इसके उपक्षार जल में घुलनशील होते हैं लेकिन निखालिस मद्यसार में नहीं घुलते हैं। इसके उपक्षार का खास तत्व 'एफ्रिडीन" से मिलता-जुलता पाया गया है किन्तु एफेड्राइन दूसरी जातियों से प्राप्त की जा सकती है।

चूँकि इसके (एफेड्राइन) प्रभाव ज्ञात हैं इसलिये यहां इसके विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इतना यहाँ पर बताया जा सकता है कि औषधि विषयक गुणों की समानता से यह विचार पैदा हुआ कि ये दोनों उपक्षार एक

ही हैं। बाद के रासायनिकों ने भी इसी मत को पुष्ट किया। इसी वजह से यह हृदय को उत्तेजना देने के उपयोग में ली जाती है।

औषधि विषयक उपयोग—इस वनस्पति में एफेड्राइन ०.०८५ प्र० श० रहता है और बीजों में ०.३ प्र० श० रहता है। यह बिलकुल सम्भव है कि अगर इसकी योग्य रूप से खेती की जाय और योग्य रूप से इसे एकत्रित की जाय तो इसके उपचारीय तत्व बढ़ सकते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में काफी मात्रा में पैदा होती है। इसलिये इससे एफेड्राइन भी काफी तादाद में प्राप्त किया जा सकता है। एफेड्राइन का वृक्ष भारतवर्ष में पहाड़ियों पर पैदा होता है। इसी वजह से उसे वहां से प्राप्त करने में काफी खर्चा बैठ जाता है। यही वजह है कि एफेड्राइन इतना मंहगा है। इस विषय में अन्वेषण अभी जारी है।

खरज़ाल (पीलू)

नाम—संस्कृत—बृहत्पिलु, गोलि, लघुपिलु, मधुपिलु, महाफल, महापिलु, महावृक्ष, पिलु और राजपिलु। हिन्दी—बड़ापिलु, छोटापिलु, खरजाल, पिलु। अरेबिक—अरक, इरक, रकव्वार, खरदार खरजाल, पिलु। बंगाल—छोटापिलु, जाल, पिलु। बम्बई—करवन, पिलु। गुजराती—खारीजाल, खरीजार, मोतीजलिया, पिलु, पिलुड़ि। उत्तर पश्चिम प्रांत—जाल। परशियन—दरख्ते मिसिवक, मिसबक। पंजाब—कौरिजाल, कौरिबन, पिलु, झित, झाल, झार। राजपूताना—जाल, झाल। सिन्ध—कब्बार, खारीदजई, पिलु। तामील—कलरवा, करगोज़, करगोलि, ओपा, पेरगोलि, सुरगलरवा, उवा। तेलगू—करुगोगु, गोनिया, पद्वरगोगु पिनवरगोगु। उर्दू—पिलु। उड़िया—कीटङ्गी। लेटिन—Salvadora Persica [सेलवेडोरा परसिका]।

वर्णन—यह वृक्ष हिन्दुस्तान के सूखे हुये हिस्सों में, बलूचिस्तान और सीलोन में पैदा होता है यह पश्चिमीय एशिया के शुष्क भागों में तथा इजिप्ट ओर अबीसीनिया में पैदा होता है। यह एक बहु शाखी हरी झाड़ी है, इसकी डगालियां सफेद होती हैं। इसका प्रकाण्ड खुरदरा होता है। इसके बबुत सी शाखाएँ रहती हैं। ये चमकीली और सफेद होती हैं। इसके पत्ते दलदार होते हैं। ये ३-८ में ६-३ सेन्टीमीटर तक लम्बे और २ से ३.२ से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये अण्डाकार और बरछी के आकार के रहते हैं। इनके फूल हरे पीले रंग के होते हैं। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह पकने पर लाल हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा, कामोद्दीपक, विष नाशक अग्निप्रवर्धक और क्षुधोत्तेजक होता है। यह पित्त में उपयोगी है। इसका तेल पाचक और वातनाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते कड़वे, आंतों को सिकोड़ने वाले, यकृत को पुष्ट करने वाले, कृमिनाशक और तकलीफ को दूर करने वाले रहते हैं। ये पीनस और अन्य नाक की तकलीफों में उपयोगी हैं। बवासीर, खाज, धवल रोग और प्रदाह में ये लाभदायी हैं। ये दांतों को मजबूत करते हैं। इसका फल मधुर, कामोद्दीपक, मूत्रल और कृमिनाशक होता है। यह पेट का आफरा उतारने वाला रहता है तथा पित्त में उपयोगी है। इसके बीज स्वाद में कटु और तीक्ष्ण होते हैं। ये विरेचक और यकृत को पुष्ट करने वाले रहते हैं।

इसका परशियन नाम दरख्ते मिसवक इस कारण पड़ा है कि इससे दांत मांजने के लिये ब्रुश तैयार किये जाते हैं। यह कयास किया जाता है कि इससे तैयार किये हुए ब्रुश दांतों की पीढ़ियों को मजबूत करते हैं। मसूड़ों में सूजन नहीं आने देते और पाचन शक्ति को सुधारते हैं।

परशियन में लिखे हुए औषधि ग्रन्थों में इस औषधि को पेट का आफरा उतारने वाली, मूत्रवर्द्धक व पीड़ा दूर करने वाली बताते हैं।

इसकी जड़ का छिलका बहुत अधिक कसैला और तेज है। यदि इसे पीसकर चमड़े पर लगाया जाय तो छाले उठ जाते हैं।

एंसली के मतानुसार इसके प्रकाण्ड पर का छिलका गरम और चिड़चिड़ा होता है। मामूली बुखार में भारतीय

चिकित्सक इसे कुल्ले कराने के काम में लेते हैं। वे इसे नष्टार्तव में उत्तेजक और पौष्टिक वस्तु के तौर पर काम में लेते हैं। इसके काढ़े की खुराक आधे चाय के चम्मच बराबर है जो दिन में दो बार दी जाती है।

इसकी डालियां व पत्ते तीक्ष्ण होते हैं और ये पंजाब में सभी प्रकार के विषों को निवारण करने के काम में लिये जाते हैं। इसके पत्तों का रस स्कर्वी रोग में दिया जाता है। इसके पत्ते दक्षिण बम्बई में देहाती लोगों के द्वारा संधिवात पर काम में लिये जाते हैं।

इसका फल सिन्ध में सर्पदंश पर प्रयोग में लिया जाता है। इसे ताजी और सूखी दोनों ही हालत में काम में लेते हैं। सुखा लेने के बाद इसे सुहागे के साथ मिलाकर अधिक खुराक में देते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार इसका फल सर्पदंश के इलाज में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मत से यह शांतिदायक, पेट का आफरा उतारने वाला, मूत्रल, विरेचक और विष निवारक है। इसमें ट्रिमेथिलेमाइन [Trimethylamine] नामक उपक्षार रहता है।

डा० देसाई के मतानुसार इसके पत्ते सनाय के पत्तों की तरह रेचक होते हैं। इसके बीजों का तेल राई के तेल की तरह काम करता है। संधिवात में इसकी मालिश करने से लाभ होता है। इसकी छाल का काढ़ा पसीना लाने वाला और किंचित मूत्रजनक है।

इसकी जड़ की छाल का काढ़ा ज्वर की बेहोशी और बड़-बड़ाहट में लाभ पहुँचाता है। यह औषधि गर्भवती स्त्री को नहीं देना चाहिये।

खरबक सफेद

नाम—यूनानी—खरबक सफेद।

वर्णन—यह एक पेड़ की जड़ होती है। इसके फूल लाल रङ्ग के होते हैं और डालियाँ सफेद रंग की होती हैं। इसकी जड़ का कंद छोटे प्याज की तरह होता है। इसका रंग पीलापन लिए हुए सफेद होता है। जिसमें बहुत से बारीक तार लगे हुए होते हैं। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह एक जहरीली चीज है जो तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसके सेवन से बहुत तेज जुलाब लगता है। इसलिए इसको बहुत सावधानी से खाना चाहिये यह शरीर में संचित कफ और पित्त की गन्दगी को दस्त की राह निकाल देती है, मेदे को साफ करती, पेशाब और मासिक धर्म को चालू करती है। सर्दी या कफ की वजह से पैदा हुए फालिज, गठिया, मिर्गी और जोड़ों के दर्द में मुफीद है। इसको भूखे पेट कभी न खाना चाहिये। इसको सिरके में पीसकर सफेद दाग और खुजली पर लगाने से लाभ होता है। आंख का जाला काटने की औषधियों में इसको भी मिलाया जाता है। इसकी बत्ती बनाकर योनि मार्ग में रखने से मासिक धर्म चालू हो जाता है और गर्भ गिर जाता है।

इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से मूर्च्छा, कम्पन इत्यादि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी हालत में अर्क गावजवान में शहद मिलाकर खिलाने से लाभ होता है।

इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा, मस्तगी, गाय का घी, बादाम का तेल इत्यादि वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा १ माशे से ४ माशे तक की है। (ख० अ०)

खरबक स्याह

नाम—यूनानी—खरबक स्याह। अरबी—रजल। फारसी—खातजंगी। हिन्दी—काला कुचला। (खजानुल अदबिया)।

वर्णन—यह एक रोइदगी की जड़ है। इसके लक्षण कुटकी से बहुत मिलते-जुलते हैं। यह वनस्पति रूम के के खुश्क स्थानों में पैदा होती है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और खुरदरे होते हैं। इसकी डालियाँ छोटी, नीली और फूल सुर्खी माइल सफेद होते हैं। इसके बीज खड़िया के बीज की तरह होते हैं। इसकी जड़ अंगुली के बराबर मोटी और

काले रंग की होती है और उसके ऊपर गिरह होती है । इस जड़ के अन्दर बारीक-बारीक रेशे निकलते हैं। इन रेशों को ही खरबक स्याह कहते हैं। खरबक स्याह, खरबक सफेद से कम कड़वा होता है, मगर तेजी में ज्यादा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में खुश्क और गरम होती है। यह वनस्पति वादी और कफ को दस्तों की राह तेजी के साथ निकाल देती है। यह सूजन को बिखेरती तथा सर्दी की बीमारियों और पुराने नजले में मुफीद है। बदन के स्याह दाग, सफेद दाग और चर्म रोगों को यह नष्ट करती है, इसको मटर के साथ जोश करके कुल्लियां करने में दांतों का दर्द दूर होता है। इसकी धूनी से भी दांतों के दर्द में फायदा होता है। नासूर में इसकी बत्ती बनाकर रखने से लाभ पहुँचता है। सर्दी से होने वाली आधाशीशी और गठिया के लिए यह मुफीद है। यह वनस्पति चूहों और पक्षियों के लिए जहर है। इसके सिवाय जिन-जिन रोगों में खरबक सफेद काम में आता है उन रोगों में भी यह औषधि उससे अधिक कारगर होती है। इसको सिरके में पीसकर कान में टपकाने से कान का दर्द अच्छा होता है। इसके अन्दर कपड़े को तर करके उसकी बत्ती योनि मार्ग में रखने से पेशाब और मासिक धर्म साफ होता है और यदि गर्भ हो तो गर्भ गिर जाता है। इसका लेप करने से जहरीले जानवर और पागल कुत्तों के काटने पर लाभ होता है। यह औषधि बहुत ही उग्र और जहरीली है, इसलिए इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये। गरम प्रकृति वालों को यह औषधि नहीं देना चाहिये। इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा, पोदोना, गाय का घी और मस्तगी उपयोगी है। (ख० अ०)

इसकी मात्रा १ माशे से २ माशे तक है।

खरसिंग

नाम—बम्बई—खरसिंग, बेरसिङ्ग। मध्यप्रदेश—पारल। कनाड़ी—घनश्रियङ्ग, हूलवे, अनितन्तु क्लुक। मलयालम—पातिल, वेतन करुन, एदन कोरना। मराठी—खरसिङ्ग, कड़ासिङ्ग, बरसिंगे। तामील—अलम्बल, कड़लनि, मलययुदि, मणिकम्बु, पादिरी, पाथिरी। लेटिन—Stereospermum Xylocarpum (स्टेरओसपरमम क्सिलोकार्पम) दूसरा नाम Radermachera xylocarpa.

वर्णन—यह वनस्पति खानदेश, कोकण, दक्षिण और मद्रास प्रेसिडेन्सी के पश्चिमीय घाट में पैदा होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसका छिलका हलके भूरे रङ्ग का होता है। इसके पत्ते ·५ से लगाकर ७·५ सेण्टीमीटर लम्बे और २·५ से लगाकर ३·८ सेण्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। ये लम्ब गोल और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसके पुष्प सुगन्धित रहते हैं। इसकी डोड़ी लम्बी और कुछ टेढ़ी होती है। डोड़ी पर कुछ गठानें रहती हैं। इसके बीज ३·२ सेन्टीमीटर लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी लकड़ी का तेल चर्म रोगों में उपयोगी होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चर्म रोगों पर और खासकर विस्फोटक में [पपड़ीदार फुन्सियों में] अधिक उपयोगी है।

खरबूजा

नाम—संस्कृत—दशांगुल, फलराज, खरबज, मधुफला इत्यादि। हिन्दी—खरबूजा। बंगाल—खरबूजा। मराठी—खरबूज। गुजराती—खरबूजा। तेलगू—चिऊड, खरबूजम। अरबी—बित्तिक। फारसी—खरबूजा। लेटिन—Cucumis Melo [क्यूक्यूमिस मेलो]।

वर्णन—खरबूजा सारे भारतवर्ष में एक मशहूर फल है। इसलिये इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भेद से इसकी कई जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से खरबूजा अमृत के समान तृप्ति कारक, मूत्रल, बलकारक, कोठे को शुद्ध करने वाला, शीतल, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध और उन्माद को नाश करने वाला, कफकारक और वीर्यजनक है।

एक स्थान पर लिखा है कि खरबूजा फलों में राजा है। भगवान विष्णु ने इसको अत्यन्त आदर से दोनों हाथों में लिया, इसलिये इसका नाम दशांगुल है।

कच्चा खरबूजा कड़वा, मधुर और किंचित खट्टा होता है। पुराना खरबूजा मधुर, अम्ल तथा रक्त पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है। पका हुआ खरबूजा तृप्तिकारक, पौष्टिक, मूत्रवर्द्धक, और कोठे को शुद्ध करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में शीतल और तर होता है। यह फल पसीना लाता है, पेशाब को साफ करता है, दूध को बढ़ाता है, गुर्दे के रोगों को मिटाता है। जलोदर और पीलिया में मुफीद है। पथरी को तोड़ कर निकाल देता है। यह मेदे की गर्मी और खराबी को निकालता है। इसको निहार मुँह खाने से पित्त ज्वर पैदा हो जाता है। गरम प्रकृति वालों की इस फल के ज्यादे खाने से आँखें आ जाती हैं। इसका अधिक सेवन मेदा और आँतों को कमजोर करता है, इसके छिलके का लेप करने से मुँह की झांई मिटती है। यह दिमाग के वरम और नजले को फायदा पहुँचाता है। हैजे के दिन में इसको ज्यादा खाने से हैजा पैदा होने का डर रहता है।

इसके बीज पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर होते हैं। ये जिगर के सुद्दे को खोलते हैं। पेशाब साफ लाते हैं। गुर्दे, मसाने और आँतों को साफ करते हैं। इनके सेवन से दस्त साफ होता है और पेशाब की जलन मिटती है। ये कामेन्द्रिय को बल देते हैं। वीर्य वर्द्धक हैं, सीने के दर्द और जिगर की सूजन को मिटाते हैं, गले की जलन को भी दूर करते हैं, दूध बढ़ाते हैं, पित्त ज्वर को शान्त करते हैं। इसके बीजों का चेहरे पर लेप करने से कान्ति बढ़ती है।

उपयोग—सुजाक—खरबूजे की मींगी को जल के साथ पीस कर उसमें चन्दन के तेल की पन्द्रह या बीस बूँद डालकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता।

गुर्दे का दर्द—इसकी मींगी को घोटकर छानकर उसमें जौ खार और कलमी शोरा मिलाकर पीने से गुर्दे का शूल मिटता है और पेशाब साफ होता है।

खरा मकान

नाम—यूनानी—खरा मकान।

वर्णन—यह एक प्रकार का घास होता है। इसकी शकल और गन्ध बालछड़ की तरह होती है। इसका स्वाद हल्का मीठा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह पहले दर्जे में गर्म और खुश्क है। इसके तमाम गुण बालछड़ से मिलते हुए हैं।

खरनूब

वर्णन—यह एक प्रकार का वृक्ष होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक बागी और दूसरी जंगली। बागी जाति का पेड़ अखरोट के पेड़ की तरह होता है, इसके पत्ते गोल, बहुत हरे और चिकने होते हैं। इसकी फली एक बालिश्त लम्बी और काले रंग की होती है। किसी किसी ने इसको अमलतास की फली की तरह मानी है। इसके फूल पीले और सुनहरे होते हैं। इसके बीज बाकले के बीजों की तरह होते हैं। यह वनस्पति श्याम और अफ्रीका में पैदा होती है। इसकी जंगली जाति का दरख्त भी बागी जाति की तरह ही होता है। मगर इसके बीज अधिक स्याही माइल होते हैं। यह कोई उपयोग का नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—यह पहले दरजे में सर्द और दूसरे दरजे में खुश्क है।

यह एक कब्जियत पैदा करने वाली चीज है। इसके सेवन से पेशाब अधिक उतरता है। शरीर मोटा होता है। पुरानी खांसी में लाभदायी है। चोट के ऊपर लेप करने से फायदा करता है। अतिसार को रोकता है। पेचिश और आँतों के जख्मों को मिटाता है। पित्त की वजह से पैदा हुए पीलिया में इससे लाभ होता है। एक यूनानी हकीम के मतानुसार अगर स्त्री मासिक धर्म से शुद्ध होकर इसका एक बीज निगल ले तो उसे एक साल तक गर्भ न रहे। इसके बीजों को गर्भाशय में रखने से मासिक धर्म में अधिक खून का जाना रुक जाता है।

इसके बीज का आधा टुकड़ा बवासीर पर लगाने से लाभ होता है। इसको पीस कर गुदा की कांच पर लेप

करने से कांच का आना रुक जाता और खून भी रुक जाता है। इसके काढ़े को टब में भरकर उसके अन्दर बैठने से गर्भाशय का बाहर आना रुक जाता है।

यह मेदा, फेफड़ा और आँतों को नुकसान पहुँचाती है।

इसके दर्प को नाश करने के लिये बेदाने का लुआब और मिश्री मिलाकर देने से लाभ होता है। [ख० अ०]

खलंज

वर्णन—यह एक बड़ा पहाड़ी वृक्ष होता है। इसके पत्ते फरास के पत्तों की तरह होते हैं। यह वृक्ष भारतवर्ष, चीन और रूस में पैदा होता है। इसका फूल छोटा, लाल और पीला होता है। इसकी एक जाति का फूल सफेद भी होता है। ईसके बीज राई के दाने की तरह होते है। उनका रंग नीला होता है। इसका फूल औषधि में सब से अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह दूसरे दरजे में गरम और खुश्क है।

इसके फूलों का तेल गठिया और थकावट के लिये फायदेमन्द है। इस वृक्ष के बुरादे के लेप से भी यही फायदा होता है। इसके फूल और पत्तों का लेप करने से जहरीले कीड़े-मकोड़ों का जहर मिट जाता है। इसके ४॥ माशे बीज शहद के साथ चाटने से जहरीले कीड़ों के जहर से दिल को सदमा नहीं पहुँचता। इसकी लकड़ी का बर्तन बनाकर उसमें खाना खाने व पानी पीने से पागलपन मिटता है। इसका फूल काब्जि है। इसका तेल तैयार करने की तरकीब यह है। इसके फूलों को तिल के तेल में डालकर ३ हफ्ते तक धूप में रखकर छान लेना चाहिये।

खंश

वर्णन—यह एक घास है। इसके पत्ते गन्दना के पत्तों की तरह मगर उनसे नाजुक होते हैं। इसकी डण्ठल चिकनी, नरम और एक हाथ के करीब लम्बी होती है। इस पर सफेद फूल आते हैं इसकी जड़ गोल और चिकनी होती है। स्वाद में यह तेज होता है। इसके बीज प्याज के बीजों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दरजे में गरम और खुश्क है। इसकी जड़ की भी यही तासीर है।

यह गरमी और खुश्की पैदा करती है। टूटी हुई हड्डी को जोड़ देती है। बादी को बिखेर देती है। मसाने की पथरी को और गुर्दे की पथरी को तोड़ती है। इसकी जड़ में इसके दूसरे अङ्गों से ज्यादा शक्ति है। इसकी जड़ को जलाकर किसी तेल में मिलाकर लगाने से सिर की फुन्सियां और बालों का खोरा मिट जाता है। सफेद दागों पर इसकी राख मलकर धूप में बैठने से फायदा होता है। मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर इसको लगाने से दाद जाता रहता है। इसका काढ़ा कान में टपकाने से पीप बहना रुक जाता है। इसको दांत पर लगाने से दांत का दर्द जाता रहता है।

इसके फल और फूल कब्जियत को साफ करते हैं। इनको शराब के साथ खाने से बिच्छू और कनखजूरे का जहर उतर जाता है। इसके सिवाय इनके सेवन करने से दूसरे कीड़ों के जहर में भी फायदा होता है।

इसकी ज्यादा मात्रा गुर्दे को नुकसान पहुँचाती है, पित्त को बढ़ाती है, इससे तिल्ली को भी नुकसान पहुँचता है।

दर्प नाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तगी और इमली का प्रयोग करना चाहिये।

इसके प्रतिनिधि मजीठ और शकाकुल है। इसकी मात्रा १०॥ माशे तक है।

खस

नाम—संस्कृत—दादहरण, हरिप्रिया, जलाशाया, सेव्या, शिशिरा, सुगन्धिमूल, शीत मूलका। हिन्दी—खस वाला, वेना, ओनई, पानि। गुजराती—वालों। मराठी—वाला। बंगाल—खश, वाला, वेना। संथाली—सीरो अक्चलिंन। कनाड़ी—सीरोम। सिंन्ध—तिन। पंजाब—पन्नि। तामील—वेदीवेर, विटनम। तेलगू—औरुगधिवे

आपुरुगड्डु। कर्नाटक—मुडिवाल। अरबी—इसखिर, उशीर। फारसी—खश, विखिवाला। लेटिन—Andropogon muricatus [एण्ड्रोपोगोन म्यूरीकेटस] vetiveria zizanioides [व्हेटीवेरिया झिझेनी आइड्स्]।

वर्णन—यह एक प्रकार का हमेशा कायम रहने वाला घास है। इसकी जड़ें बहुत पतली और बहुत गहरी घुसी हुई रहती हैं। इन जड़ों में एक प्रकार की कड़वी और मनमोहक खुशबू आती है। अपनी आकर्षक खुशबू के कारण यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में मशहूर है। इसका तेल और इतर भी बनाया जाता है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत में खस शीतल, कड़वी और दाह, परिश्रम तथा पित्तज्वर को शान्त करने वाली होती है। यह पाचक, स्तम्भक, हलकी तथा ज्वर, वमन, मद कफ, पित्त, तृषा, रुधिर दोष, विष, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र और व्रण रोग को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ें मस्तिष्क को ठण्ढक पहुँचाने वाली और कड़वी होती हैं। यह अनैच्छिक वीर्य्यस्राव, मस्तक की पीड़ा और रक्त सम्बन्धी शिकायतों में लाभदायक है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार यह वस्तु प्रसूति ज्वर के अन्दर देने से अच्छा लाभ पहुँचाती है। दस औंस खौलते हुए पानी में दो ड्राम खस की जड़ें डालकर इनकी फाँट बनाकर पिलाने से हैजे की उल्टियों में लाभ होता है।

इसकी जड़ का शीत निर्यास ज्वर को और पित्त की शिकायतों को दूर करने के लिये दिया जाता है। यह उत्तेजक अग्नि दीपक और ज्वर को उतारने वाला माना जाता है। गायना से इसकी जड़ों का शीत निर्यास पौष्टिक और ऋतुस्राव नियामक औषधि के तौर पर काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि दिल को शान्त करने वाली, अग्नि दीपक, ज्वर निवारक, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक और तरी लाने वाली है। इसमें उड़नशील तेल पाया जाता है।

उपयोग—ज्वर—इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है।

पित्त रोग—इसके चूर्ण की फंकी देने से पित्त के उपद्रव मिटते हैं।

रुधिर विकार—इसके चूर्ण की शुद्ध गन्धक के साथ फक्की देने से रुधिर विकार मिटता है।

मूत्रावरोध—इसके चूर्ण में मिश्री मिलाकर देने से पेशाब की वृद्धि होती है।

तृषा—इसको मुनक्का के साथ घोटकर पिलाने से तृषा मिटती है।

कम्पवायु—सौंठ के साथ इसकी फंकी देने से हाथ पैरों की ऐंठन और कम्पन मिटती है।

हैजा—इसके इत्र की दो बूँद पोदीने के अर्क में डालकर पिलाने से हैजे की उल्टियां मिटती हैं।

मस्तक पीड़ा—इसको लोभान के साथ मिलाकर चिलम में रखकर धूम्रपान करने से मस्तक की पीड़ा मिटती है।

हृदय शूल—खस और पीपलामूल को बराबर लेकर घी में चाटने से तीव्र हृदय शूल मिटता है।

पित्तोन्माद—इसके रस में बूरा मिलाकर पिलाने से गरमी से होने वाले उन्माद में लाभ पहुँचता है।

खसखस

नाम—संस्कृत—खसफल, खासफसल। हिन्दी—पोस्त, खसखस, पोस्त दाना। बंगाली—पोस्त दाना। मराठी—पोस्त। गुजराती—अफीम ना डोड़वा। फारसी—कोकनार। अरबी—अबुनास। लेटिन—Papaveris Capsulac.

वर्णन—खसखस अफीम के बीजों को कहते हैं। अफीम का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के पहले भाग में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से खसखस शीतल, मलावरोधक, कड़वे, कसैले, वात कारक, कफनाशक, कास निवारक, नशीले, वाणी को बढ़ानेवाले, रुचिकारक और अधिक सेवन से पुरुषत्व को नाश करनेवाले होते हैं।

इनका विस्तृत वर्णन और प्रयोग इस ग्रन्थ के पहले भाग में अफीम के प्रकरण में देखना चाहिये।

खस खास मकरन

नाम—यूनानी—खस खास मकरन।

वर्णन—इसके पत्ते सफेद और सेल वाले होते हैं। इसके फूल लाल और पीले होते हैं। कोई-कोई गुलाब के फूल की तरह होता है। इसकी फली मेथी की फली की तरह और बीज भी मेथी के बीज की तरह होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि जैतून के तेल के साथ मिलाकर लगाने से खराब जख्म गांठ और मवाद को साफ करती है। इसके फूल आँख में लगाने से आँख की फुँसियां मिटती हैं। इसके बीज चौपाये जानवरों की आँखों में लगाने से उनकी आँखों का जाला कट जाता है। इसकी जड़ को जोश देकर पीने से सरदी की वजह से पैदा हुई जिगर की बीमारियों में आराम होता है। [ख० अ०]

खसखस ज़बैदी

नाम—यूनानी—ख़सख़स ज़बैदी।

वर्णन—यह एक रोइदगी है। यह बहुत सफेद और झाग की तरह हलकी होती है। इसकी डालियों में दूध भरा रहता है। इसके पत्ते कम चौड़े और लम्बे होते हैं। इसका पेड़ जमीन पर बिछा हुआ रहता है। इसकी जड़ पतली और इसका डोड़ा खशखश के डोड़े से छोटा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होती है। इसके सेवन से बहुत जोर से दस्त और उल्टियाँ होती हैं। यह कफ और पित्त को नष्ट करती है, दिमाग को साफ करती है। इसको ज्यादा मात्रा में लेने से शरीर में जहरीले असर दिखलाई पड़ने लगते हैं। ऐसी हालत में इसका असर दूर करने के लिये ईसबगोल के लुआब को कुछ शक्कर डालकर पिलाना चाहिये। गरम पानी के टब में बैठाना चाहिये तथा घी, जीरा, अनीसून, ताजा दूध इत्यादि वस्तुएँ देना चाहिये। [ख० अ०]

खसी-अल-कलब

नाम—अरबी—खसी-अल कलब। फारसी—खायसग।

वर्णन—यह एक वनस्पति होती है। जो जमीन पर फैली हुई रहती है। इसके पत्ते जैतून के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ नरम रहते हैं। इसकी जड़ जंगली प्याज की तरह होती है। जड़ में दो-दो गाठें रहती हैं। एक नर और एक मादा। मादा जाति में एक चिकना पदार्थ पाया जाता है। नर जाति की गठान पर धारियां पड़ी रहती हैं। इसकी दो जातियां होती हैं, एक बागी और दूसरी जंगली।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। यह कफ की सूजन को बिखेरती है। हरी हालत में इसकी जड़ कामेन्द्रिय को ताकत देती है। मगर सूखी हालत में खाने से कामेन्द्रिय की ताकत को नष्ट करती है। इसकी बड़ी अर्थात् जंगली जाति दस्तों को बन्द करती है। खराब क़िस्म के जख्मों में लाभ पहुँचाती है। बवासीर के मसों पर लगाने से लाभ पहुँचाती है। यह अधिक मात्रा में लेने से अपना विषैला प्रभाव दिखाती है इसलिये इसको छोटी मात्रा में ही लेना चाहिये। इसकी मात्रा ४ माशे से ६ माशे तक की है। इसके दर्प को नाश करने के लिये बबूल के गोंद का उपयोग करना चाहिये।

ख़सी अल-दीअक

नाम—अरबी—खसी अल-दीअक।

वर्णन—यह एक रोइदगी है। इसका पेड़ मकोय के पेड़ की तरह मगर उससे कुछ लम्बा होता है। इसका दाना गोल और सफेद होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह औषधि जमे हुए कफ को दस्तों की राह बाहर निकाल देती है। गठिया को फायदा पहुँचाती है। इसके लेप से बादी का सख्त वरम दूर हो जाता है। यह अधिक मात्रा में लेने से सिर दर्द और

बेचैनी पैदा करती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए बनफशा देना चाहिये। इसकी मात्रा १ माशे से ४ माशे तक है। (ख० अ०)

खंकाली (बस्फेज)

नाम--हिंदी—खंकाली। अरबी—बस्फेज। बम्बई--बस्फेज विचवा। लेटिन—Polypodium Vulgare (पोलीपोडियम व्हलगेर)

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसके पत्ते कटी हुई किनारों के होते हैं। इसकी जड़ें बहुत घनी होती हैं। यह वनस्पति बम्बई के बाजार में बस्फेज के नाम से बिकती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति कसैली और कुछ कड़वी होती है। यह वेदना नाशक और सूजन को नष्ट करनेवाली होती है। पित्त और कफ को यह बाहर निकाल देती है। अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक सेवन करने से यह आमाशय में दाह करती है। पित्त के प्रकोप में इसको पित्त पापड़ा और हर्र के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। गोमूत्र में इसे उबाल कर देने से तथा इसका लेप करने से संधियों की सूजन में और पीड़ायुक्त गठान में अच्छा लाभ होता है।

खटखटी

नाम--गुजराती—पड़ेकड़ो। मराठी—खटखटी, पांढरी धामन। कनाड़ी--दरसुख, कड्डु कड्डली। देहरादून--गुर भेली। तामील—कट्टकड्डली, पुनई पिडुकन। तेलगू—बनकजन। लेटिन—Crewia Scabrophylly (ग्रीविआ स्केब्रोफिला)।

वानस्पतिक विवरण—यह वनस्पति हिमालय के प्रदेश में और कुमाऊँ की बाहरी पहाड़ी पर ३५०० फीट की ऊँचाई पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी जड़ खांसी में और मूत्राशय की जलन में दी जाती है। इसका काढ़ा एनिमा देने के काम में लिया जाता है। यह स्निग्ध होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह अलथई की प्रतिनिधि है।

खड़िया

नाम—संस्कृत—पाक शुक्ला, शिलाघात, धवलमृतिका, वर्णलेखा, खड़ी इत्यादि। हिन्दी—खड़िया मिट्टी खड़िया, गोरखड़ी। बंगाल—खड़ी माटी। मराठी—खड़ू। गुजराती—खड़ी। कर्नाटक—बेणेबहु। फारसी—गिलेखरिया। अरबी—तिने अवयिव। लेटिन—Carbonate of Calcium (कारबोनेट आफ कैलसियम)।

वर्णन—यह एक प्रकार की सफेद मिट्टी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से खड़िया मधुर, कड़वी, शीतल, व्रणनाशक तथा पित्त, दाह, रुधिर विकार और नेत्र रोग को दूर करती है। इसका एक भेद पाषाण खड़िया होती है। यह व्रण, पित्त और रक्त विकार को दूर करती है। यह सब गुण इसके लेप में ही समझना चाहिये।

खामासूकी

वर्णन—यह एक रोइदगी है। इसमें न डण्डी लगती है, न फूल लगते हैं। इसकी जड़ से छोटी-छोटी शाखाएँ चार-चार अंगुल निकल कर जमीन पर फैल जाती हैं। शाखा में दूध भरा रहता है। पत्ते मसूर के पत्तों की तरह होते हैं और शाखों के नीचे लगते हैं। पत्तों के नीचे फल आते हैं। जो कि गोल होते हैं। इसकी जड़ पतली होती है। यह पथरीली और खुश्क जमीनों में पैदा होती है। यह मिश्र में बहुत होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे के अव्वल में गरम और खुश्क है।

यह निहायत तेज और चरपरी होती है। इसको पीसकर आँख में लगाने से आँख का जाला, फूला और फुन्सियों के निशान मिट जाते हैं। यह नजले को भी फायदा पहुँचाती है। इससे आँख की धुन्ध भी जाती रहती है। थोड़ी-सी खामासूकी रोटी के साथ खाने से बवासीर के दाने कट कर गिर जाते हैं। इसके पत्ते शराब के साथ पीसकर

गर्भाशय में रखने से गर्भाशय का दर्द मिटता है। इसकी शाखा और पत्तों के दूध के लगाने से हर किस्म के तिल व मस कट जाते हैं। इसका दूध बिच्छू के जहर को भी आराम पहुँचाता है इससे कफ की सूजन भी दूर हो जाती है और शरीर पर किसी चोट का दाग पड़ जाय तो इसके लेप से साफ हो जाता है।

यह सीने को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा अच्छा है। इसकी मात्रा ४ जौ के बराबर है। (ख० अ०)

खानिक अनमर

वर्णन—यह एक वनस्पति है। इसकी शाखें १ बालिश्त की होती हैं। इसके पत्ते ककड़ी के पत्तों की तरह होते हैं, मगर उनसे छोटे और खुरदरे होते हैं। इस वनस्पति के तीन-चार पत्तों से अधिक नहीं लगते। इसकी जड़ बिच्छू की दुम की तरह चमकदार, चिकनी और कांच की तरह होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह चौथे दर्जे में सर्द और खुश्क है।

इसके खाने से प्राणी फौरन मर जाता है। खास करके तेन्दुआ तो इससे बच ही नहीं सकता। इसी से इस को खनिक अनमर कहते हैं। अगर बिच्छू इसके पास पहुँच जाय तो फौरन मर जाता है। इसकी गरमी की सूजन पर लगाने से फायदा होता है। आँख के दर्द में भी इससे फायदा होता है। इससे बवासीर के मस्से गिर जाते हैं। मनुष्य को इसे नहीं खाना चाहिये, क्योंकि यह तेज जहर है। इसकी जड़ में इसके दूसरे अंगों से अधिक जहर रहता है। इसे पौने दो माशे खा लेने से ही सिर में जोरों का दर्द होता है, गले में सूजन आ जाती है, हाथ पाँव खिचने लगते हैं। जबान लड़खड़ा जाती है, शरीर का रंग काला पड़ जाता है। अगर ऐसा इत्तिफाक हो तो कमाफितूस, अफसनतीन, जर जीरा, केसून और शराब का प्रयोग करना चाहिये तथा दस्त और वमन करना चाहिए। कय करावें और एनिमा लगावें।

खीर शतर

वर्णन—इसको अश्तर खार भी कहते हैं, क्योंकि इसे ऊँट खाता है। इसके काँटे बहुत नोकदार होते हैं। इसका फूल सफेद और पीला होता है। इसके अन्दर बालों की तरह तार होते हैं। इसके बीज गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह सर्द और खुश्क है। कोई इसे गरम भी कहते हैं और निहायत खुश्क मानते हैं। इसके पत्तों को पानी में पीसकर भूखे पेट पर, तीन बूँद नाक में टपकाने से और बनफशा का तेल १ घण्टे के बाद नाक में खींचने से गरमी का पुराना सिर दर्द जाता रहता है। इसके आँख में लगाने से धुन्ध आराम हो जाती है और आँख का पतला जाला कट जाता है। इसके पंचांग के जोशान्दे [काढ़े] से बवासीर को धोने से लाभ होता है। इसके ताजे पत्तों को कुचल कर और उन्हें तेल में जलाकर उस तेल को गठिया पर लगाने से फायदा होता है, सर्दी के दर्दों में भी यह फायदा करती है।

यह गुर्दे को नुकसान करती है। इसका दर्प नाशक कतीरा है और प्रतिनिधि विष खपरा है।

खावी

नाम—संस्कृत—लामज्जक, गर्दभप्रिय, उष्ट्रप्रिय, दीर्घमूल, जलाशय इत्यादि। हिन्दी—खावी, लामजक, घटयारी, गन्धबेना, कर्णकुशा, इवरंकुशा। बम्बई—मझखिर, पिंवलाबाला। गुजराती—पीलोवालो, जलवलों, खटजलो। मराठी—पिवलावाला। फारसी—गुर्गियाह। अरबी—इदखिर। तामील—कामाटचिपिल्लु। तेलगू—वासनगड्डि। लेटिन—Andropogon Iwarancusa [एन्ड्रोपोगान इवरन् कुसा]।

वर्णन—यह एक बहुवर्ष जीवी सुगन्धित घास है। यह खस की तरह दिखाई देता है और उसी की तरह उपयोग में आता है। यह वनस्पति कुमाऊ, गढ़वाल, सीमाप्रान्त में पेशावर तथा राजपूताने में जोधपुर और जेसलमेर में तथा सिन्ध और पंजाब में पैदा होती है।

गण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार यह घास शीतल, कटु पाचक, विषनाशक, क्षुधा वर्धक, अग्नि दीपक और संकोचक होता है। यह रक्तविकार, चर्मरोग, पथरी, पसीना, जलन, कोढ़, त्रिदोष, पित्त, प्यास, वमन, मूर्छा और ज्वर में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्की लाने वाला होता है। यह ऋतुस्राव नियामक और पेट के आफरे को दूर करने वाला व पथरी को नष्ट करने वाला है। यह पेट के भीतर की गठानों को फायदा पहुँचाता है। इसके फूल रक्तस्राव को रोकने वाले होते हैं।

यह वस्तु एक सुगन्धित और पौष्टिक वस्तु की तरह अग्निमांद्य रोग में दी जाती है। खून को साफ करने और हैजा, सन्धिवात, गठिया तथा ज्वर को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

रक्तस्राव बन्द करने के लिये इसके फूलों को जख्म पर बाँधते हैं। सूजन को दूर करने के लिये इसके पंचांग को पीसकर उसका लेप किया जाता है। ज्वर में इसके पंचाङ्ग के काढ़े से शरीर को धोते हैं। पेशाब साफ होने के लिये इसके पंचांग को द्राक्षासव के साथ गरम करके देते हैं। आमवात को मिटाने के लिये इसको जुलाब की औषधियों के साथ देते हैं। यह औषधि गर्भाशय का संकोचन करती है। इसलिये इसे प्रसूति ज्वर में भी देते हैं। वातरक्त के अन्दर भी यह लाभदायक है। बच्चों के अजीर्ण को दूर करने के लिये यह एक अच्छी औषधि है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति शान्तिदायक और ऋतुस्राव नियामक है। इसमें उड़नशील तत्त्व रहता है।

खापर कद्दू (पातालतुम्बी)

नाम—हिन्दी—खापर कद्दू, पातलतुम्बी। मराठी—खापर कद्दू। गुजराती—कुन्टेर, कुन्ढेर, खापर कद्दू। बम्बई—पातालतुम्बी। कच्छ—कुंढेर। पंजाब—गालोत। तामील—मन्द। तेलगू—पलतिकि, मरडी। लेटिन—Caropegia Bulbosa [सेरोपेजिया बलबोसा]

वर्णन—यह एक लता होती है। इसकी बेलें २ से ५ फीट तक लम्बी होती हैं। इसके नीचे आलू की तरह छोटी २ गठानें लगती हैं। इसके पत्ते एक दूसरे के आमने सामने लगते हैं। ये लम्बगोल होते हैं। इसके फूल जामुनी रङ्ग की झलक लिये हुये रहते हैं। इसमें ३ इञ्च लम्बी फलियाँ लगती हैं। औषधि में इसका कन्द ही उपयोग में लिया जाता है। इसकी एक जाति कच्छ में दूधिया कुन्डेर के नाम से मशहूर है। यह बहुत कम और कहीं २ मिलती है। इसके लिये कहा जाता है कि अगर इसका कन्द बरसात के दिनों में खा लिया जाय तो बारह मास तक कोई रोग नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—इसके कन्द के रासायनिक विश्लेषण में चर्बी जनक पदार्थ २.३ प्र० सैं०, शक्कर २३.३ प्र० सैं० और मांस जनक द्रव्य ३.५ प्र० सैं० रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पौष्टिक और पाचक होती है। बिहार में यह आँख की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसकी खुराक आधे ग्रेन से लगाकर १ ग्रेन तक होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक और पाचक है। इसमें सेटोमिगाइन नामक उपक्षार पाया जाता है।

खिन्ना

नाम—हिन्दी—खिन्ना, खिन्द्रा, लेन्दवा। बम्बई—दुदला। मराठी—दुदला, हरि। पंजाब—बिलोजा, दुदला, करला। तेलगू—गर्भसूला। लेटिन—Sapium Insigne (सेपियम इनसाइन)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय के नीचे के हिस्से में, आसाम में तथा सीलोन और पश्चिमी प्रायः द्वीप में पैदा होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसमें से एक प्रकार का 'दूधिया रस निकलता है, जो कि जहरीला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका दूध जहरीला होता है। इसे शरीर पर लगाने से छाला उठ जाता है।

खिउनउ

नाम—संस्कृत—खरपत्र। हिन्दी—खिउनाऊ, खिर्णी, खुनिया, जहरफली, करु, खन, गोई और खेतल।

मराठी—पोशेदुमेर। बंगाल—जड़ोमुर, डुम्बुर, कुरली। देहरादून—खैना। मलयलम—पेरिना, पेरिन तरेकम, पोरो। पंजाब—कयेजुलर, कुरी त्रुम्बक। तामील—तरगदि। तेलगू—बोनमरी तुलू, जेऊ। लेटिन—Fievs Cunia (फाइकुस कुनिया)

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय की तलहटी में चिनाव से पूर्व की ओर छोटा नागपुर, पूर्वीय सतपुड़ा पहाड़ियाँ, खसिया पहाड़िया, चिटगांव और ब्रह्मा में होती है। यह एक मध्यम कद का वृक्ष है। इसका छिलका गहरे भूरे रंग का होता है। इसके पत्ते भिन्न आकार के होते हैं। इनके पीछे के बाजू रुंए रहते हैं। इसके फल अंजीर के समान होते हैं। ये तने पर और शाखाओं पर लगते हैं। पकने पर इनका रंग लाल और बादामी हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसका फल मुखक्षत सम्बन्धी शिकायतों में दिया जाता है। इसके फल और छिलके को उबालकर उस जल से स्नान करने से कुष्ट रोग में फायदा होता है।

इसकी जड़ों का रस मूत्राशय की शिकायतों में दिया जाता है। इसे दूध में उबाल कर मुँह के छालों में कुल्ले करने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कुष्ट और मूत्र नली की शिकायतों में यह उपयोगी है।

खिरनी

नाम—संस्कृत—कपिष्ट, क्षीरशुक्ल, क्षीरिका, खिरनी, मधुफल। हिन्दी—खिरनी, रेण, रंजन क्षीरि। बंगाल—खीरखजूर। बम्बई—खिरनी, रेण, राजन। गुजराती—रायण, रेण, रण कोकिरि, खिरनी, कैरा। मराठी—रेणि, राजन, रंजन, रायण। तामील—पाला, पलाई, सिवन्दी, सिवानी। तेलगू—मन्जिफल, नेमि। उर्दू—खिरनी। लेटिन—Nimasops Hexandra (मिशेसोप्स हेक्फेन्ड्रा)।

वर्णन—खिरनी अथवा रेण का वृक्ष भारतवर्ष में सब जगह प्रसिद्ध है, इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से खिरनी का फल मीठा, चिकना, शीतल, मुश्किल से पचने वाला, पौष्टिक और कामोद्दीपक होता है। यह प्यास को बुझाता है, हृदय को ताकत देता है, पित्त को नाश करता है और त्रिदोष, क्षय, भ्रम तथा कुष्ट में लाभदायक है। इसके पत्तों का रस योनि सम्बन्धी बीमारियों में उपयोगी होता है।

इसकी छाल कामोत्तेजक है। इसका फल वृद्ध लोगों के लिए लाभदायक है। यह शरीर और हृदय को पुष्ट करता है। भूख और कामशक्ति को बढ़ाता है। प्यास और सिर के भारीपन को कम करता है। चेतना शक्ति को पुनर्जीवित करता है और उल्टी, वायु नलियों का प्रदाह, जीर्ण प्रमेह और मूत्र सम्बन्धी विकारों में लाभदायक है। इसके बीज घावों में भी फायदा पहुँचाते हैं। इसके बीजों में एक प्रकार का तेल पाया जाता है। इसकी छाल का उपयोग मौलसरी की छाल की तरह होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक, स्निग्ध, पौष्टिक और धातु परिवर्तक है।

कामला रोग पर इस वनस्पति की अन्तर छाल बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी ताजा अन्तर छाल को ५ तोला लेकर, कुचल कर इतने ही पानी में डाल कर खूब अच्छी तरह मसल कर उस पानी को छान कर सवेरे के टाइम में पीने से और पथ्य में केवल बाजरी की रोटी खाने से १०–१५ दिन में कामले का रोग फिर चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो मिट जाता है। इस दवा को प्रारम्भ करने से २–४ दिन तक तबियत में बेचैनी और उल्टी होने सरीखी घबराहट पैदा होती है मगर उससे घबराना नहीं चाहिये। चार-पाँच रोज में यह घबराहट बन्द हो जाती है।

आँख की फूली पर भी रेण के बीजों की मगज अच्छा काम करती है। इसके लिए रेण के बीजों की मगज और काली सरसों के बीज, समान भाग लेकर उनका महीन चूर्ण करके उस चूर्ण को तीन दिन तक रेण के पत्तों के रस में, तीन दिन तक काली सरसों के पत्तों के रस में और तीन दिन तक बड़ के दूध में खरल करके गोलिया बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। इन गोलियों को स्त्री के दूध में घिसकर आँख में आंजने से १५–२० दिन में आँख की फूली कट जाती है।

अनार्तव अथवा मासिक धर्म के रुकने पर भी रेण के बीजों के मगज अच्छा काम करते हैं। इसके लिये रेण के बीजों के मगज, एलुवा, इन्द्रायण की जड़ और गाजर के बीज तीन तीन माशे और एक लहसन की गुली लेकर, बारीक पीसकर शहद में मिलाकर, उसकी लम्बी बत्ती बनाकर स्त्री के गर्भाशय में रखने से बहुत दिनों का रुका हुआ मासिक धर्म चालू हो जाता है। मगर यह प्रयोग अनुभवी वैद्यों के सिवाय दूसरों को नहीं करना चाहिये। गर्भवती स्त्रियों पर इस प्रयोग को नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

खिरनी (२)

नाम—संस्कृत—तालवृक्ष, बसन्तदूति। हिन्दी—खिरनी। बम्बई—खिरनी। मराठी—ककी। कनाड़ी—दाखो हूदारी, नेमि। तामील—पलइ। मलयालम—मणिलकार। लेटिन—Mimasops kanki (मिमेसोप्स कंकी)।

वर्णन—यह खिरनी की एक दूसरी जाति है जो प्रायः मलाया प्राय द्वीप में पैदा होती है। इसके वृक्ष बहुत बड़े और फैलने वाले होते हैं। इसके पत्ते अण्डाकार होते हैं। इसके फल १ इञ्च लम्बे, नारंगी रंग के बड़े मनोहर होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी जड़ और इसका छिलका दोनों ही संकोचक होते हैं। ये बच्चों के अतिसार को रोकने के लिए दिये जाते हैं। इसके पत्तों को तिल के तेल के साथ उबाल कर और उस तेल में इसकी अन्तर छाल का चूर्ण मिलाकर वेरी वेरी रोग को दूर करने के लिये देते हैं। इसके पत्तों को हलदी और अदरक के साथ पीसकर सूजन पर बाँधने से सूजन बिखर जाती है। इसके वृक्ष का दूध कान के प्रदाह और नेत्रभिष्यन्द रोग में उपयोग में लिया जाता है।

इसके बीज पौष्टिक और ज्वर निवारक होते हैं। ये कोढ़, प्यास, मूर्छा और ग्रंथि रसों के अन्य विकारों में काम में लिये जाते हैं। ये कृमिनाशक भी माने जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक, ज्वर निवारक और कृमिनाशक है। इसे बच्चों के अतिसार और चक्षु वेदना में काम में लेते हैं।

खुर बनरी

नाम—पंजाब—खुरबनरी। झेलम—कोरीबोटी। सतलज—नीलकण्ठी। कुमाऊं—रठपाथा। लेटिन—Aguga Bracteosa [अजुगा ब्रेक्टोसा]।

वर्णन—यह वनस्पति कश्मीर से पंजाब तक पश्चिमी हिमालय में ७००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—बेडनपावेल के मतानुसार यह एक कड़वी, संकोचक, सुगन्धित और पौष्टिक वस्तु है। यह मलेरिया ज्वर में उपयोगी होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी, संकोचक, मूत्रल और विरेचक होती है। बुखार में यह सिनकोना के स्थान पर उपयोगी होती है।

खुबानी

नाम—हिन्दी - खुबानी, जर्दालू, जलदारू, चिलू। अरबी—किशनिश, बिकुक, तुफीरमेना। अफगानिस्तान—जर्दालू। पञ्जाब—आलू कश्मीरी, किश्ता, गर्दालु। उर्दू—खुबानी। काश्मीर—गर्दालू, चेरकिश। लेटिन—Prunus Armeniaca [प्रूनस आरमेनिका]।

वर्णन—यह वनस्पति कॉकेशस में पैदा होती है। पश्चिमीय एशिया मध्य एशिया, योरोप और बिलोचिस्तान में ८००० फीट की ऊँचाई तक और उत्तर पश्चिम हिमालय में १२००० फीट की ऊँचाई पर और पञ्जाब के मैदानों में भी पैदा होती है। यह मध्यम आकार का एक वृक्ष होता है। इसके पत्ते गोल और तीखी नोक वाले होते हैं। ये

पीछे से रुएँदार होते हैं। इसके फूल शुरू में हलके गुलाबी रंग के होते हैं। मगर बाद में सफेद हो जाते हैं। इसका फल गोल व चपटा होता है। इसकी गुठली में छोटी बादाम की तरह एक मगज निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसका फल मीठा, अतिसार नाशक और ज्वर दूर करने वाला होता है। यह प्यास को बुझाता है। इसके बीज पौष्टिक और कृमिनाशक होते हैं। यकृत के रोग, बवासीर और कान के बहरेपन में यह लाभदायक है। ऐसा कहा जाता है कि खुबानी पहाड़ों पर होने वाली बीमारियों में बड़ा लाभ पहुँचाती है। तिब्बत के लोग इसे चबाकर आँख के रोग में लगाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह खून के जोश को शान्त करती है, दस्त साफ लगती है, जमे हुए सुद्दों को खोलती है, पित्त ज्वर में लाभ पहुँचाती हैं। मेदे की जलन को दूर करती है, पेट के कीड़ों को मारती है। शरीर में ताकत लाती है। बुड्ढे और सर्द मिजाज वालों को नुकसान पहुंचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए अजवायन, मस्तगी, अनीसून और शक्कर मुफीद हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, ज्वर में शान्ति देने वाली और प्यास को बुझाने वाली है।

खूबकला

नाम—हिन्दी—खूबकला। अरबी—खाकसी, खूबा। फारसी—खाकसी। पञ्जाब—जंगली सरसों, मकछुस। सिन्ध—जंगली सरसों। उर्दू—खूबकला। लेटिन Sisymbrium Irio [सिसिमब्रिम आयरियो]।

वर्णन—यह वनस्पति राजपूताना, पञ्जाब, पेशावर, बिलूचिस्तान, कोहाट, मध्य एशिया, अरब, अफगानिस्तान और भूमध्य सागर के किनारे पैदा होती है। मगर ईरान में पैदा होने वाली वनस्पति उत्तम मानी जाती है और वहीं से इसके बीज हिन्दुस्तान में बिकने आते हैं। इसके बीज राई के बीजों की तरह होते हैं। सब से अच्छे बीज वे माने जाते हैं जो लाल और केशरिया रंग के हों। ये बीज अधिक दिनों तक पड़े रहने में खराब हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी चिकित्सा के अन्दर यह वस्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गई है। खास करके ज्वर को नष्ट करने वाले नुस्खों में इसका विशेष उपयोग होता है।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और तर है। यह कामेन्द्रिय को ताकत देती है। भूख बढ़ाती है। सूजन और खराब बादी को बिखेरती है। मेदे को कूबत देती है। हाजमें को बढ़ाती है। चेहरे की कान्ति को निखारती है। बेहोशी में लाभदायक है। इसके लेप से स्त्रियों के स्तनों की सूजन, पुरुषों के अण्डकोषों की सूजन और गठिया की सूजन में लाभ पहुँचाता है। इसके लेप से गर्भाशय के फोड़े फुन्सी भी मिटते हैं।

खूबकला फेफड़े के रोग, पुरानी खाँसी और बुखार में बहुत लाभ पहुँचाती है। इसको गुलाब जल में खूब औटा कर हैजे के रोगी को पिलाने से भी लाभ होता है। इसको ४ माशे की मात्रा में प्रतिदिन खाने से सीने और फेफड़े की खराबियाँ कफ की राह निकल जाती हैं।

एक यूनानी हकीम का कथन है कि जिसकी चेचक [माता] बिगड़ गई हो, उसको यदि इसके काढ़े में कुरता रंग कर पहिना दें तो सब दाने बदस्तूर निकल कर आराम हो जाते हैं।

हकीम अजमल खाँ का कहना है कि मोतीजरे के बीमार के पीने के पानी के बर्तन में खूबकला के बीजों की पोटली बनाकर डालने से और उसके बिस्तर पर खूबकला के बीजों को बिखेर देने से बीमार की घबराहट और बेचैनी दूर होकर दाने आराम से निकल जाते हैं।

इसकी खुराक ४ से ६ माशे तक है। इसके अधिक सेवन से सिर दर्द पैदा हो जाता है इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

डाक्टर वामन गणेश देशाई के मतानुसार कफ से पैदा हुई खाँसी, श्वास इत्यादि रोगों में खूबकला का पाक बनाकर देना चाहिये, इससे कफ जल्दी पड़ता है, श्वासावरोध में कमी हो जाती है और आवाज सुधरती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार खूबकला उत्तेजक, कफनिस्सारक और शक्ति वर्धक है। यह दमे की बीमारी में लाभ पहुँचाती है।

उपयोग—चेचक [माता]—खूबकला ३ माशे, उन्नाव तीन दाने, मुनक्का ५ दाने, अंजीर जर्द ३ दाने, शक्कर ३ तोला इन सबको आधा पाव पानी में जोश दें, जब छटांक भर पानी रह जाय तब छान कर पिलाने से चेचक के रोगी को लाभ होता है।

मोतीज्वर [टायफाइड फीवर]—खूबकला, गावजवान, बनफसा, तुलसी, ब्राह्मी, सोंठ, मिर्च, पीपर, मुलेठी ये सब तीन तीन माशे और अमलतास का गूदा ६ माशे। इन सब चीजों को पाव भर पानी में उबाल कर छटांक भर पानी रहने पर छानकर, शहद मिलाकर पिलाने से मोतीज्वर में बहुत लाभ होता है। कभी कभी तो इस औषधि से यह ज्वर मियाद के पहले भी उतरता देखा गया है।

खेतकी

नाम—संस्कृत—कंटाला। अवध—खेतकी, हाथी चिमगार। तामील—मलई कटलई। तेलगू—भ्रमराक्षसी, किटनटा। लेटिन—Agave Augustifolia [अगेवा अगस्टिफोलिया] A. Vivipera [अगेवा विवोपेरा]।

वर्णन—यह एक छोटे तने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते छुरा या तलवार की शकल के होते हैं। यह भूरे और हरे रंग के होते हैं। इनके किनारों पर कुछ कांटे होते हैं। इसके फूल बड़े और हरे रहते हैं। इन में बदबू आती है। इसकी डोड़ी लम्बी और गोल होती है। यह वनस्पति अमेरिका में पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ मूत्रल और ज्वर निवारक होती है। इसके पत्तों का ताजा रस रगड़ या चोट के काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि जानवरों के घावों पर या शस्त्र के कारण हुए जख्मों पर लगाने के काम में आती है।

खेत पापड़ा

नाम—हिन्दी—दमन पापड़ा। बंगाल—खेत पापड़ा। लेटिन—Oldenlandia Bigloia.

वर्णन—यह वनस्पति कर्नाटक सीलोन, पूर्वी बंगाल, सिकिम, आसाम, सिलहट, पेगू, मलाया प्रायद्वीप, फिलीपाइन द्वीप समूह और चीन में पैदा होती है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसकी शाखाएँ चौकोर होती हैं। इसके पत्ते अण्डाकार और पतले होते हैं। इसके फूल सफेद रहते हैं और इसके डोड़ियाँ लगती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसे पार्यायिक ज्वरों में, पाकस्थली की पीड़ा में और स्नायु मण्डल की अवसन्नता में उपयोग में लेते हैं।

खेन

नाम—मनीपुर—खेन, खेड़। बरमा—थिउसी। लेटिन—Melanorrhoea Usitata [मेलेनोरिया यूसिटाटा]।

वर्णन—यह वनस्पति उत्तरी और दक्षिणी बरमा तथा श्याम में पैदा होती है। यह एक जंगली वृक्ष है। इसके पत्ते लम्ब गोल और रुएँदार होते हैं। फूल सफेद और फल बेर के आकार का बैंगनी रंग का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका रस जो कि इस वनस्पति के हर एक हिस्से में पाया जाता है, कृमिनाशक होता है। इसके अन्दर पाया जाने वाला मुख्य तत्व यूरोशिक एसिड है जो उसमें ८५ प्र० सैं० तक पाया जाता है यह वारनिश बनाने के काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक और चर्म रोगों में लाभदायक होती है।

खैर

नाम—संस्कृत—खदिर, श्वेतसार, सोमसार, सोमवृक्ष इत्यादि। हिन्दी—खैर। बंगाल—खन्टेगाछ। मराठी—खैर। गुजराती—खेरियौ, गोरल। कर्नाटकी—केम्पिनखैर। तेलगू—चण्ड चेट्टु। लेटिन—Acacia Catechu [अकेशिया कटेच्चू]।

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसका तना छोटा और टेढ़ा मेढ़ा होता है। इसकी डालियां कांटेदार होती हैं। पत्ते इमली के पत्तों से भी छोटे होते हैं। इसकी फलियां २-३ इञ्च लम्बी, पतली भूरी और चमकदार होती है। इनमें ३ से १० तक बीज निकलते हैं। इसकी लकड़ी से कत्था तैयार किया जाता है। कत्थे का वर्णन इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में दिया गया है। इसकी सफेद और काली दो जातियाँ होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से खैर शीतल, दाँतो को दृढ़ करने वाला, कड़वा, कसैला तथा चर्मरोग, खांसी, अरुचि, मेदकृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेत कुष्ट, रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ट और कफ को दूर करने वाला होता हैं।

सफेद खैर व्रण को हितकारी तथा मुख रोग, कफ, रुधिर दोष, विष, कृमि, कोढ़ और ग्रह बाधा को दूर करने वाला होता है।

खैर का गोंद मधुर, बलकारक, शुक्र वर्धक, व्रण को हितकारी तथा मुख रोग, कफ और रुधिर के दोष को दूर करने वाला होता है।

खैर के अन्दर से उसकी लकड़ी को उबाल कर कत्था प्राप्त किया जाता है। मगर एक सत्व जिसे खैरसार बोलते हैं वह इस वृक्ष में अपने आप बनता है। यह सत्व औषधि प्रयोग में अच्छा काम करता है। यह कफ रोगों को दूर करने के लिये बड़ी प्रभावशाली औषधि है।

जीर्ण ज्वर में खैरसार और चिरायता इन दोनों का काढ़ा देने से बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है और शरीर में बल आता है। रक्त-पित्त में खैर की छाल का काढ़ा देने से दाँतों के द्वारा बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है। चर्म रोगों में इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से और उससे घावों को धोने से बड़ा लाभ होता है कुष्ट रोग के अन्दर काम आने वाली औषधियों में खैर श्रेष्ठ माना जाता है। संग्रहणी, अतिसार और दूसरी दस्तों में इसका कत्था या खैरसार बहुत गुणकारी होता है। गर्भाशय की शिथिलता से पैदा हुए विकारों में भी यह अच्छा काम करता है। सूक्ष्म ज्वर और शरीर के फीकेपन में यह एक मूल्यवान औषधि है मतलब यह कि इससे सारे शरीर की शिथिलता कम होती है। यह संग्राही, कफ नाशक, रक्तपित्त नाशक, पार्यायिक ज्वर प्रतिबन्धक, कुष्ट नाशक और खांसी को दूर करने वाला है।

खेरी

नाम—यूनानी—खेरी।

वर्णन—यह एक छोटा-सा पेड़ होता है, इसकी छाल का रंग सफेदी लिये हुए होता है। इसके पत्तों पर हलका रुआँ होता है। इसके फूल सफेद, लाल, नीले, पीले कई रंगों के लगते हैं। औषधि के उपयोग में पीले और लाल फूल ज्यादा आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसका फूल मेदे और आंतों में इकट्ठी हुई वायु को बिखेरता है। हिचकी को रोकता है। इसे आँखों में लगाने से आंखों का जाला कटता है। इसके सूँघने से दिमाग साफ हो जाता है। इसके काढ़े को टब में भर कर उसमें बैठने से रुका हुआ मासिक धर्म और रुका हुआ पेशाब जारी हो जाता है। इसके काढ़े में कपड़े को तर करके उसकी बत्ती बनाकर योनि में रखने से मरा हुआ बच्चा निकल जाता है। इसे १ माशा पीसकर पीने से रुका हुआ मासिक धर्म चालू हो जाता है और यदि गर्भ हो तो गिर पड़ता है। इसे ककड़ी के बीजों के साथ पीने से गुर्दे और मसाने की पथरी गलकर निकल जाती है। इसका लेप करने से जोड़ों की सूजन में लाभ होता है।

अधिक मात्रा में खाने से यह सिर दर्द पैदा करता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अर्क गुलाब मुफीद है। इसकी मात्रा ४ माशे तक है [ख० अ०]

खोजा

नाम—बंगाल—खोजा। आसाम—खोजा। कच्छ—घिउला। लेटिन—Callicarpa Arboria [केलिकारपा आरबोरिया]।

वर्णन—यह वनस्पति गंगा के उत्तरी मैदान में और कुमाऊ से सिक्किम तक की पहाड़ियों में तथा खासिया पहाड़ी और बरमा में पैदा होती है। यह एक छोटा वृक्ष होता है। इस पर भूरे रङ्ग का हलका छिलका होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी छाल सुगन्धित, कड़वी, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और चर्मरोग नाशक होती है।

खोर (सफेद खैर)

नाम—संस्कृत—खदिरा, खदिरोपर्ण, कुन्जकंटक। हिन्दी—खोर, सफेद खैर। गुजराती—कांटी, खेंगर। बम्बई—केगर, कैर। मराठी—पांढरा खैंर। तेलगू—चनेसन्द। तामील—पेंकरूंगली। लेटिन—Acac'a Ferr-nginea (एकेशिया फेरूगेनिया)।

वर्णन--यह खैर की एक जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से इसका छिलका कड़वा और चिरचिरा होता है। यह गरम, कृमिनाशक और खुजली, धवल रोग, वृण, मुखशोथ, कफ, वात और रक्त रोगों में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्तों का सार संकोचक, रक्तश्राव रोधक और पौष्टिक होता है। इसके प्रयोग से घावों से मवाद आना बन्द हो जाता है। यह रक्तवर्धक और यकृत की तकलीफों में उपयोगी होता है। नेत्र रोग, पेचिश, पुराना सुजाक, प्रमेह, जलन, खाज, अन्न प्रणाली की विकृति और मूत्रमार्ग की बीमारियों में यह लाभदायक है।

इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिट जाते हैं ऐसा डाक्टर मुडीन शरीफ का मत है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल संकोचक होती है।

गंगेरन

नाम—संस्कृत—नागबला, खरगन्धा, खर बल्लिका, महागन्धा। हिन्दी—गंगरेन, हड़जुरी, गुलसकरी। मराठी—गंगेटी, तुपकड़ी। गुजराती—बला, डुङ्गराउ बला, गंगेटी, कांटलोबाल। बंगाल—बोनमेथी, गोरकचोलिया। लेटिन—Sida Spinosa [सिडा स्पिनोसा]।

वर्णन—यह वनस्पति सारे हिन्दुस्तान के उष्ण भागों में पैदा होती है। इसके पत्ते अण्डाकार रहते हैं। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के रहते हैं। इसके पौधे ३ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसमें बहुत बाँकी टेढ़ी डालियाँ लगती हैं। इसके पत्ते चौड़े और छोटे होते हैं। ये कटी हुई किनारों के रहते हैं। इसके फूल जेठ आषाढ़ में आते हैं जो सफेद रंग के होते हैं। इसके फल पकने पर नारंगी रंग के हो जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैद के मतानुसार गंगेरन मधुर, अम्ल; कसैली, गरम, भारी, चरपरी, कफ, वात नाशक, व्रण निवारक और पित्त को नाश करने वाली है। इसकी जड़ें शक्तिनाशक बीमारियों में पौष्टिक वस्तु की तौर पर काम में ली जा सकती है। व्रण, पित्त, मूत्र सम्बन्धी बीमारियाँ, कुष्ट और चर्मरोग में भी ये लाभदायक हैं। इसका फल संकोचक और शीतल है। इसके पत्ते शान्दियक और ज्वरनाशक हैं। ये सुजाक, जीर्ण प्रमेह और पेशाब की गरमी को नष्ट करने वाले हैं।

मालवे के लोग हड्डी टूटने पर या मोच आने पर इसकी जड़ के रस को या उसके काढ़े को पिलाते हैं। यह जानवरों को पिलाने के काम में ली जाती है।

इसकी जड़ की छाल का काढ़ा सुजाक और मूत्राशय की जलन में शान्तिदायक वस्तु की तौर पर दिया जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देशाई ने इस औषधि का लेटिन नाम "Sida Garpinifolia" लिखा है। उनके मत से बम्बई की तरफ इसकी जड़ का चूर्ण अजीर्ण रोग में दिया जाता है। इसका काढ़ा आमवात को दूर करने वाला माना जाता है। ज्वर में सोंठ के साथ इसका काढ़ा देने से गर्मी कम होती हैं, पेशाब अधिक आता है और भूख लगती है। सुजाक में इसकी जड़ का चूर्ण दूध के साथ देने से लाभ होता है। इसके पत्तों का रस पुरानी आँतों के रोग में

पौष्टिक वस्तु के बतौर दिया जाता है। इसके पत्ते को तिल के साथ पीसकर गरम करके सूजन पर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

उपयोग—सुजाक—इसके पत्तों को काली मिर्च के साथ पीस कर देने से पुराना और नया सुजाक मिटता है।

ज्वर—इसकी जड़ काढ़ा बनाकर देने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है।

धातु की कमजोरी—इसकी जड़ की छाल के चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाकर १ तोले की मात्रा में दूध के साथ लेने से वीर्य की कमजोरी मिटती है और कामशक्ति बढ़ती है।

स्तनों का ढीलापन - इसकी जड़ को पानी में पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तन कठोर हो जाते हैं।

दमा और खाँसी—इसकी जड़ को दूध में जोश देकर पीने से अथवा इसकी जड़ के चूर्ण को दूध के सा लेने से दमा और खाँसी में लाभ पहुँचता है।

गज पीपल

नाम—संस्कृत—चव्यफल, दीर्घग्रन्थि, गजकृष्ण, गजपीपलि, कपिवली इत्यादि। हिन्दी—गजपीपल, झंका बंगाल—गजपीपल। गुजराती—मोटी पीपल। उर्दू—गजपीपली। तेलगू—गजपीपली। लेटिन—Scinde p..u Officianelis [स्किन्डेपसस, ऑफिसिनेलिस]।

वर्णन—यह एक बड़ी वेल होती है, जो आर्द्र जमीनों में सपाट मैदानों में पैदा होती है। यह हिमालय प्रदेश में सिक्किम के पूर्व तथा बंगाल में मिदनापुर जिले के अन्दर बहुत होती है। इसका तना छोटी अंगुलि के बराबर होता है। इसकी शाखाएँ सूखने पर झुर्रीदार हो जाती हैं। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के और अण्डाकार होते हैं। इसके बीज छोटी पीपल से बड़े करीब १॥ इंच लम्बे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गजपीपल तेज, तीक्ष्ण, गरम, क्षुधावर्द्धक, कामोद्दीपक श्रवण शक्ति को तेज करनेवाली और दस्त को नियमित करनेवाली होती है। पेचिश, श्वास और गले की तकलीफों में यह लाभदायक है।

कफ प्रधान, पेचिश, दमा और खाँसी में यह अच्छा लाभ करती है। संधिवात पर इसका लेप करने से अ लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। यह भूख बढ़ाती है। दस्त बन्द करती है। श्वास सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुंचाती है। पेट के कीड़े, दाद और कफ को नष्ट करती है। कामेन्द्रिय को ताकत देती है। इसकी वेल का हर एक अंग मेदा और जिंगर को ताकत देता है। यह वीर्य को स्तम्भन करती है। पेट के दर्द और बवासीर में लाभदायक है तथा पुराने बुखार को निकालती है।

कोमान के मतानुसार इसके फल की फाँको का काढ़ा दमें में दिये जाने पर कफ को ढीला करके निकाल देता है, किन्तु उसके दौरे की तकलीफ कम नहीं करता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सुगन्धित, पेट के आफरे को दूर करनेवाली और उत्तेजक होती है। इसमें उपक्षार रहते हैं।

उपयोग—श्वास—इसके चूर्ण को पान में रखकर खाने से श्वास मिटता है।

वादी का उदरशूल—इसके चूर्ण की फंकी देने से बादी का उदरशूल मिटता है।

गठिया—इसे घिसकर गरम करके लेप करने से गठिया में लाभ होता है।

नोट – राज निघण्टु और मदनपाल निघण्टु के रचयिताओं ने "चव्य" के फलों को "गज पीपली" माना है।

गजचोनी

नाम—संस्कृत—बहुफला, कण्टकारि, श्रुवृक्षम, वकंकता। हिन्दी—गजचीनी, बैंकल, किंगनी, कंटाई, वज, किकिण। अजमेर—काकरा। बंगाली—वेचगच्छा। बम्बई—हुरमचा, माल कांगनी। मध्यप्रान्त—चेकल, गजाचनी। गुजराती—विकलो, विकारो। पंजाब—दजकर, खरई। तामील—कंटक, कन्टजि, वलुलुअइ। तेलगू—गजचीनी।

लेटिन--Celastrus Senegalensis (सेलेस्ट्रस सेनेगेलेन्सिस) Gymnosporia Spinosa (गिम्नोस्पोरिया स्पिनोसा)।

वर्णन—यह एक प्रकार की ऊँची झाड़ी होती है। इसके पत्ते लम्ब गोल, शाखाएँ काँटेदार, फलियाँ छोटी मटर की फली के समान और बीज बादामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति पंजाब, सिंध, पश्चिम राजपुताना, गुजरात, बिहार, खानदेश, दक्षिण मध्यप्रान्त इत्यादि हिन्दुस्तान के सभी भागों में पैदा होती है, किसी किसी के मत से यह मालकाँगनी की ही एक उपजाति है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फल खट्टा, मीठा, कसैला, पाचक, अग्निदीपक, ज्वरनाशक और रक्त शोधक होता है। यह बवासीर, फोड़े, कफ, पित्त, प्रदाह, जलन, प्यास और कनीनिका की अस्वच्छता को मिटाता है।

सुश्रुत के मतानुसार इसका पञ्चाग सर्पदंश में दूसरी दवाइयों के साथ उपयोग में लिया जाता है।

उपयोग—आंख की फूली—इसके पत्तों का रस आँख में आञ्जने से आँख की फूली बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है।

पांडु और कामला—इसके पत्तों को पानी में उबाल कर उस पानी को छानकर, उसमें शकर मिलाकर पीने से पाँडु, कामला, सूजन, रक्तविकार, बवासीर इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार इस वनस्पति का कोई भी हिस्सा सर्पदंश में उपयोगी नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश के अन्दर काम में ली जाती है।

गदाकल्ह

नाम—बम्बई—काटा, करवी। मुण्डारी—हिन्दुदारू, मरंगतिद। संथाली—गदाकल्ह, हरनपकोर। तामील—कुरिन्ज, सिन्ना गुरिंजा। लेटिन—Strobilnthes Auriculatus (स्ट्रॉबिलेन्स एरिक्यूलेथ्स)।

वर्णन—यह वनस्पति मध्यभारत, गंगा के उत्तरी मैदान और मध्य प्रदेश में पैदा होती है, यह एक झाड़ी होती है जिसकी शाखाएं आड़ी टेढ़ी फैल जाती है। इसकी फली फिसलनी होती है। जिसमें चार चार बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्तों को पीसकर बदन पर लगाने से पार्यायिक ज्वरों में लाभ होता है।

गदाबानी (विष खपरा)

नाम—संस्कृत—रक्तबसुक। हिन्दी—गदाबानी। बङ्गाली—गदकनी। दक्षिण—विष खपरा। तामील—बल्लेशरन्ने। तेलगू—तेलगलिजेरू। लेटिन—Trianthema Decandra (ट्रिएन्थेमा डिकेन्ड्रा)।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है। यह सड़कों के किनारे शुष्क जमीनों पर फैलती है। इसका तना जमीन पर फैलने वाला होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसके बीज काले होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा, दमा, यकृत की सूजन और मासिक धर्म की रुकावट में बहुत लाभदायक होता है। इसकी जड़ को दूध के साथ पीसकर पिलाने से अण्डकोष की सूजन और जलन में लाभ होता है। इसके पत्तों का रस नाक में टपकाने से आधा शीशी बन्द होती है। इसकी जड़ विरेचक वस्तु की तौर पर भी काम में ली जाती है।

गदाभिकन्द

नाम—संस्कृत—चक्राँगी, चक्रोहर, मधुपर्णिका। हिन्दी—सुखदर्शन, गदाभिकन्द। बंगाल—सुख दर्शन। मराठी—गदाभिकन्द। तामील—विषमुंगील। लेटिन—Crinum latifolium [क्रिनम लेटिफोलियम], C. zeylanicum (क्रिनम झेलेनिकम)।

वर्णन—यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसके फूल सुगन्धित और सफेद रहते हैं। इसकी जड़ में से एक कन्द रहता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका कन्द बहुत कसैला, सुगन्धित और गरम होता है। इसको लगाने से बहुत खुजली होती है और छाला उठ जाता है। यह जानवरों के छाले उठाने के काम में लिया जाता है। यह चर्म दाहक है। इसे भूंजकर संधिवात में चर्मदाहक औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसके पत्तों का रस कान के दर्द में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि, वमनकारक, ज्वरनिवारक और विरेचक होती है।

गंजनी

नाम—संस्कृत—कुत्रण। हिन्दी—गञ्जनि, गंजनिकाघास। मराठी—उषाधन, सुगन्धितृण। बंगाल—कमाखेर। मलयालम—कामद्धिपुल्ल। तामील—कावट्टमपुल। तेलगू—कामञ्चिक्सु। लेटिन—Andropogon Nardus [एण्ड्रोपोगान नारडस]।

वर्णन—यह एक प्रकार का सुगन्धित घास होता है। यह त्रावणकोर, पंजाब, सिंगापुर और सिलोना में ज्यादा पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका तेल उत्तेजक, पेट का आफरा दूर करने वाला, आक्षेप निवारक और ज्वर नाशक होता है। इसके पत्तों का शीत निर्यास, अग्नि दीपक और पेट का आफरा दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ें मूत्रल, पसीना लाने वाली और ज्वर निवारक होती हैं। इसके फूल ज्वर निवारक माने जाते हैं। इसके तेल को सिट्रोनिला [Citronella] कहते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर और प्यास को शान्त करने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होती है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

गटा पारचा

वर्णन—यह एक वृक्ष का सुखाया हुआ रस रहता है। इसका रंग ललाई लिये हुए भूरा होता है। एलोपैथिक इलाज में इस वस्तु की बारीक २ चादरें बनाई जाती हैं। इसके ऊपर सोलेशन लगाकर के जखमों पर लगाने से वह सोलेशन नहीं सूखता है। इसके अलावा मोटा गटापारचा टूटी हड्डी को मिला रखने के लिये प्रयोग में लिया जाता है।

गटूरना

वर्णन—मराठी में इसको बाघाटी कहते हैं। यह एक बड़ी बेल होती है। इसके कांटे मुड़े हुए होते हैं। इसके सफेद फूल लगते हैं, जो बाद में गुलाबी रंग के हो जाते हैं। इसके फल १ इंच या १॥ इंच के होते हैं। इसका फल पक जाने पर लाल रंग का हो जाता है। यह बेल अक्सर गाँव के पास खारी जमीन या पहाड़ी जमीन में होती है। इसके फल का अचार बनाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह बेल कसैली, कड़वी, ठण्डी और पित्त को मिटाने वाली है। इसके फल कड़वे और गरम होते हैं। यह हैजा, वात और कफ को दूर करती है। गरमी की जलन व खुजली मिटाने के लिये इसके पत्तों का लेप करते हैं। इसके पत्तों के लेप से सूजन दूर हो जाती है। बवासीर के मस्सों का फुलाव और सूजन मिटाने के लिये इसके पत्तों का लेप फायदेमन्द है। इसके पत्तों का जोशांदा पिलाने से उपदंश में लाभ होता है। [ख० अ०]

गड़पाल

वर्णन—यह एक जंगली बूँटी है। यह सर्द मिजाज वाले लोगों के लिये कामेन्द्रिय की ताकत को बढ़ाने में बहुत फायदेमन्द है।

उपयोग—अंजीर ३० दाने, अदरख २७ तोले, लौंग ३० दाने, दालचीनी १ तोला, मिश्री ४ तोले, शकर आधा सेर, गड़पाल पाव भर। इनका माजून बनाकर हाजमा शक्ति के अनुसार प्रतिदिन खाने से काम शक्ति बहुत बढ़ती है। [ख० अ०]

गडगवेल

नाम—मराठी—गड़गवेल। लैटिन—Vandellia Pendunculata [वेन्डेलिया पेडनक्यूलेटा]।

वर्णन—यह लता सारे भारतवर्ष में वर्षाऋतु में पैदा होती है। यह एक छोटी जाति की बहुशाखी लता होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति घी के साथ देने से सुजाक में लाभ पहुँचाती है। इसका रस बच्चों के हरे दस्त में लाभदायक होता है।

बुखार के अन्दर शरीर की गरमी को दूर करने के लिये इसके पत्तों व नीम के पत्तों को पीस कर उनका रस सारे शरीर पर मसला जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके गुण रासना से मिलते-जुलते हैं। यह स्नायु मण्डल की बीमारियों में, गठिया में और बिच्छू के विष पर उपयोग में ली जाती हैं।

गंडल

नाम—पंजाब—गंडल, गनहुल, गुँआंडिश, मुश्किपारा, रिचकास, तिसकी, तसार। लेटिन—Sambucus Ebulus [सैम्बूकस एबूलस]।

वर्णन—यह वनस्पति चिनाव और झेलम में ४००० फीट से ११००० फीट तक की ऊँचाई पर होती है। यह यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में भी पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते कफ निस्सारक, मूत्रल, ज्वर निवारक और विरेचक होते हैं। ये जलोदर के अन्दर बहुत लाभदायक हैं। इसके फल भी जलोदर में लाभदायक हैं। इंगलैण्ड और यूरोप के कई भागों में इस वनस्पति की जड़, पत्ते और फल जलोदर रोग की एक अच्छी औषधि मानी जाती है। इसकी अन्तर छाल का काढ़ा बहुत मूत्रवर्धक है। इसके पत्तों का पुल्टिस बनाकर सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है।

हानिक्बर्गर के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक होती है। जलोदर रोग में यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ें विरेचक होती हैं। ये जलोदर के काम ली जाती हैं। इसमें सीरानोजनेठिक ग्लुकोसाइड्स और इसेन्शिअल आइल पाये जाते हैं।

गन्डूकेपला

नाम—कनाड़ी—बन्दिक्य, गन्डूकेपला, नेमारू। कुर्ग—ओलेकोदी। मलयालम—कनाऊ, कसू। तामील—परुङ्गच, वाचि। तुलू—ओलेकोदी। लेटिन—Memecylon Amplexicaule [मेमीसिलीन एम्प्लेक्सीकोलि]।

वर्णन—यह वनस्पति मलाया प्रायद्वीप के दक्षिण के पहाड़ों में होती है इसका एक छोटा झाड़ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूलों का काढ़ा व इसकी कोमल शाखाओं का काढ़ा चर्म रोगों में उपयोगी है। इसकी जड़ शीघ्र प्रसवकारी है।

गणेशकांदा

नाम—मराठी—गणेशकांदा। मलयालम—अनचुकिरी। लेटिन—Rhaphidophara Partesa [रेफिडोफोरा परटेसा]।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिण कारोमण्डल, मलाबार और उसके दक्षिण में सीलोन तक पैदा होती है। यह मलाया द्वीप में भी पैदा होती है। इसकी बेल पराश्रयी होती है। यह हरी और मुलायम रहती है। इसके पत्ते हरे रंग के और फूल मोटे और खूबसूरत होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति का रस काली मिरच के साथ में जहरीले साँप के विष को दूर करने के लिये पिलाया जाता है और इसे करेले के साथ में पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने के काम में भी लेते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है। कर्नल चोपरा के मतानुसार इसे साँप और बिच्छू के जहर पर काम में लेते हैं।

गदा

नाम—यूनानी—गदा।

वर्णन—यह एक वृक्ष होता है, जिसकी लम्बाई २ या ३ गज होती है। इसके पत्ते बांस के पत्तों की तरह मगर उससे नरम होते हैं। इन पत्तों की नोकों पर बालों की तरह एक नीली वस्तु लिपटी हुई रहती है। इसकी जड़ सफेद, लम्बी और सकरकन्द की तरह होती है। इसका स्वाद तेज, तूरा और कुछ कड़वापन लिये हुए होता है। इसका फूल लाल रंग का छोटा और खूबसूरत होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि सर्प विष को नष्ट करने में बड़ी अक्सीर है। सांप के काटे हुए को, इसकी ४ माशे जड़ चटाने से जहर उतर जाता है। रोगी पर अगर जहर का असर अधिक हो जाय और उसे दवा की तेजी मालूम न हो तो इसको अधिक मात्रा में खिलाना चाहिये। जब उसको दवा की तेजी मालूम होने लगे तब समझना चाहिये कि जहर का असर कम हो रहा है। उस समय दवा देना बन्द कर देना चाहिये। अगर बीमार में दवा चबाने की शक्ति न हों तो उसे इसकी गोलियाँ बनाकर उन गोलियों को घी में चिकने करके निगलवा देनी चाहिये। अगर उससे गोली भी न निगली जाय तो उन गोलियों को पीसकर पिला देना चाहिये। इसे खाने या पीने से जहर वमन द्वारा निकल जाता है।

अगर जहर की शंका से औषधि दे दी गई हो तो इस औषधि का असर नष्ट करने के लिए मट्ठा पिलाना चाहिये।

गंधतृण

नोट—इस वनस्पति का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग के पृष्ठ २५ पर 'अगिन घास' के प्रकरण में दिया गया है।

गन्ध प्रसारिणी

नाम—संस्कृत—प्रसारिणी, भद्रबाला, भप्रपर्भी, गन्धपर्णी, राजबला। हिन्दी—गन्ध प्रसारिणी, गन्धारी, पसरन। मराठी—हिरणवेल, प्रसारणी। बंगाली—गन्धभादुनी। गुजराती—गन्धन। आसाम—वेदोलीसुत। नेपाल—पायदेबिरी। तेलगू—सरिरेला। उर्दू—गन्धन। लेटिन—Paederia Foetida (पिडरिया फोइटिडा)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति की लता होती है। यह हिमालय, बंगाल तथा दक्षिण कोकण में बहुत पैदा होती है। इसे हिमालय और बंगाल में हिरणवेल कहते हैं। यह वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसके तन्तु बहुत लम्बे और मजबूत होते हैं। इन तन्तुओं को सन् की जगह भी काम में लेते हैं। इस बेल का तना गोल और कोमल रहता है इसके पत्ते बरछी के आकार के और तीखे होते हैं। इनके फूल हलके बैंगनी रंग के होते हैं। इसका फल लम्ब गोल होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति कड़वी, बलदायक, कामोत्तेजक, टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली, कांतिजनक और बवासीर, सूजन तथा कफ को दूर करने वाली है। यह मृदु विरेचक होती है।

राज निघन्टु के मतानुसार "प्रसारिणी" भारी, गरम, कड़वी तथा वात, सूजन, बवासीर और कब्जियत को दूर करने वाली है।

प्रसारणी की जड़ वातनाशक, शोधक, मूत्रल और आनुलोमिक है। यह अधिक मात्रा में लेने से वमन पैदा करती है। इसका प्रधान उपयोग, रक्तदोष और वात प्रधान रोगों में किया जाता है। आमवात और रक्तवात में यह एक हुक्मी औषधि मानी जाती है। इन रोगों में इसको खाने से और संधियों पर लेप कर ने से अच्छा लाभ होता है। इसको सोंठ, मिर्च और पीपल के साथ खाया जाता है और चित्रक मूल के साथ इसका लेप किया जाता है।

कीर्तिकर और वसु के मतानुसार इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक जाति जो कड़वी होती है वह लेप के काम में ली जाती है और दूसरी खाने के काम में ली जाती है।

खाने के काम में ली जाने वाली जाति पौष्टिक, मूत्रल, ऋतुश्राव नियामक और कामोद्दीपक होती है। यह नकसीर, सीने का दर्द, बवासीर, यकृत और तिल्ली के प्रदाह में लाभदायक है। इसके पत्ते पौष्टिक, रक्तश्राव रोधक और घाव को पूरने वाले होते हैं। यह कान के दर्द में उपयोग में ली जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति ऋतुश्राव नियामक, विरेचक और रक्तश्राव रोधक होती है। इसके बीज विषनाशक होते हैं। यह श्वेत कुष्ठ में लाभदायक है। संधिवात में यह वनस्पति अंतः प्रयोग और बाह्य प्रयोग दोनों काम में आती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह स्निग्ध, पेट के आफरे को दूर करने वाली और संधिवात में बहुत फायदे-मन्द है।

नोट—कीर्तिकर और वसु ने इसका मराठी नाम "चाँदवेल" और गुजराती नाम "नारी" लिखा है। मगर "प्रसारिणी" और "चाँदवेल" अलग अलग चीजें हैं। "चाँदवेल" कब्जियत करती है और "प्रसारिणी" मृदु विरेचक है।

गन्धना

नाम—यूनानी—गन्धवा।

वर्णन—इसके पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं। यह तेज और बदबूदार होते हैं। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है जब इसका पौधा बढ़ जाता है तब उसके बीच में से एक शाखा निकलती है। उस शाखा के सिरे पर फूल और बीज लगते हैं। इसके बीज और फूल प्याज की तरह होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक शामी और एक नफ्ती, इसकी जड़ में एक प्रकार की गांठ निकलती है जो प्याज की तरह होती है। (खजाइनुल अदबिया)।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी नफ्ती जाति तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। शामी जाति दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है।

यह वनस्पति शरीर के सूजन और वादी को बिखेरती है। पाचन शक्ति को सुधारती है। पेशाब और मासिक धर्म को साफ करती है। पेट के कीड़ों को मारती है बवासीर में फायदे मन्द है। मृदु विरेचक है। इसके पानी में तलवार, छुरी इत्यादि धारदार चीजें बुझाने से उन में अच्छी तेजी आती है।

शामी गन्धना देर से पचने वाली, खून में तेजी पैदा करने वाली और आँखों के लिए हानिकारक है। इसे पीसकर आग से जले हुए स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है। इसे कुन्दर और सिरके के साथ नाक में टपकाने से नक्सीर बन्द होती है। इसके रस को शहद के साथ चटाने से कफ के जमाव से पैदा हुआ दमा दूर होता है।

यह औषधि गुर्दे और मसाने के जख्मों को नुकसान पहुँचाती है। इसके काढ़े से टब को भरकर उस टब में बैठने से गर्भाशय का रुका हुआ मुँह खुल जाता है। इसका एनेमा लगाने से उदरशूल [Cholic] दूर होती है। इसके रस को एक तोले, सवा तोले की मात्रा में पीने से बवासीर का खून रुक जाता है।

इसकी दोनों जातियाँ नपुंसकता को दूर करने के लिये बहुत मुफीद है। खजाइनुल अदबिया के मतानुसार चाहे जिस कारण से पैदा हुई नपुंसकता इस औषधि के सेवन से दूर हो जाती है और कामेन्द्रिय को ताकत मिलती है।

जहरीले जानवरों के विष को दूर करने के लिये भी यह औषधि मुफीद है। इसको खाने से और काटे हुए स्थान पर लेप करने से जहर के उपद्रवों में लाभ होता है। इसको अजमोद के साथ पानी में औटाकर उस पानी को कमरे में छिड़कने से मच्छर भाग जाते हैं।

गंधना के बीज—इसके बीज दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। ये शरीर की सूजन और बादी को बिखेरते हैं। भूख खोलते हैं, कफ की बीमारियों में लाभदायक हैं। गुर्दे, मसाने और कामेंद्रिय को ताकत देते हैं, पथरी को तोड़ते हैं, सरदी की बिमारियों में लाभदायक हैं। मुँह, नाक, बवासीर इत्यादि किसी भी अंग से होने वाले रक्तस्राव को रोकते हैं। इसकी शामी जाति के बीजों को भूनकर खाने से पेचिस बन्द होता है। शराब के साथ इन बीजों को पीसकर लेने से बवासीर में लाभ होता है। इनको पीसकर मुँह पर लेप करने से मुँह की झांई नष्ट होकर कांति बढ़ती है।

यह औषधि गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाती है, पेट में फुलाव पैदा करती है। इसके खाने से खराब सपने आते हैं। यह आँखों और दाँतों को नुकसान पहुँचाती है, इसके दर्प को नाश करने के लिये धनियाँ, सौंफ और शहद मुफीद है। इसका प्रतिनिधि प्याज है। इसके बीजों की मात्रा ७ माशे तक की है। औषधि प्रयोग में इसके बीज और गठाने काम में आती हैं।

गन्धक

नाम—संस्कृत--गौरीबीज, बलि, गन्धपाषाण, गन्धक, कीटघ्न, क्रूरगन्ध। हिन्दी—गन्धक। बंगाल—गन्धक। मराठी—गन्धक। गुजराती—गन्धक। तेलगू—गन्धकमु। फारसी—गोगिर्द। अरबी—कीपृत। अंग्रेजी—Brimstone ब्रिमस्टोन, Sulpher सलफर।

वर्णन—इतिहास—आर्य औषधि शास्त्र के अन्दर गन्धक का महत्व और उसके गुण धर्म प्राचीन काल से वर्णन किये हुए हैं। पुराणों में इसके सम्बन्ध में ऐसा कहा गया है कि पूर्वकाल में श्वेत द्वीप में क्रीड़ा करती हुई भगवती पार्वती देवी रजस्वला हुईं तब उस रज के सने हुए कपड़े से भगवती क्षीर समुद्र में नहाई। वह रज समुद्र में गिरी और उससे गन्धक की उत्पत्ति हुई।

आर्य औषधि शास्त्र के मतानुसार शरीर में अग्नि पैदा करके उस अग्नि की सहायता से एक धातु को दूसरी धातु में परिवर्तित करने के लिये गन्धक एक आवश्यक पदार्थ है। इसके अतिरिक्त आर्य औषधि शास्त्र की प्रधान वस्तु पारद को औषधि रूप में तैयार करने के लिये भी गन्धक की पद पद पर आवश्यकता होती है। जो पारद सम्पूर्ण रोगों को नाश करने वाला है, वह पारद गन्धक के योग के बिना कुछ भी उपयोग का नहीं है। इससे गन्धक की महत्ता आसानी से समझ में आ सकती है। पारद यदि भगवान शिव का वीर्य है तो गन्धक भगवती पार्वती का रज है। इन दोनों के संयोग के बिना चिकित्सा शास्त्र में कोई महत्व का रसायन नहीं बन सकता।

अरब और ग्रीक चिकित्सकों के अन्दर भी गंधक बहुत प्राचीनकाल से चिकित्सा शास्त्र में काम में लिया जाता है। ऐलोपैथिक चिकित्साशास्त्र ने भी इस वस्तु की महत्ता को स्वीकार कर लिया है।

गन्धक की उत्पत्ति और व्यापकता—गंधक स्थावर और जंगम सभी स्थानों में पाया जाता है। मनुष्य शरीर के अन्दर, वनस्पतियों के अन्दर तथा पार्थिव द्रव्यों के अन्दर सभी स्थानों पर यह वस्तु पाई जाती है।

[१] शरीर के अन्दर रक्त और दूध में यह छोटी मात्रा में रहता है। पित्त के अन्दर यह २५ प्रतिशत पाया जाता है। यह गंधसारिका के रूप में रहता है।

[२] वनस्पतियों के अन्दर राई वर्ग, गाजर वर्ग, लहसन, छत्रकवर्ग, झाड़ों के रस और बीजों के तेल में भी यह पाया जाता है। यह सलफेट [Sulphate] के रूप में रहता है।

[३] पार्थिक द्रव्यों में यह विशेष करके गरम पानी के झरनों के आसपास जो थर बन जाता है उसमें जिप्सम नामक पत्थर के अन्दर यह पाया जाता है।

[४] गंधक की सबसे बड़ी उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतों से होती है यह उनके आसपास पड़े हुए थरों में मिलता है। इटली और सिसली [श्वेत द्वीप] में गन्धक बहुत मिलता है और वहीं से यह दूर २ जाता है।

इसके अतिरिक्त डेरागाजीखान के नजदीक सुलेमान पहाड़ में, उत्तर अफगानिस्तान के हजारा जाट नामक स्थान में, बलूचिस्तान के सन्नी नामक स्थान में, बिहार उड़ीसा के मयूरभंज और सिंगभूमि में, करांची के नजदीक घीसी नाम बन्दर में तथा ब्रह्मदेश, हैदराबाद, दक्षिण, मद्रास, पंजाब, इत्यादि स्थानों में भी यह कहीं कम कहीं ज्यादा मात्रा में मिलता है।

गन्धक का रासायनिक प्रभाव—गन्धक एक मूल तत्व होने की वजह से रसशास्त्र के अन्दर बहुत महत्व की वस्तु मानी जाती है। यह जीवित प्राणियों के चमड़े पर लगाने से हाइड्रोजन सलफाइट को बाहर करता है। इस कारण किसी तेल के साथ इसे चमड़ी के ऊपर लगाने से चमड़ी में जलन होती है और अगर चमड़ी नाजुक हो तो कभी २ फुन्सियाँ भी निकल आती हैं, मगर इसके लेप से चमड़ी पर के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और यह गीली खुजली के कीड़ों को जल्दी मार देता है।

पेट के अन्दर यह दो ड्राम की मात्रा में लेने से आमाशय में जैसा का तैसा रहता है। लेकिन पित्त और अग्निरस [पेंक्रियाटिकजूस] में कुछ-कुछ घुल जाता है। वहाँ से जब यह आँतों में पहुँचता है तब इसका कुछ हिस्सा सलफ्यूरेटेड हाइड्रोजन में बदल जाता है। इसके कारण आँतों में कुछ सुरसुराहट-सी पैदा होती है। आँतों की काम करने की क्रियात्मक शक्ति बढ़ जाती है। आँतों पर इसका विरेचक असर भी होता है। जिससे १-२ दस्त भी हो जाते हैं। गन्धक के ज्यादा सेवन से आँतों में सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन गैस पैदा होकर अक्सर बदबूदार अपानवायु गुदा मार्ग के द्वारा निकलने लगती है। इसलिये इसको ज्यादा दिन तक सेवन करना हानिकारक है।

कहा जाता है कि गन्धक स्वस्थ मनुष्यों के वायु यन्त्र की श्लेष्मिक झिल्ली के सार तत्व को बढ़ाता है और उसके स्पन्दन को ज्यादा करता है। मगर यह संदिग्ध है। इसके अधिक सेवन से खून में सलफाइट्स और सलफ्यूरेटेड हाइड्रोजन मिलते रहते हैं ये प्रभावशाली जहर है। इनके बढ़ने से खून की सुर्खी कम हो जाती है। सांस आने में रुकावट पैदा होती है। पट्ठे कमजोर हो जाते हैं। इसलिए इसको नियमित मात्रा से कभी ज्यादा नहीं लेना चाहिये।

रक्त में अपना प्रभाव दिखलाने के बाद इसका कुछ हिस्सा सलफेट के रूप में मूत्र मार्ग की तरफ निकलता है। कुछ हिस्सा श्वासोच्छ्वास नली की श्लेष्म त्वचा के जरिये सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन के रूप में बाहर निकलता है, उस समय यह श्वास नली को उत्तेजित करता है। इसका कुछ हिस्सा मोटी अँतड़ी के रास्ते गुदा की तरफ जाकर वहाँ कुछ दाह पैदा करके विरेचक प्रभाव बतलाता है, जिससे मल नरम होकर दस्त साफ हो जाता है। इसका यह विरेचक धर्म बवासीर के रोग में बड़ा लाभदायक होता है, क्योंकि यह गुदा मार्ग की शिरा को संकुचित कर देता है।

चर्म रोगों में यह एक उत्तम और विरेचक औषधि है। श्लेष्म निस्सारक होने की वजह से यह श्वास नलिका की पुरानी सूजन पर भी बहुत उपयोगी होता है। इस रोग में गंधक के सेवन के साथ पथ्य रूप में प्याज खिलाने से इसके गुण बहुत अच्छे दृष्टिगोचर होते हैं। प्याज को काटकर बरतन में बन्द करके आग पर पकाकर खाने से श्लेष्म निस्सारण क्रिया बहुत उत्तम होती है।

जीर्ण आमवात में गंधक खाने से और लेप करने से लाभ होता है। गृध्रसी रोग में यह एक उत्तम औषधि है। जिगर की खराबी से पैदा हुई कब्जियत में भी इसकी गोलियों से लाभ होता है। पुरानी गठिया और पुराने जिगर के रोगों के लिए गंधक के सोते का पानी पीने से अच्छा लाभ होता है। पुराने और जमे हुए कफ को निकालने में भी गन्धक मदद करता है। पुराने चर्म रोग व गठिया रोग में गन्धक के झरनों में स्नान करने से अच्छा लाभ होता है। गन्धक के अन्दर पीब पड़ने को रोकने की अच्छी ताकत है। श्लेष्मिक झिल्लियों के लिए भी यह एक पौष्टिक वस्तु है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गन्धक रक्त-शोधक, धातु परिवर्तक तथा २० प्रकार के प्रमेह, १८ प्रकार के कोढ़, मन्दाग्नि, वायुरोग, कफ रोग इत्यादि दूर करने वाला है और शरीर को नवीन रूप देने वाला होता है। आयुर्वेद की यह एक प्रधान वस्तु है। आयुर्वेद में इसकी ४ जातियाँ मानी गई हैं। एक लोनिया गन्धक, एक पीला आँवला सार, एक लाल और एक काला। लोनिया गन्धक खाली लेप करने के काम में और धूनी देने के काम में आता है। आँवला सार गन्धक बहुत चिकना, चमकदार, पीले रंग का और कुछ हरी झाई लिए हुए होता है। यह गन्धक सभी औषधियों में और पारद को सिद्ध करने के काम में लिया जाता है। लाल गन्धक तोते की चोच के समान लाल रंग का होता है। ऐसा कहा जाता है कि यह सोना बनाने के क्रिया में काम में आता है मगर यह बहुत दुर्लभ होता है। अत्तार लोग लाल गंधक के बदले में लाल कसीस दे दिया करते हैं जो किसी काम में नहीं आती।

गन्धक शुद्धि की आवश्यकता—आयुर्वेद के मतानुसार अशुद्ध गन्धक के सेवन करने से या किसी योग में डालने से ताप, भ्रम, कोढ़ आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और शरीर की कांति, ताकत, शुक्र तथा उत्साह नष्ट होते हैं। इसलिए गन्धक की शुद्धि अवश्य करना चाहिये।

गन्धक शोधन की विधियाँ—(१) लोहे की कढ़ाही में पाव भर गाय के घी को तपा कर उसमें एक सेर आवलासार गंधक के चूर्ण को डालकर हलकी आंच देना चाहिये। जब सब गंधक का चूर्ण घी में घुल जाय, तब एक मिट्टी के पात्र में दो सेर मट्ठा भरकर उस पात्र के ऊपर एक बारीक, गीला और नवीन कपड़ा ढक कर मजबूत बाँध

दें। उस कपड़े के ऊपर कढ़ाही में पिघली हुई गन्धक को धीरे २ डालना चाहिये जिससे सब गन्धक उस कपड़े में से छनकर मट्ठे में चला जाय। जब सब गन्धक कपड़े से निकल कर मट्ठे में पहुंच जाय तब कपड़े को खोलकर पात्र के पेंदे में जमे हुए गन्धक के ढेले को निकाल लेना चाहिये। इस प्रकार ५ या ७ बार शुद्धि करने से गन्धक अच्छा शुद्ध हो जाता है।

(२) गन्धक रसायन—जिस मनुष्य को गन्धक रसायन सेवन करना हो उसको इस दूसरी विधि से गन्धक शोधन करना चाहिये। अच्छे उत्तम भिलामों का आधा पाव तेल लेकर उसमें आधा सेर आँवलासार गन्धक का चूर्ण डालकर, लोहे की कढ़ाही में रखकर हलकी आँच दें। जब गन्धक पिघलकर तेल में मिल जाय तब उस कढ़ाही में त्रिफले का काढ़ा और गिलोय का स्वरस डालकर कलछी से चलावे। जब गन्धक ठण्ढी पड़कर कर जम जाय तब उसे निकालकर दूसरी बार फिर से नये भिलामे का तेल डालकर इसी प्रकार शुद्ध करे। इस प्रकार तीन बार करने से गन्धक शुद्ध होता है। इस गन्धक को गाय का दूध, दालचीनी, काली मिरच, पत्रज, छोटी इलायची के दाने, बड़ी हर्र की छाल, गिलोय बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरच, पीपल, अदरक, भाँगरा इन १४ औषधियों के स्वरस या क्वाथ की आठ २ भावनाएँ देना चाहिये। जब सब भावनाएँ लग चुके तब उस गन्धक में समान भाग मिश्री मिलाकर किसी पात्र में रख दें। इसी को गन्धक रसायन कहते हैं।

इस गन्धक रसायन को अपनी प्रकृति के अनुसार एक तोले तक की मात्रा में गाय के धारोष्ण दूध के साथ लेने से २० प्रकार का प्रमेह, १८ प्रकार का कोढ़, सब प्रकार के वात रोग, मंदाग्नि, शूल तथा रक्त विकार से होने वाले सब रोग नष्ट होते हैं। यह गन्धक रसायन परम बाजीकरण है। यह विषम धातुओं को सम करता है।

इन गन्धक रसायन से भिलामें से होने वाले सब विकार नष्ट हो जाते हैं।

(३) गन्धक शोधन की तीसरी विधि—सिंदूर रस आदि बनाने के लिये या किसी योग में गन्धक को डालने के लिये इस विधि से गन्धक को शुद्ध करना अच्छा है। लोहे की कढ़ाई में सेर भर गन्धक और पाव भर घी डालकर हलकी आँच पर गला लें। उसके बाद पहली शुद्धि के अनुसार मिट्टी की नांद में गन्धक से दूना दूध भरकर उसके मुँह पर पतला, नवीन और गीला कपड़ा बाँधकर उस गन्धक को कपड़े के ऊपर छोड़ दे और कलछी से हिलावें। जब सब गन्धक दूध में गिर जाय तब उसको नांद के पैन्दे से निकालकर फिर नये दूध में शुद्ध करना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करने से गन्धक शुद्ध हो जाता है। यह गन्धक रक्त शुद्धि के लिये खाने के काम में आता है।

इस गन्धक की शुद्धि में दूध के ऊपर जो घी तिरकर आता है उसको इकट्ठा करके एक पात्र में भर कर रख लेना चाहिये। इस घी को खाज, खुजली, चर्मरोग पर मालिश करने से अच्छा लाभ होता है।

(४) चौथी विधि—दो सेर आंवलासार गंधक को आधा सेर गाय का घी मिलाकर लोहे की कढ़ाई में डालकर हलकी आँच से गलाना चाहिये। गलने के बाद उपरोक्त विधि से मिट्टी के बरतन में ४ सेर प्याज का रस भरकर उपरोक्त विधि से छान लेना चाहिये। इस प्रकार ५० बार करने से गन्धक शुद्ध हो जाता है। यह गन्धक रक्तविकार, कफ विकार और वात व्याधि में बहुत मुफीद है। इस गन्धक के योग से षड गुण गन्धक जारित स्वर्ण सिन्दूर बनाया जाय तो वह चन्द्रोद्रय के समान गुणकारी होता है तथा और भी दूसरे योग में अगर इस गन्धक को डाला जाय तो वह योग बहुत प्रभावशाली हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कोढ़, तिल्ली, कफ के रोग और आमाशय के रोगों में लाभदायक है। गंधक कामेंद्रिय को ताकत देता है, पीलिया को मिटाता है। मासिक धर्म को चालू करता है, इसकी धूनी से जुकाम और नजले में फायदा होता है। इसको पीसकर सूँघने से मिरगी, सन्यास रोग और आधा शीशी में लाभ होता है। बबूल का गोंद १ भाग और गंधक आधा भाग को मिलाकर दही के साथ लगाने से सिर की गंज, फोड़े, फुन्सियां और तर खुजली में लाभ होता है। अकरकरा, शहद और सिरके के साथ इसको लगाने से कोढ़ और वात की बीमारियों पर अच्छा असर होता है। चेहरे की भाईं और दाग पर भी इसको सिरके के साथ लगाने से लाभ होता है। इसको ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में खाने से यह भूख पैदा करता है, वायु की

बिखेरता है तथा आमाशय और कमर को ताकत देता है। लौंग, दालचीनी या जायफल को गन्धक के अर्क में तर कर के छाया में सुखाकर पीसकर खाने से कामेंद्रिय की ताकत और पाचन शक्ति बढ़ती है। हकीम ऊजअली का कथन है कि उनके पास एक ऐसा अमीर रोगी आया, जिसके मेदे में एक दर्द पैदा होता था और वह पीठ से लगाकर मसाने तक पहुँच जाता था। उसी वक्त उस रोगी में पीलिया के लक्षण भी दिखाई देने लग गये थे, गर्दन का रंग, आँखें और चेहरा पीला पड़ जाता और कभी कम्पन भी पैदा हो जाता था। इस रोग को दूर करने के लिये कई इलाज किये गये मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में उसको गन्धक का चूर्ण खिलाना शुरू किया और एलुआ, केशर, गुलाब के फूल तथा अफसंतीन को गुलाब के अर्क में पीस कर मेदे पर लेप करवाया। इस प्रयोग से वह रोगी कुछ ही दिनों में अच्छा हो गया।

हकीम जालीनूस का कहना है कि एक आदमी को यरकान स्याह [कामला] का रोग हो गया। वह ५ साल तक रहा तब किसी ने उसको कड़वी बादाम के साथ गन्धक खाने के लिये कहा। बीमार ने ऐसा ही किया और उसको आराम हो गया। गुदाभ्रंश रोग में गन्धक की धूनी देने से बड़ा लाभ होता है।

गन्धक को ऊपर बतलाई हुई विधि से दूध और घी में शुद्ध करके उसमें से ६ रत्ती की मात्रा में, गाय के २। तोले घी और पाव भर दूध के साथ निहार मुँह [भूखे पेट] लेने से २० दिन में सफेद दाग, खुजली और फोड़े मिट जाते हैं। दो माह तक इसका लगातार सेवन करने से शरीर तन्दुरुस्त हो जाता है। साल भर तक इसका सेवन करने से बुढ़ापे के आसार मिट जाते हैं। यही गन्धक ६ रत्ती की मात्रा में लेकर ६ रत्ती उत्तम हरड़ के साथ बारीक पीसकर बेंगन के बीजों के तेल में चिकना करके खाने से और ऊपर से ४ घड़ी के बाद तरावट वस्तु खाने से कोढ़, फालिज, क्षय, पुरानी खाँसी और बवासीर में आश्चर्यजनक लाभ होता है। इससे सफेद बाल काले पड़ जाते हैं और फिर सफेद कभी नहीं आते। स्मरण शक्ति को ताकत मिलती है। मगर इसके सेवन करने से पहले विरेचन इत्यादि से शरीर की शुद्धि कर लेना बहुत जरूरी है। जिन दिनों में इसका सेवन किया जाय उन दिनों खटाई, नमक, गरम चीजें, स्त्री सम्भोग और अधिक मेहनत के कामों से परहेज करना चाहिये।

नारू के अन्दर शुद्ध गन्धक को ५ माशे की मात्रा में लेकर घी का काफी सेवन करने से ३ दिन में नारू बिल्कुल निकल जाता है।

यह औषधि अधिक मात्रा में सेवन करने से मेदा, दिमाग और जिगर को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा, दूध और तरबूज का सेवन करना चाहिये। इसकी साधारण मात्रा १॥ माशे से ४ माशे तक की है।

उपयोग—खुजली—(१) ३ माशे शुद्ध गन्धक को ३ माशा त्रिफला के चूर्ण के साथ प्रातःकाल लेकर ठण्डा पानी पीने से २ सप्ताह में खुजली नष्ट हो जाती है। मगर इसका सेवन करते समय नमक, खटाई और गरम चीजों से परहेज करना चाहिये।

(२) ३ माशे शुद्ध गन्धक को आटे की बाटी में रखकर उस बाटी को आग पर सेक कर खाने से तर और सूखी खुजली मिटती है।

(३) गन्धक को सरसों के तेल में पीस कर मलने से फोड़े, फुन्सी आराम हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—गन्धक को पीसकर बिच्छू के डंक पर लगाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है।

प्रमेह—४ माशे शुद्ध गन्धक को ८ माशा गुड़ के साथ खिलाकर ऊपर से दूध पिलाने से बीसों प्रकार के प्रमेह मिटते हैं।

हैजा—शुद्ध गन्धक को कागजी नींबू के रस में मिलाकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

सफेद दाग—गन्धक और जौखार को कड़वे तेल में पीसकरके लेप करने से सफेद दाग मिटता है।

कुष्ठ—इसको गाय के मूत्र में पीसकर लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

दन्त रोग—गन्धक को सिरके में पीसकर उसमें रूई की बत्ती को तर करके कीड़े से खाये हुए दांत में रखने से दांत का दर्द मिट जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि आमवात और स्नायुशूल में बहुत लाभदायक है ।

गन्धगिरी

नाम—कनाड़ी—गन्धगिरी, देवदारु, जीवदेन, कुरुन्हकुमारा । दक्षिण—नटका देवदार । तामील—दसाडरम, देवदारम, देवदारो । अंग्रेजी—Bastard sandal, Deodar । लेटिन—Erythrozylon Monogynum [एरीथ्क्झीलोन मोनोगायनम] ।

वर्णन—यह एक कोका [कोकिन] की जाति का वृक्ष है । यह दक्षिण के पर्वतीय प्रांत, कर्नाटक, सीलोन और मद्रास प्रेसीडेंसी में पैदा होता है । ऊपर इसके नामों में देवदारू का नाम आया है मगर जो चीज सब दूर देवदारू के नाम से प्रसिद्ध है वह दूसरी है और उसका वर्ग भी दूसरा है । उसका वर्णन देवदारू के प्रकरण में यथास्थान दिया जायगा ।

गुण, दोष और प्रभाव—डाक्टर मुनीड के मतानुसार इसकी लकड़ी और छाल का शीत निर्यास जठराग्नि को बढ़ाने वाला, पसीना लाने वाला, उत्तेजक और मूत्रल है । यह अग्निमांद्य के साधारण केसों में और अविराम ज्वर में भी लाभदायक है । जलोदर के केसों में यह दूसरी तेज औषधियों के साथ में उपयोग में ली जाती है । इसके पत्ते ज्वर और प्यास को शमन करने वाले होते हैं । इसके पत्तों में थोड़ी मात्रा में उपक्षार पाये जाते हैं ।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार जीर्ण ज्वर और अजीर्ण रोगों में इसकी छाल का शीत निर्यास दिया जाता है । इससे भूख लगती है और पेशाब साफ होती है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु बलदायक है । इसमें इसेंशिअल आइल पाया जाता है ।

गन्धाबिरोजा

नाम—संस्कृत—श्रीवास, सरलश्राव, श्रीवेष्ट । हिन्दी—गंधाबिरोजा, सरल का गोंद, चीड़ का गोंद । लेटिन—Ferula Galbaniflua [फेरुला ग्लेवेनिफ्लुआ] ।

वर्णन—यह चीड़ के वृक्ष का गोंद है । किसी यूनानी हकीम का कहना है कि यह ऐसे वृक्ष का गोंद है जिसके पत्ते चिनार के पत्तों की तरह होते हैं । यह वृक्ष हिन्दुस्तान और टर्की में पैदा होता है । इसका रंग प्रारम्भ में सफेद होता है, उसके बाद पीला और लाल रंग का होकर सख्त हो जाता है और आग पर डालने से पिघल जाता है ।

गुण, दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है । पुराना गंधाबिरोजा ज्यादा खुश्क होता है ।

पुरानी खांसी, दमा, हिस्टीरिया, मिरगी, बवासीर, कफ की बीमारियाँ तथा जिगर और तिल्ली की बिमारियों में यह लाभदायक होता है । यह गुर्दे और जिगर के जमाव [सुद्दे] को बिखेरता है, पथरी को तोड़ कर बहा देता है । गुलाब के तेल में इसको घोटकर कान में टपकाने से सिर का दर्द और कफ से पैदा हुआ कान का दर्द मिटता है ।

धनुर्वात—(Tetanus), कमर का दर्द और जोड़ों के दर्द में तथा कण्ठमाला और फोड़ों पर इसका लेप करने से लाभ होता है । मुँह की झाँई भी इससे मिट जाती है । इसको मरहम के साथ मिलाकर फोड़ों पर लगाने से फोड़े मिट जाते हैं और उन पर बदगोश्त आ गया हो तो वह साफ होकर घाव भर जाता है ।

हकीम बूअलीसेन का कहना है कि ७ माशे गंधाबिरोजा पानी के साथ लेने से कुछ दिनों में बवासीर मिट जाता है । इस नुसखे को उक्त हकीम साहेब अपना आजमूदा बतलाते हैं ।

सुजाक के अन्दर भी गन्धाबिरोजा अच्छा काम करता है । गन्धाबिरोजा को समान भाग भुने हुए और छिले हुए चनों के साथ पीसकर झड़ बेर के समान गोलियां बना लेना चाहिये । इसमें से एक गोली गोखरू के काढ़े के साथ खिलाने से यह सुजाक नष्ट कर देता है । गन्धाबिरोजा के तेल को २, ३ बूँद की मात्रा में दूध के साथ पिलाने से भी सुजाक में बहुत लाभ होता है ।

गन्धाबिरोजा फोड़े और जख्मों को दूर करने के वास्ते बहुत प्रभावशाली वस्तु है । पके हुए फोड़े, गाँठ और जख्मों पर इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है ।

यह वस्तु गरम प्रकृति वालों को गरमी के मौसम में और गरम जगह में नुकसानदायक होती है। यह तिल्ली और दिमाग को नुकसान पहुँचाती है। इसका दर्पनाशक बनफशा का तेल और कपूर है।

गंधाबिरोजा का तेल गरम और खुश्क है। यह योनि की सूजन और हिस्टीरिया में लाभदायक है। रुके हुए मासिक धर्म को यह जारी करता है। इसकी मालिश से सर्दी और बादी का दर्द आराम होता है। यह पुराने सुजाक, फोड़े, फुन्सी, गठिया, खुजली और कोढ़ में फायदा करता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गन्धाबिरोजा कफ निस्सारक, कृमिनाशक और उत्तेजक होता है। यह पुरानी वायु नलियों के प्रदाह और श्वास रोग में उपयोगी है। गर्भाशय के लिए यह पौष्टिक द्रव्य है।

गनफोड़ा

वर्णन—इसको धन बेल कहते हैं। यह एक रोइदगी है। इसमें शाखा नहीं होती। इसकी बेल अंगूर की बेल की तरह होती है। इसकी शाखाएँ लम्बी और जमीन पर फैली हुई होती हैं। इसकी डंडी पर तीन पत्ते और हर पत्ते में पांच कांगरे रहते हैं। इसका फूल लाल मिरच के फूल सरीखा होता है और फल अखरोट के फल के बराबर तिकोना होता है। इसके बीच काली मिरच के दानों की तरह होते हैं। यह पेड़ नरम जमीन में होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह गरम और खुश्क है। शरीर का शोधन करती है। इसके बीज गुर्दे की और मसाने की पथरी को दूर करते हैं, पागलपन को मिटाते हैं, कमर के दर्द में फायदेमन्द हैं, पेशाब जारी करते हैं, गर्भाशय का मुँह बन्द हो जाय तो उसे खोल देते हैं, कामेन्द्रिय को ताकत देते हैं और वीर्य को गाढ़ा करते हैं। इसके पत्ते शस्त्र के जखम पर बाँधे जाते हैं। अगर शरीर के अन्दर बन्दूक की गोली वगैरह भी रह गई हो तो उस पर इसके पत्तों का लेप करने से गोली खींची जा सकती है।

गबला

नाम—संस्कृत—प्रियंगर, प्रियंगू। बम्बई—गबला, गौला। सिन्ध—महालिब। फारसी—उर्दू—खेवटी। मराठी—गाबल, गहुँला। लेटिन—Prunus Mahalib (प्रूनस महालिब)।

यह वनस्पति बलूचिस्तान, पश्चिमी एशिया और यूरोप में पैदा होती है। यह एक बहुशाखी झाड़ी है इसकी शाखाएँ सीधी और फैलने वाली होती हैं। इसके बीज छोटे २ होते हैं जो बाजार में बिकते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते और शाखाएँ कृमिनाशक होती हैं। यह पसीने की बदबू को दूर करती है। इसका फल कड़वा और तीव्र गन्ध वाला होता है। यह मस्तिष्क को पुष्ट करता है। सीने को मजबूत बनाता है। यह वेदना नाशक और कामोद्दीपक होता है, फेफड़ों के लिए लाभदायक है तथा ऋतु श्राव नियामक, कृमिनाशक, श्वास और खुजली में लाभदायक और प्रदाह को दूर करनेवाला होता है।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट के मतानुसार इसका फल सर्प और बिच्छू के विष में लाभदायक होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के विष पर बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक, अग्निवर्धक और मूत्रल है। बिच्छू के जहर पर भी यह उपयोग में लिया जाता है। इसमें कोमेरिन (Coumarin) सेलेसाइलिक एसिड (Salicylic Acid) और एमिगडेलिन (Amygdalin) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

डाक्टर देसाई के मतानुसार यह पौष्टिक और वेदना नाशक होता है। कष्ट युक्त अजीर्ण, आमाशय के घाव और आमाशय के अर्बुद में यह दिया जाता है। इसकी मात्रा दो से पाँच रत्ती तक है।

गरजन

नाम—संस्कृत—यज्ञद्रुम। बंगाल—गरजन, श्वेत गरजन, बेतोसाल। बरमा—केनइनग्यू। सिंहाली—हीरागहा। मलयालम—बरूंगू। लेटिन—Dipterocarpus Alatus [डिप्टेरोकार्पस एलेटस]।

वर्णन—यह वृक्ष पूर्वी बंगाल, चिटगाँव, बरमा, आसाम, सिंगापुर, इत्यादि स्थानों में होता है। इसका तेल

मोलमीन और अण्डमान से जहाजों के द्वारा कलकत्ते में आता है और बिकता है। इसका झाड़ ४० फीट से लेकर १५० फीट तक ऊँचा होता है। इस पेड़ के तने में जमीन के नजदीक सुराख करके नीचे से आग जलाते हैं। आग की गरमी से उसमें से उसमें से एक प्रकार का तैल टपकता है। इस तैल का रंग भूरापन लिये हुये पीला होता है। इस तैल को भपके में रखकर उड़ाने से एक प्रकार का उड़नशील तैल प्राप्त होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसका फल खाँसी, जिगर की बीमारियाँ और पेशाब की रुकावट में लाभदायक है। इसके पत्तों को सिरके में जोश देकर उस जोशांदे से कुल्ले करने से दांत का दर्द मिट जाता है। इसके पत्तों और शाखों का काढ़ा पीने से फोड़े, फुन्सी, मेदे की कमजोरी और पेट की खराबी में लाभ होता है।

इसके तेल के सम्बन्ध में सन् १८७२ में नवीन खोज हुई, उसके अनुसार ऐसे कुष्ठ में जिसमें शरीर सुन्न पड़ जाता है, हाथ पैरों में जख्म हो जाते हैं, चमड़ा मोटा हो जाता है और शरीर पर गठाने सी पड़ जाती है—यह तैल अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस तेल को खाने और लगाने के दोनों कामों में लेते हैं। इसको व्यवहार करने की तरकीब इस प्रकार है, पहले रोगी को साबुन, मिट्टी और पानी से अच्छी तरह नहला कर साफ कर लेना चाहिये। इसके बाद गरजन के तेल और चूने के निथारे हुए पानी को समान भाग लेकर अच्छी तरह से एक दिल करके ४ ड्राम सबेरे और ४ ड्राम शाम को पिलाना चाहिये और मालिश के लिये तीन भाग चूने का निथरा पानी और एक भाग गरजन का तेल अच्छी तरह मिलाकर २ घंटे सुबह शाम शरीर पर खूब मालिश करके जखमों पर भी लगा देना चाहिये। इस प्रयोग को कुछ दिनों तक धैर्य्य के साथ करने से जखम अच्छे हो जाते हैं, सुन्नता जाती रहती है और गाँठें बिखर जाती हैं। रोगी तन्दुरुस्त और बलिष्ठ होता जाता है। [ख० अ०]

कम्बोडिया में इसकी छाल बलदायक और शोधक मानी जाती है और गठिया के अन्दर उपयोग में ली जाती है। इसके नये वृक्ष की छाल गठिया, संधिवात और यकृत के रोगों में लेप करने के काम में ली जाती है। इसका तेल व्रणों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी राल सुजाक में बाह्य प्रयोग के काम में आती है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार गरजन के तेल की क्रिया कोपेबा के तैल के समान ही होती है। यह श्लेष्मिक त्वचा को उत्तेजना देता है। खास कर मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मिक झिल्लियों को यह बहुत उत्तेजना देता है। इसका कफ निस्सारक गुण विश्वसनीय है। इसकी मात्रा आधे से लेकर एक ड्राम तक है जो दूध के साथ दिन में तीन बार दी जाती है।

पुराने सुजाक में गरजन का तेल कोपेबा आॅइल के बदले में दिया जा सकता है। त्वचा के रोग, रक्त पित्त और कफ रोगों में यह चूने के नितरे हुए पानी के साथ दिया जाता है।

उपयोग—**मूत्र कृच्छ्र**—नये पुराने मूत्र कृच्छ्र में इसके तेल की दस से लेकर तीस बूँदे दूध अथवा चावलों के मांड में मिलाकर देने से लाभ होता है।

दाद—इसके तेल में रस कपूर और गन्धक मिलाकर मर्दन करने से दाद मिटता है।

कुष्ठ—में इसका प्रयोग करने की विधि ऊपर लिख दी गई है।

त्वचा के अन्य रोग—वैसे तो त्वचा के सब रोगों में इस तेल के मर्दन करने से लाभ होता है। पर खास करके त्वचा के जिन लाल चट्ठों में सफेद छिलकों के पर्त जम जाते हैं। उसमें इस तेल की मालिश से बहुत लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गर्जन का तेल कोपेबा आइल का प्रतिनिधि है, यह कुष्ठ रोग में लाभ पहुँचाता है। इसमें इन्सेशियल आॅइल, रेजिन और क्राइस्ट एसिड [Cryst Acid] पाये जाते हैं।

गर्भंदा

नाम—**संस्कृत**—चन्द्रपुष्पा, चन्द्रि, चन्द्रिका, गर्भदा, मर्दभि चेत्रद्युति, महौषधि, नकुल, निशनेह पुष्पा, श्वेत कण्टकारि। **बंगाल**—रामबेंगन। **ब्रह्मा**—सिंकादि। **मलयालम**—अनच्छुन्ता। **तेगलाग**—तरबोलो। **तामील**—अनेइचुन्दि। **तेलगू**—मुलक। **तुलु**—गुलबादने। **उड़िया**—रामोबैंगनो। **लेटिन**—Solanum Ferox [सोलेनम फेरोक्स]।

वर्णन—यह वनस्पति आसाम, बर्मा, कोकन, पश्चिमीय घाट, सीलोन और चीन में होती है। इसका प्रकाण्ड मोटा और खुरदरा होता है। इसके ऊपर नाजुक कांटे रहते हैं। इसके पत्ते १५ से लगाकर २८ से० मी० तक लम्बे और १० से २० सेण्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसका फल गोल और रुएँदार होता है। इसके बीच कुछ खुरदरे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ और इसका फल गरम और तीक्ष्ण रहता है। यह भूख और रुचि को बढ़ाता है। वात कफ में फायदा पहुँचाता है। चक्षुरोग में लाभदायी है। यह गर्भवती स्त्री के गर्भ की शान्ति पहुँचाने वाला होता है। प्रायः इसके गुण कटेरी के गुणों से मिलते-जुलते हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पचांग का काढ़ा कई प्रकार के ज्वर से पीड़ित लोगों को दिया गया मगर इस वनस्पति में किसी प्रकार के ज्वर नाशक या ज्वर निवारक गुण नहीं पाये गये।

गरब

नाम—यूनानी—गरब। फारस—नाजवन।

वर्णन—यह एक बड़ा झाड़ होता है। इसके पत्ते और छाल सफेद होते हैं। इसलिये इसको सफेद झाड़ भी कहते हैं। इसके फल नहीं आते। इसके पत्ते सन के पत्ते की तरह होते हैं। जिन दिनों इस झाड़ पर कलियाँ आती हैं उन दिनों इसके तने और डालियों पर एक नोकदार औजार से चीरे लगा देते हैं जिससे उस स्थान पर इसका गोंद जमा हो जाता है। उस गोंद को इकट्ठा कर लिया जाता है। औषधि के काम में इसके पत्ते, छाल और गोंद ही विशेष रूप से उपयोग में लिये जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी राख को अथवा इसके गोंद को सिरके में मिलाकर बवासीर के मस्सों पर लगाने से मस्से कट जाते हैं। फोड़ों पर भी इस की छाल या गोंद का लेप करने से फायदा होता है। इसकी जड़ की छाल बालों पर खिजाब करने के काम में आती है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर जखम या कटे हुए स्थान पर लगाने से कैसा ही खराब जखम हो लाभ होता है। इसके सूखे पत्त पीसकर घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। इसके काढ़े से सिर धोने से सिर का गंज में लाभ होता है। इसके पत्तों का लेप करने से गरमी से पैदा हुआ सिर दर्द मिट जाता है। इसके रस को आँख में टपकाने से आँख के जाले और धुन्ध में फायदा होता है। इसके पत्तों के अथवा जड़ के रस को गुलाब के तेल के साथ जोश देकर कान में टपकाने से कान का दर्द और कान का पीब मिट जाता है। इसके रस को अथवा छाल के काढ़े को पीने से मुँह के रास्ते से खून का आना बन्द हो जाता है। इसके पत्तों को काली मिर्च के साथ पीसकर पीने से मरोड़ी के दस्तों में लाभ होता है। इसकी छाल को पानी के साथ पीने से गर्भ का रहना रुक जाता है।

यह औषधि गुर्दे के लिये हानिकारक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये बबूल के गोंद का उपयोग करना चाहिये। (ख० अ०)

गलैनी

नाम—नेपाल—गलैनी। नागोरी—हुरम। तेलगू—पेदपेयगिलाकू। लेटिन—Leea Robasta [लीआ रोबेस्टा]।

वर्णन—यह वनस्पति कोकन, नेपाल, पश्चिमीय घाट और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है। यह एक झाड़ीदार पौधा है। इसकी शाखाएँ रुएँदार होती हैं। इसके फूल हरापन लिये सफेद होते हैं। इसका फल पकने पर काला हो जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका लेप वेदनानाशक औषधि के बतौर किया जाता है और इसका अन्तःप्रयोग अतिसार को नष्ट करने के लिये किया जाता है।

गाजर

नाम—संस्कृत—गाजर ग्रंथिमूलि, ग्रंजन, नारंगा, पिंडमूलि, पिंडिका, शिखाकन्द, शिखामूलि, स्वादमूलि।

हिन्दी—गाजर। मराठी—गाजर। गुजराती—गाजर। बंगाली—गागर, गाजर। फारसी—गाजर। उर्दू—गाजर। तेलगू—गाजर, गाजार, पचमूलंगी। तामील—गजरकिलंग। काश्मीर—मोरमुज, बोलमुज। लेटिन—Daucus Carota [डौकस केरोटा]।

वर्णन—गाजर प्रायः सारे भारतवर्ष में शाक और मिठाई बनाने के काम में आती है। इसको प्रायः सब लोग जानते हैं इसलिये इसके विशेष वर्णन की जरूरत नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—गाजरं मधुरं तीक्ष्णं, तिक्तोष्णं दीपनं लघु।
संग्राही रक्त पित्तार्शो, ग्रहणी कफ वात जित्॥

भाव प्रकाश के मतानुसार गाजर मधुर, तीक्ष्ण, कड़वी गरम, अग्निवर्धक, हलकी, मलरोधक तथा रक्त पित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ और वात को नाश करती है।

गाजरं मधुरं रुच्यं, किंचित् कटु कफापहम्।
आधमान् कृमि शूलघ्नं, दाह पित्त तृषापहम्॥

राज निघंटु के मतानुसार गाजर मीठी, रुचिकारक, किंचित् चरपरी, आफरे को दूर करने वाली तथा कृमि, शूल, दाह, पित्त और तृषा को दूर करने वाली है।

जंगली गाजर चरपरी, गरम, कफ वात रोगनाशक, रुचिकारक, अग्निवर्धक, हृदय को हितकारी और कुष्ठ, बवासीर, शूल, जलन, दमा और हिचकी में फायदा पहुँचाती है। इसके खाने से मुँह में बदबू का आना मिट जाता है।

इसके बीज स्नायु मण्डल को पुष्ट करते हैं। इसके पत्तों और बीजों का काढ़ा प्रसूति के समय पिलाने से गर्भाशय को उत्तेजना मिलती है।

पंजाब में इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं। लनको गर्भाशय की पीड़ा में भी देते हैं।

कोकण में गाजर और नमक का पुल्टिस बनाकर चर्म रोगों पर बाँधा जाता है। इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं।

इसके फल पुराने अतिसार में मुफीद हैं। ये मूत्रल भी हैं। इसकी जड़ों का पुल्टिस घाव से पीब आना बन्द करता है।

यूरोप में गाजर का काढ़ा पीलिया रोग की एक प्रचलित दवा मानी जाती है। गाजर को कसनी पर कस कर जलन और दुष्ट व्रण पर बाँधते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले या दूसरे दर्जे में गरम और तर है। यह पौष्टिक, कामोत्तेजक, कफ निस्सारक, मूत्रल और अग्निवर्धक होती है। खाँसी और सीने के दर्द में यह फायदेमन्द है। पेशाब और दस्त को साफ लाती है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ कर निकाल देती है। शरीर को मोटा करती है। जलोदर में लाभदायक है। इसका शीत निर्यास गरमी से हुई दिल की धड़कन (Palpitation of the Heart) में बहुत लाभ करता है।

गाजर को भूनकर उसको छीलकर एक रात भर खुली हवा में रख कर प्रातःकाल शकर और गुलाब के अर्क के साथ खाने से हृदय की धड़कन बन्द होकर हृदय को ताकत मिलती है। इसका शहद में तैयार किया हुआ मुरब्बा अत्यन्त कामोत्तेजक है। यह जालोदर में भी फायदा पहुँचाता है।

जंगली गाजर बास्तानी गाजर से अधिक प्रभावशाली होती है। यह कामोद्दीपक, मूत्रल, मासिक धर्म को साफ करने वाली होती है। यह जलोदर में भी लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों और जड़ को पकाकर लेप करने से शरीर में जमा हुआ खून बिखर जाता है। इसकी जड़ को पीसकर उसमें कपड़े को तर करके गर्भाशय में रखने से गर्भाशय साफ होता है।

इसके बीज कामोद्दीपक, मूत्रल, गर्भाशय को साफ करने वाले, सीने और कमर के दर्द में लाभदायक और गुर्दे तथा मसाने की पथरी को तोड़ने वाले होते हैं।

गाजर आमाशय और गले को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये राई, जीरा, गुड़ और अनीसून का प्रयोग करना चाहिये। [ख० अ०]।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले होते हैं। गुर्दे और आँतों की बीमारी में ये लाभदायक हैं।

उपयोग—आँतों के कीड़े—कच्ची गाजर के खिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

फोड़े—बिगड़े हुए फोड़ों पर गाजर का पुल्टिस बाँधने से वे आराम होते हैं।

प्रसूति कष्ट—बच्चा पैदा होने के समय की अधिक पीड़ा मिटाने के लिये गाजर के बीज और उसके पत्तों का काढ़ा पिलाया जाता है। इसके बीजों की धूनी देने से भी कष्टी हुई स्त्री को सुख से प्रसव हो जाता है।

पित्त शोथ—गाजर के पुल्टिस में नमक डालकर बाँधने से पित्त की वह सूजन मिटती है जिस पर फुन्सियाँ हो जाती हैं।

आग से जलना—कच्ची गाजर को पीसकर अग्नि से जले हुए स्थान पर लेप करने से दाह मिटती है।

कमजोरी—गाजर का हलवा बनाकर खिलाने से कमजोरी मिट कर पुरुषार्थ बढ़ता है।

तिल्ली—गाजर का अचार बनाकर खिलाने से तिल्ली कम हो जाती है।

आधा शीशी—गाजर के पत्तों पर घी चुपड़ कर गरम करके उनका रस निकाल कर २-३ बूँद नाक में और २-३ बूँद कान में टपकाने से कुछ छींके आकर आधा शीशी बन्द हो जाती है।

गाजा व भाँग

नाम—संस्कृत—अजया, त्रैलोक्यविजया, जया, गांजा, गंजिका, हर्षिणि ज्ञानवल्लिका, मातुली, मोहिनी, शिवप्रिया, उन्मत्तिनी, धूर्तपत्नी, कामाग्नि, वीरपत्री, शिवा। हिन्दी—गाँजा भाँग, चरस। बंगाल—सिद्धी, भांग गांजा। मराठी—भांग, गांजा। गुजराती—भांग, गांजा। अरबी—किन्नाव, कनाव। फारसी—भांग, तामिल—भांगी, गांजा। तेलगू—बंगियाकू, गंजकेट्टू। लेटिन—Cannabis Sativa [केनाबिस सेटिवा] C. Indica [केनाबिस इण्डिका]।

वर्णन—यह एक प्रकार का क्षुप होता है। इसके पत्ते नीम के पत्तों के समान लम्बे और कंगूरेदार होते हैं। पर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसके प्रत्येक डण्ठल पर ६, ५ अथवा ७ पत्ते होते हैं। इसके पौधे नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। नर पौधे के पत्तों से भांग तैयार की जाती है और मादा जाति के पत्तों से गांजे की उत्पत्ति होती है। चरस भी इस पौधे से पायी जाने वाली एक प्रकार की राल है जो काले रंग की होती है। इस पौधे की छोटी-छोटी कोमल डालियों पर ओस गिरने के दिनों में यह पदार्थ बन जाता है। इसको खुरचकर इकठ्ठा किया जाता है। यह अत्यन्त नशीली होती है। इस पौधे के बीज बायबिडंग के छोटे दानों की तरह होते है। इन बीजों में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। १०० तोले बीजों में से २५ से ३४ तोले तक तेल निकलता है। इसका रङ्ग पहले भूरा और हवा लगने पर हरा हो जाता है। भंग का अर्क खींचने से उसमें से भी एक प्रकार का तेल निकलता है जो अर्क पर तैरता रहता है। उसमें भी भंग के समान ही सुगंध आती है। उसका रंग कहरवे की तरह होता है।

उत्पत्ति और प्रचार स्थान—भंग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है।

जाता मन्दरमन्थनाज्जलनिधौ, पीयूषरूपा पुरा
त्रैलोक्ये विजयप्रदेति विजया, श्रीदेवराजप्रिया।
लोकानां हितकाम्यया क्षितितले, प्राप्ता नरैः कामदा
सर्वातंकविनाशहर्षजननी, वै सेविता सर्वदा ॥

अर्थात्—पहले समय में मन्दराचल पर्वत से समुद्र मथा गया था, तब उस समय अमृत रूप से भंग की उत्पत्ति हुई। त्रिलोक की विजय देने वाली होने से इसका नाम विजया हुआ, यह देवराज इन्द्र को प्यारी है। हित की अभिलाषा

करने से पृथ्वी पर मनुष्यों को प्राप्त होती है। इसको जल के साथ मिलाकर पीने से काम अत्यन्त प्रबल होता है, सर्व प्रकार के रोग, शोक दूर होते हैं और अतुल आनन्द प्राप्त होता है।

इससे पता लगता है कि भांग बहुत प्राचीन काल से भारतीय चिकित्सा शास्त्र की जानकारी में रही है। एशिया अफ्रीका के देशों में भी बहुत प्राचीन समय से इसको नशे और औषधि के उपयोग में लेते आ रहे हैं। चीनी लोग भी इससे ईसा की छठी शताब्दी से परिचित हैं। १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में पाश्चात्य चिकित्सक लोगों में भी इसके गुणों की जानकारी पैदा हुई और उन्होंने इसके वेदनाशून्यता पैदा करने वाले तथा निद्रा लाने वाले गुणों की प्रशंसा की, जिसके फलस्वरूप इंग्लैंड और अमेरिका के फरमाकोपिया में यह औषधि सम्मत मानी गई। वैसे यह वनस्पति संसार के कई भागों में पाई जाती है लेकिन भारतवर्ष में इसका जितना उपयोग किया जाता है उतना संसार के किसी दूसरे देश में नहीं किया जाता। औषधि उपयोग के अतिरिक्त गर्मी की मौसम में और शादी इत्यादि मांगलिक कार्यों में भांग को घोट कर पीने का रिवाज भी यहाँ पर बहुत है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गांजा पाचक, प्यास लगाने वाला, बलकारक, कामोद्दीपक, चित्त को चंचल करने वाला, निद्राजनक, गर्भ को गिराने वाला, वेदनानाशक, आक्षेप को दूर करने वाला और नशा पैदा करने वाला है।

भांग कफनाशक, अग्नि को दीपन करने वाली, रुचिवर्द्धक, मल को रोकने वाली, पाचक, हलकी, कामोद्दीपक, निद्राजनक, नशीली तथा वात को जीतने वाली है।

एक दूसरे ग्रन्थकार के मतानुसार भांग तीक्ष्ण, उष्ण, मोहकारक, कुष्ठनाशक, बलवर्द्धक, मेधाजनक, अग्निकारक, कफनाशक तथा रसायन है।

आयुर्वेद के अन्दर भंग और भंग के बीजों के अतिरिक्त इसके और किसी अङ्ग का व्यवहार नहीं देखा जाता। कहीं कहीं एकाध प्रयोग में गाँजे का उपयोग देखने को मिलता है। भांग विशेष कर स्तम्भन करने वाली औषधियों में तथा उदर रोग सम्बन्धी औषधियों में और बवासीर की औषधियों में ली जाती है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई अपने औषधिसंग्रह नामक ग्रन्थ में गाँजे का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"गाँजा उत्तेजक, वेदनानाशक, शांतिकारक, क्षुधावर्धक, पित्तद्रावी, मूत्रजनक, आह्लादकारक, कफनाशक, संकोच विकास प्रतिबन्धक, गर्भाशय को संकुचित करने वाला, बलकारक, वाजीकरण और त्वचा में शून्यता पैदा करने वाला होता है। इसकी भरपूर मात्रा लेने से ज्ञानग्राहक शक्ति कम होती है। नाड़ी जल्दी जल्दी चलती है और पीने वाला गहरी नींद में सो जाता है, उठने पर उसे बहुत भूख लगती है। अफीम की निद्रा से जगने पर जैसा आलस्य पैदा होता है वैसा इससे नहीं होता। अफीम की तरह यह कब्जियत भी पैदा नहीं करता।"

"गाँजे का वेदनानाशक धर्म अफीम के समान ही है। इससे पेशाब का प्रमाण बढ़ता है। इसका वाजीकरण और कामोत्तेजक धर्म भी स्पष्ट मालूम होता है। इसके सेवन से भूख बहुत लगती है, पित्त का संचालन अधिक होता है, पाचन क्रिया दुरुस्त रहती है, आँतों में कफ की कमी होती है जिससे दस्त बँधा हुआ लगता है मगर कब्जियत नहीं होती। इसके सेवन से त्वचा की ज्ञान ग्राहक शक्ति इतनी कम हो जाती है कि उसमें साधारण छोटी चीर फाड़ और दाँतों का गिराना बिना तकलीफ के किया जा सकता है।"

"गाँजा गर्भाशय को उत्तेजन देकर उसकी संकोचन क्रिया बढ़ाता है। ताँबे की तरह यह भी गर्भाशय की शक्ति को बढ़ाता है मगर वह शक्ति अस्थाई रहती है।"

"शुद्ध गाँजा अथवा भांग आमाशय की पीड़ा, अजीर्ण, संग्रहणी और आमातिसार में लाभ पहुँचाता है। भाँग

नोट—एक कवि ने भंग के गुणों का वर्णन अपनी कविता में इस प्रकार किया है—

मिर्च, मसाला, सौंफ, कासनी मिलाय भंग पिये ते अनेक रंग अंग को उबारती।
जारती जलोदर, कठोदर, भगंदर को सन्निपात, बवासीर बावन विदारती॥
सुकवि शिवराम दाद, खाज को खराब करे क्षयी छींक छंजन नासूर को निकारती।
पीनस प्रमेह बीस, बावन तरह की पीर कमर के दरद को गरद कर डारती॥१॥

से इन रोगों की पीड़ा कम होती है, बहता हुआ रक्त बन्द होता है, भूख बढ़ती है, पित्त का संचालन ठीक होता है और पाचन क्रिया ठीक होती है। हैजे में भी यह औषधि उत्तम साबित हुई है। इससे वमन रुकती है, दस्त बन्द होते हैं, नाड़ी सुधरती है, शरीर में गर्मी और उत्तेजना पैदा होती है मगर इस औषधि को रोग के प्रारम्भ से ही देना चाहिये। रेचक द्रव्य अर्थात् जुलाब की चीजों के साथ भांग मिलाकर देने से पेट में काट और मरोड़ी नहीं होती है।"

"सूजे हुये और दुखदायक खूनी बवासीर में गाँजे को खिलाने से और हलदी, प्याज तथा तिल के साथ पीसकर लेप करने से तथा भाँग की धूनी देने से अच्छा लाभ होता है।"

"सूजाक में गाँजे को देने से दो प्रकार के लाभ होते हैं। एक तो पेशाब साफ होकर घाव धुल जाता है और दूसरे पीड़ा की कमी हो जाती है।"

"गर्भाशय के संकोचन के लिये भी गाँजा एक उत्तम औषधि है। संकोचन की वजह से होनेवाली वेदना भी इससे कम होती है। इसलिये गर्भाशय की कमजोरी की वजह से जिन स्त्रियों को प्रसूति के समय में बहुत समय लगता है उनको यह औषधि देने से गर्भाशय को ताकत मिल कर पीड़ा बढ़ कर फौरन प्रसव हो जाता है। गर्भपात के समय भी यह वस्तु अच्छा काम करती है। मासिक धर्म की अधिकता और कष्टप्रद मासिक धर्म में भी यह गुणकारी है।"

"गाँजा एक प्रभावशाली वाजीकरण वस्तु है। इससे पुरुषों की कामेंद्रियमें बहुत स्फूर्ति आती है। वह रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजन देकर काम-वासना में आह्लाद पूर्ण उत्तेजना पैदा करता है जिससे कामेंद्रिय में जोर से अधिक रक्त का प्रवाह होता है। इसी प्रकार ज्ञानग्राहक शक्ति की कमी हो जाने से अधिक समय तक सम्भोग करने पर भी शुक्रपात नहीं होता है। इससे इसकी गणना स्तम्भक औषधियों में भी प्रथम श्रेणी में की जाती है।"

"मलेरिया ज्वर और जीर्ण ज्वर में भी गाँजा दूसरी प्रभावशाली औषधियों के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचाता है। इससे रोगी की भूख बढ़ती है, ताप के जोर की कमी होती है, ज्वर उतरने पर थकावट अनुभव नहीं होती और रक्ताभिसरण क्रिया सुधरती है। बारम्बार सरदी होने की आदत जिन लोगों को पड़ जाती है उनके लिये भी गाँजा उपयोगी वस्तु है।"

"सूखी खाँसी और सूखे दमें में गाँजा अच्छा लाभ पहुँचाता है। इन रोगों में इसका धूम्रपान करने से अथवा पेट में खाने से अच्छा लाभ होता है।"

"त्वचा अथवा चर्म रोग में जैसे—खाज खुजली इत्यादि में गाँजे के लेप से लाभ होता है। कान के दर्द में भी इसका रस डालने से फायदा होता है।"

"वेदना को रोकने और निद्रा लाने की शक्ति गाँजे में अफीम की अपेक्षा कम है लेकिन इसके अन्तिम परिणाम अफीम की तरह हानिकारक नहीं होते। जिन स्थानों पर अफीम का प्रयोग नहीं किया जा सकता, उन स्थानों पर गाँजे का प्रयोग किया जाता है।"

"मेदे की खराबी से उत्पन्न हुए रोगों में गाँजे का अच्छा प्रयोग होता है। निद्रानाश, खेदप्रवृत्ति इत्यादि रोगों में यह अच्छा काम देता है। यह वेदना को कम कर देता है मगर रोग की जड़ को नष्ट नहीं करता। रोग की जड़ को नष्ट करने के लिए इसके साथ दूसरी रोग नाशक औषधियाँ देना चाहिये।

"मज्जा तन्तु की सूजन में गांजे को पारे के साथ देना चाहिये। मज्जातन्तु की वेदना में इसको संखिया और लोहे के साथ देना चाहिये। आधाशीशी और कपाल शूल में इसको संखिया के साथ देने से चमत्कारिक लाभ होता है। धनुर्वात में भी यह एक उत्तम औषधि साबित हो चुकी है।"

भाँग और धनुस्तम्भ रोग—आधुनिक नवीन खोजों में भंग के अन्दर एक नवीन और अद्भुत गुण का पता लगा है। धनुस्तम्भ रोग [Tetanus] की यह एक उत्तम औषधि साबित हुई है। डॉक्टर कास्टगिर ने भंग का धुँआ पिलाकर धनुस्तम्भ के कई रोगियों को आराम किया था। ७ रत्ती भंग थोड़ी सी तमाकू के साथ हुक्के में

भरकर रोगी को पिलाया जिससे आक्षेप की गति कम होने लगी और कई बार इसका धुआँ पिलाने से रोगी आराम हो गये।

बम्बई के डाक्टर जी० सी० लुकास ने परीक्षा करके देखा है कि धनुस्तम्भ के रोग में भंग का धुआँ पीने से आक्षेप क्रमशः थोड़ी देर तक ठहरता है। धीरे-धीरे आक्षेप बहुत समय के बाद हुआ करता है। आक्षेप का जोर भी धीरे-धीरे कम हो जाता है। आक्षेप से ग्रसित रोगी को अधिक कमजोरी नहीं आती और बारम्बार व्यवहार करने से आक्षेप एक दम बन्द हो जाता है।

डॉक्टर ओशागनसी ने भी धनुस्तम्भ और हैजे में भाँग का प्रयोग करके इसको इन रोगों की श्रेष्ठ औषधि माना है।

डायमॉक ने भी धनुस्तम्भ के बहुत से रोगियों को केवल भंग से आराम किया और इस बात के निर्णय पर पहुँचे कि धनुस्तम्भ के लिए यह एक उत्तम औषधि है। विशूचिका रोग में यह अफीम के समान काम करती है।

रासायनिक विश्लेषण—सबसे पहले इस वस्तु के रासायनिक विश्लेषण पर सन् १८९६ में बुडस्पिव्हे और ईस्टर फील्ड ने अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने इस वनस्पति में १·५ प्रतिशत टरपेन (Terpene) १.७५ प्रतिशत सेस्क्वी टरपेन (Sesqui terpene) थोड़ी मात्रा में पेरेफिन हाइड्रो कारबन (Paraffin Hydrocarbon) और ३३ प्रतिशत एक विषैला लाल तेल या राल का पृथक्करण किया। यह लाल तेल पानी में नहीं घुलता है मगर अलकोहल और इथर में सरलता से घुल सकता है। इसमें Monoacetya और Monobenzoyi नामक तत्त्व पाये जाते हैं जिससे Hydroxyl की उपस्थिति इसमें सिद्ध होती है। इसी से इसका नाम केनेबेनाल रक्खा गया है। यही इसमें पाया जाने वाला मुखय तत्त्व है। सन् १८९७ में मार्शल ने अपने खुद के ऊपर और दूसरों पर शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से इसका अध्ययन किया। सन् १८९९ में उन्होंने बतलाया कि इसमें दो तत्त्व प्रधान रूप से पाये जाते हैं, इसमें से मुख्य तो केनेबेनाल है और एक दूसरा है जो वजन में हलका होता है। सन् १९३१ में केहन ने इसके अनुसन्धान किये और उन्होंने इसमें से केनेबेनाल और क्रूड केनेबेनाल नामक दो तत्त्व प्राप्त किये जिसमें से क्रूड केनेबेनाल स्थायी तत्त्व है।

भारतवर्ष के हेम्पड्रग्ज कमीशन ने सन् १८९३–९४ में यह निर्णय किया कि इस वनस्पति का साधारण उपयोग कोई विशेष शारीरिक हानि नहीं पहुँचाता। यह कमीशन इस निर्णय पर भी पहुँच चुका है कि इसके साधारण उपयोग से मस्तिष्क पर भी कोई खराब असर नहीं होता। यह विश्वास कि इसके उपयोग से आदमी पागल हो जाता है कमीशन को न्याय संगत नहीं मालूम हुआ। कमीशन की यह भी धारणा है कि इसके साधारण उपयोग से चरित्र का पतन भी नहीं होता। इस प्रकार का निर्णय कर देने के लिए उसके पास कोई उचित प्रमाण नहीं है।

हां, इसके अधिक उपयोग से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक हानि होती है। उसमें चरित्रहीनता और कमजोरी आती जाती है, उसका आत्मसम्मान नष्ट होता जाता है और उसका नैतिक पतन भी जाता है। वह इसका आदी हो जाता है और इसका व्यसन उसे पड़ जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। यह नशा पैदा करता है, दिमाग और तमाम शरीर में खुश्की लाता है। गाँजे को चिलम में रखकर धुँआ खींचने से जल्दी नशा आ जाता है। इसको अरंडी के तेल में पीसकर मूत्रेन्द्रिय पर लेप करने से मूत्रेन्द्रिय की ताकत बढ़ती है और उसका टेढ़ापन दूर होता है। इसका सत खांसी के जोर को रोकने के लिए बहुत उत्तम वस्तु है। धनुस्तम्भ [Tetanus] की बीमारी में और पागल कुत्ते के जहर में भी यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से नींद आती है और दर्द दूर हो जाता है। दमें की बीमारी में भी यह दवा फायदा करती है।

यह पौष्टिक, कामोद्दीपक, अतिसार निवारक और नशा लाने वाली है। इसका तेल कान के दर्द के लिए मुफीद है। यह जलार्बुद, प्रदाह और बवासीर में फायदा पहुँचाती है। इसके बीच पेट के आफरे को दूर करने वाले, संकोचक और कामोद्दीपक होते हैं।

हानि—गांजा और भंग यह दोनों नशीली वस्तुएँ हैं। थोड़ी मात्रा में जहाँ ये कई प्रकार के फायदे दिखलाती है वहाँ अधिक मात्रा में अनेकों भयंकर नुकसान भी करती है। खास करके हृदय पर इसका असर बहुत खराब होता है। इसलिए जिनका हृदय कमजोर हो ऐसे लोगों को इसके सेवन से बचना चाहिये। इसी प्रकार अधिक मात्रा में सेवन करने से यह मस्तिष्क पर भी खराब असर डालती हैं। भंग को थोड़ी मात्रा में सेवन करने से मस्तिष्क को जरूर उत्तेजना मिलती है और मनुष्य की विचारशक्ति पैनी हो जाती है मगर अधिक मात्रा में सेवन करने से इसका विचार शक्ति पर अवसादक असर पड़ने लगता है। इसी प्रकार इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से वमन, खुश्की, घबराहट, चक्कर आना इत्यादि उपद्रव भी पैदा हो जाते हैं। इसलिए इसको अधिक मात्रा में कभी सेवन नहीं करना चाहिये।

कामोद्दीपन और स्तम्भन के लिए भी इसको अधिक मात्रा में सेवन करना बहुत बड़ी भूल है। यह जरूर है कि इसके सेवन से कुछ दिनों तक मनुष्य को काम वासना के सम्बन्ध में बहुत आह्लाद, उत्तेजना और स्तम्भन का अनुभव होता है मगर इसका अन्तिम परिणाम बुरा होता है। अस्वाभाविक रूप से स्तम्भन और उत्तेजन होने से यह मनुष्य के वीर्य को सुखा देती है जिससे मनुष्य की शक्तियाँ समय से पहिले ही क्षीण हो जाती हैं और समय से पहिले ही उसकी कामशक्ति भी जर्जर हो जाती है।

लेखक, वकील, जौहरी इत्यादि ऐसे लोग जिनको दिन-रात मस्तिष्क और विचारशक्ति से काम लेना पड़ता है यदि एक दो रत्ती की मात्रा में भंग को बादाम इत्यादि उसकी दर्पनाशक औषधियों के साथ लेवें तो उनकी विचारशक्ति को उत्तेजना मिलती है। मगर अधिक मात्रा में यह सभी के लिये हानिकारक है। सबसे बड़ा नुकसान इससे यह होता है कि मनुष्य को इसका व्यसन हो जाता है और कुछ दिनों में इसके बिना उसको चैन नहीं पड़ता।

दर्पनाशक—इसके विषैले लक्षणों के प्रकट होने पर इसके दर्प को नाश करने के लिये मलाई, दही, नारंगी का रस, अनार का रस, अमरूद [जामफल] या अमरूद के पत्तों का रस देते हैं जिनसे शांति मिलती है।

उपयोग—बाँइठे—भंग के पत्तों को १। माशे की मात्रा में खाने से शरीर के बाँयठे और पीड़ा मिटती है और मूत्र वृद्धि होती।

आमातिसार—[१] सौंफ के अर्क के साथ भंग की फक्की देने से तीव्र आमातिसार मिटता है।

[२] सेकी हुई भंग को शहद के साथ चटाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

नेत्रपीड़ा—इसके [भंग के] ताजा पत्तों की लुगदी को गरम करके आँखों पर बांधने से नेत्रपीड़ा मिटती है।

बवासीर—इसके पत्तों को दूध में पकाकर अर्श पर बांधने से बवासीर की पीड़ा मिटती है।

गठिया—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

उदरशूल—भंग और कालीमिरच के चूर्ण को गुड़ में गोली बनाकर देने से पेट की शूल मिटती है।

निद्रानाश—भंग के सेवन से निद्रानाश मिटकर गहरी नींद आती है। जिन रोगों में अफीम से नींद नहीं आती है, उसमें भंग का प्रयोग बहुत अच्छा है। क्योंकि इसके पीने से कब्जियत और मस्तक पीड़ा नहीं होती है।

सिरदर्द—कफ की मस्तक पीड़ा को मिटाने के लिये दो रत्ती की मात्रा में भँग का सेवन करना चाहिये।

खांसी—इसके (भंग के) प्रयोग से कुत्ताखाँसी, श्वास, मूत्राघात और कष्टप्रद मासिक धर्म में बहुत लाभ होता है।

भूख की कमी—काली मिर्च और भंग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से भूख बढ़ती है।

वीर्य की कमजोरी—भंग का दूसरी पौष्टिक औषधियों के साथ पाक बनाकर खाने से पुरुषार्थ बढ़ता है और कामोद्दीपन होता है।

श्वास—श्वास और धनुस्तम्भ को मिटाने के लिये घी में सेकी हुई १ रत्ती भाँग को काली मिरच और मिश्री में मिलाकर देना चाहिये।

आवेश रोग—स्त्रियों के आवेश रोग में भंग का आधी रत्ती सूखासार हींग के साथ देने से बहुत लाभ होता है। अगर सूखासार न मिले तो दो रत्ती भङ्ग हो हींग के साथ देना चाहिये।

अण्डकोष की सूजन—इसके गीले पत्तों का पुल्टिस अण्डकोष पर बांधने से और इसके काढ़े का बफारा देने से अण्डकोष की सूजन मिटती है।

शीत ज्वर—एक माशे भर भँग को दो माशे गुड़ में मिलाकर उसकी ४ गोलियाँ बनाकर जाड़ा [ठण्ढ] चढ़ने से पहले दो-दो घण्टे के अन्तर से चारों गोलियां दे देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्र—भंग और खीराककड़ी के मगज ठण्ढाई की तरह पीस कर घोट छान कर पीने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

कान की पीड़ा—भंग के स्वरस को कान में डालने से कान के कीड़े मरते हैं और कान की पीड़ा मिटती है।

इसकी मात्रा औषधि के रूप में २ से लेकर ४ रत्ती तक की है। पीने वाले इसको तीन माशे से लेकर १ तोले तक और इससे भी अधिक मात्रा में पीते हैं। मगर वह बहुत हानिकारक है और उससे जहरीला असर पैदा होता है।

बनावटें—मदनानन्द मोदक—सोंठ, मिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आमला, धनिया, कचूर, कूट, काकड़ा, सिंगी, जायफल, सेंधानोन, मेथी, नागकेशर, सफेद जीरा, स्याहजीरा, तालीसपत्र ये सत्रह चीजें दो २ तोला, बीजों समेत धुली हुई भंग ३४ तोला, मिश्री ६८ तोला, शहद २० तोला।

सोंठ से तालीसपत्र तक की दवाओं को कूट पीसकर छान लो और जरा घी में भून लो। भाँग को खूब धोकर घी में भून लो, जलने न पावे। फिर भांग और ऊपर के चूर्ण को खूब मिला लो, इसके बाद घी मिश्री और शहद डालकर खूब सानो। जब एक दिल हो जाय तब सवा २ तोले के लड्डू बना लो। चीनी या काँच के साफ बरतन में इलायची, तेजपात और कपूर को अन्दाज से पीस कर थोड़ा-सा नीचे बिखेर दो और उस पर लड्डू जमा कर ऊपर से फिर इस चूर्ण को छिड़क दो।

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास लिखते हैं कि इनमें से सवेरे शाम या एक ही समय एक लड्डू खाकर दूध पीने से बुड्ढा भी जवान हो जाता है। इतना बल पुरुषार्थ बढ़ता है कि लिख नहीं सकते।

उपरोक्त पाक को बाबू हरिदास अपना अनुभूत योग बतलाते हैं। इन लड्डुओं को वे आमवात, संग्रहणी और वातकफ के विकारों में लाभदायक मानते हैं।

महापौष्टिक योग—कस्तूरी ४ माशे, अम्बर ४ माशे, मकरध्वज ४ माशे, सोने के वर्क ८ माशे, चाँदी के वर्क १ तोला, मोती की भस्म १ तोला, बंग भस्म १ तोला, लोहा भस्म १ तोला, मूँगा भस्म १ तोला, जायफल १ तोला, दालचीनी १ तोला, अकरकरा १ तोला, केशर १ तोला, भीमसेनी कपूर १ तोला, कूट १ तोला, तेजपात १ तोला, नागकेशर १ तोला, जावित्री १ तोला, सोंठ १ तोला, बंसलोचन १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, गिलोय का सत १ तोला, सफेद मूसली ५ तोला, शुद्ध भांग का घी २ तोला, देशी खांड २॥ पाव।

पहले सोने के वर्क और चाँदी के वर्क, कस्तूरी, अम्बर और मकरध्वज इन सबको नागर बेल के पान के रस में अलग-अलग खरल कर लेना चाहिये। दूसरी तरफ दूसरी औषधियों को पीस कर कपड़े से छान करके रख लेना चाहिये। फिर शक्कर की चासनी अवलेह के समान बनाकर इन सब चीजों को और भांग के घी को अच्छी तरह से मिलाकर घी के चिकने बर्तन में या अमृतवान में भर देना चाहिये।

इसमें से छः २ माशे अवलेह सवेरे शाम गाय के ताजे दूध के साथ सेवन करने से बल बढ़ता है, कामोद्दीपन होता है। वीर्य की वृद्धि होती है। खाँसी, श्वास, क्षय, प्रमेह, नपुंसकता आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर में अपूर्व लावण्य, कांति और स्फूर्ति पैदा होती है। जो भी खाया जाता है सहज में पच जाता है। भूख खूब लगती है। मगर यह बहुत कीमती है। इसलिये केवल अमीर ही इसका फायदा उठा सकते हैं।

गागालस

नाम—यूनानी—गागालस।

वर्णन—यह एक रोईदगी होती है। इसके पत्ते साफ और नरम होते हैं। इनको हाथ पर मलने से बदबू पैदा होती है। ये स्वाद में कड़वे और जलन पैदा करनेवाले होते हैं। इसका फूल छोटा और नीला होता है। इसका आकार छत्री के आकार की तरह होता है। इसका फल मकोय के फल की तरह होता है। यह पकने पर काला पड़ जाता है। इसमें रस भरा हुआ रहता है। इसकी जड़ सफेद और खोखली होती है। यह गर्मी के मौसम में वीरान जगह और बागों के आसपास पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। इसके लेप से सूजन बिखर जाती है। कान के पीछे की सूजन में इसके पत्तों को सिरके में पीस कर लेप करने से लाभ होता है। इसकी शाखा को कच्ची हालत में खाने से पुरानी खाँसी, हर तरह का दमा और सीने का दर्द दूर होता है। इन रोगों में यह वनस्पति बहुत अच्छा काम करती है। पथरी भी इसके सेवन से टूट कर निकल जाती है। मासिक धर्म और पेशाब को भी यह औषधि नियमित करती है। कण्ठमाला, खुजली और दूसरे फोड़ों पर भी इसका लेप अच्छा लाभ पहुँचाता है। अण्डकोष की सूजन पर इसकी जड़ को सिरके में पीस कर कुछ दिनों तक लगातार लगाने से आराम हो जाता है। इसकी मात्रा १॥ तोले तक की है।

गागजेमूल

नाम—काश्मीर—गागजेमूल। फारसी—गूगल जंगली। लेटिन—Geum Alatum. [ग्यूम एलेटम]।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में कश्मीर से लेकर सिक्किम तक ६००० फीट से लेकर १२००० फीट तक की ऊँचाई पर होती है। इसके पत्ते १० से लेकर ३० सेंटीमीटर तक लम्बे रहते हैं। ये कटी हुई, किनारों के होते हैं इसके फूल २·५ से ३·५ सेंटीमीटर के आकार के होते हैं। इसकी पंखुड़ियाँ गोल, चमकीली और पीली होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—हानिग्बरगर के मतानुसार इस वनस्पति की जड़ काश्मीर में आफिसनल मानी गई है। यह औषधियों में बहुत उपयोगी है। इसकी जड़ें संकोचक और कृमिनाशक होती हैं। ये मलेरिया में शीतनिर्यास के रूप में दी जाती हैं। यह सारी वनस्पति संकोचक, पौष्टिक, ज्वर निवारक और अग्निवर्धक है। कमजोरी में लगातार इसका उपयोग करने से शक्ति बढ़ती है। यह अतिसार, गले की तकलीफ और श्वेतप्रदर में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक और अतिसार में लाभदायक है।

गाफ़स

नाम—यूनानी—गाफ़स, बगुज़न, गुलखला, हशीशत, अलगाफस, सिजात इत्यादि।

वर्णन—यह एक खारदार पौधा है। इसके पत्ते भंग के पत्तों की तरह होते हैं। इसका फूल गुल नीलोफर की तरह नीला और लम्बा होता है। फारस में शीराज के पहाड़ों में पैदा होने वाली गाफ़स बहुत अच्छी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यद दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को साफ करती है। शरीर में संचित बेकार गन्दगी निकाल देती है। तिल्ली और जिगर की कार्यवाही को नियमित करती है और इनकी सूजन को भी मिटाती है। पेशाब और मासिक धर्म को जारी करती है। जलोदर में लाभदायक है। इसको सूअर की चर्बी में मिलाकर लेप करने से ऐसे फोड़े भर जाते हैं जिनका कि आराम होना मुश्किल होता है। इसके बीजों को शराब के साथ खाने से आंतों के घाव मिट जाते हैं।

इस वनस्पति का सुखाया हुआ रस [उसारा] उपरोक्त सब रोगों में इससे अधिक प्रभावशाली है।

इस वनस्पति को अधिक मात्रा में सेवन करने से तिल्ली और अण्डकोष को नुकसान पहुँचता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अनीसून मुफीद है। इसकी मात्रा काढ़े में १७ ·माशे से २ तोले तक और चूर्ण के रूप में ४ माशे से १० माशे तक दी जाती है। [ख० अ०]

गाब

नाम—हिन्दी—गाब, काला तिन्दु, तेन्दू। संस्कृत—अनिलसा, कालस्कंध, केन्दु, स्फुर्जन, तेन्दुक, तिन्दुक, तिन्दुकी। बंगाल—गाव, मकुरकेंदि, तेंदू। बम्बई—गाब, कुसी, तेंदु, तिमोरी। गुजराती—तेमुरनो, तिम्बूरी। तामील—

कटटी, तुम्बि। तेलगू--गाबू, इति तुम्बिका। अरबी और फारसी--आबनूसे हिन्द। लेटिन--Diospyros Peregrina [डिस्रोसपायरस पेरेग्रिना]

वर्णन--यह तिंन्दु ही की जाति का एक वृक्ष है। इसका आकार प्रकार सब तिन्दू ही की भांति रहता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल कसैला, कटु स्निग्ध, दुश्पच्य और आतों को सिकोड़ने वाला होता है। यह व्रण और वात में लाभदायी है। इसका पका फल मीठा, स्निग्ध, पित्तनाशक और रक्त रोगनाशक है। यह पथरी और मूत्रमार्ग के विकारों में फायदा पहुँचाता है। इसके फल और फूल बच्चों की कुक्कुरखाँसी [हूपिंग कफ] में दिये जाते हैं। इसका छिलका पेचिश में लाभदायी है। इसकी लकड़ी पित्त विकारों को नाश करने वाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूल कामोद्दीपक हैं। ये कटिवात में लाभदायी है। पित्त में और रक्त सम्बन्धी विकारों में ये फायदा पहुँचाते हैं। इसका फल मीठा, कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है।

हानिगबर्गर में मतानुसार इसके फल और छिलके में संकोचक गुण रहते हैं। इसके कच्चे फल का रस ताजे घाव पर लाभदायक होता है। यह फल टेनिन से पूर्ण रहता है। यह एक घरेलू संकोचक दवा है जो कि गरीब आदमियों को भी प्राप्त हो सकती है। इसके बीजों से निकाला हुआ तेल पेचिश और अतिसार में देशी दवा के अन्दर काम में लिया जाता है। इससे सफलता भी मिलती है। इसका छिलका पार्यायिक ज्वरों में उपयोग में लिया जाता है।

इसे पेचिस और अतिसार में सफलतापूर्वक काम में लेते हैं। इसके फल का शीत निर्यास गले के और मुँह के छालों [मुखक्षत] को दूर करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीज अतिसार में काम में लिये जाते हैं।

चरक के मतानुसार इसके छिलके और पत्तों का रस सिरस की जड़ के रस के साथ में सर्पदंश के उपयोग में लिया जाता है। सर्प विष में इसकी कुछ बूदें अञ्जन के तौर पर आँखों में डाल दी जाती हैं और कुछ नाक में डाली जाती है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसका छिलका और इसके पत्ते आँजने से और सूँघने से दोनों ही तरह से सर्पदंश में फायदा नहीं पहुँचाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक तथा अतिसार व सर्पदंश में उपयोगी है।

गारबीज

नाम—हिन्दी—गारबीज, चियन। बम्बई—डारबीज, गरंभि, गरदुल, पीला पापड़ा। मराठी—आठोंड़ी, गारंबी, गरडुल। बंगाल—गिलगाच्छ, गीला पांगरा। तामील—हरिविक, चिल्लू। तेलगू—गिलाटिगी। कोकण—गारायेबालि। लेटिन—Entata Scandens [एण्टेटा स्केंडेन्स]।

वर्णन-- यह एक बड़ी जाति की बेल होती है जो दूसरे वृक्षों पर चढ़ती है। इसका तना मोटा और शाखाएँ फिसलनी होती हैं। इसके पत्ते लम्बे, गोल, कटे हुए और गहरे हरे रंग के होते हैं। इसके बीज उदई रंग के, २ इञ्च लम्बे, गोल और चपटे होते हैं। इन बीजों को गुजराती में पीला पापड़ा और बंगाली में गिल कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका पिसा हुआ गूदा अन्य औषधियों के साथ में प्रसूति के पश्चात् स्त्रियों को दिया जाता है। इससे शरीर की शूल और सरदी दूर होती है। इसके बीज वमन कारक, कटिशूल नाशक और ग्रंथियों की सूजन में उपयोगी होते हैं। पहाडी लोग इसके बीजों के गूदा को ज्वरनाशक औषधि के बतौर काम में लेते हैं। फिलिपाइन द्वीप में इसकी तांतों का अथवा छाल का शीत निर्यास चर्म रोगों को दूर करने के लिये दिया जाता है और इसके काढ़े को फोड़ों पर लगाने के काम में लेते हैं। इण्डोचायना में इसके बीज विषनाशक, निद्राजनक और वमन कारक माने जाते हैं। दक्षिण अफ्रीका में दाँत निकलते समय बच्चों को यह औषधि दी जाती हैं। ये बीज नाक से होने वाले रक्तश्राव में उपयोगी माने जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज वमन कारक होते हैं, इनमें सेपानिन, ग्लुकोसाइड और उपक्षार रहते हैं।

गार

नाम—यूनानी—गार। फारसी—बहश्तान।

वर्णन—यह एक बहुत बड़ा पेड़ होता है जो विशेषकर श्याम में पैदा होता है। ऐसा कहा जाता है कि इस वृक्ष की उमर १००० वर्ष तक की होती है। यूनान के निवासी इस पेड़ की बहुत इज्जत करते हैं। इसके पत्ते आस के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते हैं। ये खुशबूदार और कड़वे रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह दूसरे और तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके पत्तों का क्वाथ गर्भाशय और मसाने की बीमारियों में लाभदायक हैं। इस क्वाथ को टब में भरकर उस टब में बैठने से गर्भाशय, गुर्दे और मसाने की बीमारियों में लाभ होता है। इसकी छाल को ३ माशे की मात्रा में प्रतिदिन पीने से पथरी टूट जाती है और गठिया में लाभ होता है। इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से दाँतों का दर्द दूर होता है। इसके पत्तों की मात्रा दो माशे तक है।

इसके पत्तों और फलों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े को जैतून के तेल में पकाकर एक तेल तैयार किया जाता है जिसको गार का तेल कहते हैं। यह तेल बहुत गरम होता है। इसको अंगूर की शराब के साथ देने से यकृत के रोग दूर होते हैं, मगर इसको पेट में लेने से जी बहुत मिचलाता है और छाती को नुकसान पहुँचता है। इसलिये इसको कतीरे के साथ लेना चाहिये। इस तेल की मालिश से पुरानी गठिया, वातरोग, फालिज, खुजली, दाद और फोड़े फुन्सी में लाभ पहुँचता है। इसको चर्बी में मिलाकर कान में टपकाने से कान का बहिरापन जाता रहता है। इसको सिर पर मलने से नजला और दिमाग की सर्दी चली जाती है। इसको नाक के अन्दर टपकाने से सर्दी से पैदा हुई आधा-शीशी बन्द हो जाती है। इस तेल को गरम प्रकृति वालों को सेवन नहीं करना चाहिये।

गारीकून

नाम—यूनानी—गारीकून।

वर्णन—यह वस्तु किसी वृक्ष की गली हुई जड़ की तरह होती है। इसके विषय में यूनानी हकीमों के अन्दर बहुत मतभेद है। किसी २ के मत से यह गूलर और अंजीर इत्यादि पुराने झाड़ों की जड़ों में मिलता है। किसी के मत से यह बलूत के वृक्ष से प्राप्त होता है। किसी ने इसको कुनभी बतलाया है, जो पुरानी पड़ कर बदबूदार होकर इस रूप में हो जाती है। कोई इसे गार के वृक्ष की जड़ मानते हैं। यह नर और मादा दो तरह की होती है। नर जाति सख्त और मादा जाति मुलायम होती है। औषधि प्रयोग में मादा जाति ही काम में आती है। सफेद रंग की गारीकून उत्तम, मुलायम, हलकी और चिकनी होती है। इसका स्वाद कड़वापन लिये हुए मीठा और चरपरा होता है। इसकी काले रंग की जाति बहुत जहरीली होती है, इसलिये उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

गुण, दोष और प्रभाव—यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह शरीर में संचित कफ, वात और पित्त के दोषों को दस्त की ओर निकाल देता है, पेट के फुलाव और बादी की सूजन को मिटाता है, पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है। इसको ४ जौ की मात्रा में सिरके के साथ पीसकर पीने से हर तरह के जहर का असर दूर होता है। काबुली हरड़ और मस्तगी के साथ इसे देने से सीने और दमे के दर्द में लाभ होता है। ऊदसलीब के साथ इसको देने से मिरगी के रोग में फायदा होता है। उसारे रेवन्द के साथ इसको लेने से जिगर और मेदे की बीमारियाँ दूर होती हैं। सौंफ के साथ यह गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ता है। इसे शिकंजबीन के साथ लेने से तिल्ली और पीलिया में लाभ होता है। शराब के साथ यह जहरीले जानवरों के जहर को दूर करता है। असारून के साथ इसको देने से जलोदर में लाभ होता है। एलुवे के साथ यह औषधि गृध्रसी, गठिया, मलेरिया ज्वर और हिस्टीरिया में फायदा पहुँचाती है। शहद के साथ यह कालिक उदरशूल में और बादी में लाभ पहुँचाती हैं।

इस औषधि को अकेली उपयोग में नहीं लेना चाहिये। बल्कि दूसरी औषधियों के साथ खिलाना चाहिए।

अगर इसकी पीली, लाल या काली जहरीली जाति से किसी को उपद्रव हो जाय तो उसको उल्टी कराकर

जुनवेदस्तर खिलाना चाहिये। यह औषधि अधिक मात्रा में गुर्दे को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तगी का उपयोग करना चाहिये। इस औषधि के न मिलने पर इसके बदले में निसोथ और एलुआ मिलाकर देना चाहिये। इसकी मात्रा काढ़े में ४ माशे और चूर्ण के रूप में दो माशे तक देना चाहिये।

गालयून

नाम—यूनानी—गालयून।

वर्णन—यह एक जाति का पोधा है जो तालाबों के किनारे पैदा होता है। इसके पत्ते लम्बे और फूल पीले तथा खुशबूदार होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह शरीर के किसी भी अंग से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करता है। इसके फूल का लेप आग से जले हुए स्थान पर करने से शांति मिलती है। इसके लगाने से जख्मों से बहता हुआ खून और पीब बन्द हो जाता है। इसको मोम और तेल के साथ मिलाकर लगाने से हाथ पाँव का दुखना बन्द होता है। इसकी जड़ें कामेन्द्रिय को उत्तेजना देती हैं। यह वनस्पति यकृत और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये अनीसून का प्रयोग करना चाहिये।

गारारी

नाम—मध्यप्रदेश—गनारी, गरार, दरारी। हिन्दी—गरारी, गरार। बरार—घरा। माल्लायालम—नीलकला। मराठी—गरारी। नागोरी—करगेलवदारू, करलिलुङ्गदारु। तामील—नीलइपलई, ओडिसो, ओडुपई, ओडुवन। तेलगू—कोरशी, कोरसी, करड़ा, कोरोड़ा। लेटिन—Cleistan thus Pollinus [क्लेइस्टेनथस पोलीनस]।

वर्णन—यह वनस्पति बिहार, छोटा नागपुर, सतपुड़ा और पश्चिमीय प्रायद्वीप में होती है। यह एक छोटी मध्यम आकार की वनस्पति है। इसका वृक्ष मामूली ऊँचा रहता है। इसके पत्ते २.५ से० मी० से १० से० मी० तक लम्बे और २ से ७.५ से० मी० तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हरे रहते हैं। इसकी फली पकने पर अखरोट के रंग की हो जाती है और चमकती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह एक विषैला वृक्ष है। इसके पत्ते और फलों का निर्यास अँतड़ियों की जलन को और खास कर पाकाशय की अँतड़ियों की जलन को मिटाता है। इसकी छाल चर्म रोगों में उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह बहुत विषैली वस्तु है। यह मछलियों के लिये विष है। इसमें से पानिन रहता है।

गावजवाँ

नाम—संस्कृत—वृषजिह्वा। हिन्दी—गावजवाँ। उर्दू—गावजवाँ। फारसी—गावजवाँ। बंगाली—गावजवाँ। अरबी—तहारे तुल। लेटिन—Ouosma Bracteatum [ओनोस्मा ब्रेक्टीयम]।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में, काश्मीर से कुमाऊ तक ११,५०० फीट की ऊँचाई तक और ईरान तथा अफगानिस्तान में पैदा होती है। इसके पत्ते जीभ की तरह खुरदरे होते हैं और उन पर साबूदाने की तरह छींटे होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इनका रंग नीला होता है। मगर पुराना होने पर इनका रंग लाल पड़ता जाता है। अच्छी गावजवाँ ताजा मोटे पत्ते वाली, खुरदरी, हरे रंग की और बड़े रुएँ वाली होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह औषधि दिल, दिमाग और जिगर को ताकत देती है, दस्त साफ लाती है, शरीर के अन्दर संचित दूषित कफ और पित्त को दस्त की राह निकाल देती है, खाँसी, दमा और सीने की जलन में लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्क प्रदाह (Cerebritis), माली खोलीया, उन्माद (Insanity), गले का दर्द और फेफड़े के दर्द में भी यह लाभ पहुँचाती है। दिल की धड़कन (Pal-pitation of the Heart), पीलिया और बहक की बीमारी में भी यह फायदा करती है। गुर्दे और मसाने की पथरी तोड़ने में यह बहुत लाभदायक है इसको पीस कर भुरभुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

इसका अर्क वात रोग, माली खोलिया और दिल की धड़कन में फायदेमन्द है।

गावजवाँ के फूल--गावजवाँ के फूल पहले दर्जे में गरम और तर हैं। ये पीलिया, दिल की धड़कन और प्यास को बुझाकर दिल, दिमाग और जिगर को ताकत देते हैं।

गावजवाँ के बीज—ये भी पहले दर्जे में गरम और तर होते हैं। इनकी तासीर भी गावजवाँ के पत्तों और फूलों की तरह ही होती है, मगर ये गावजवाँ के फूलों से अधिक प्रभावशाली हैं। यह औषधि तिल्ली और मेदा को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये हरड़ का मुरब्बा और सफेद चन्दन का प्रयोग करना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु पौष्टिक और धातु परिवर्तक है। यह आमवात, गर्मी और कोढ़ में उपयोग में ली जाती हैं। डा० ओशघनेसी ने इसकी बहुत अधिक तारीफ की है। एक औंस गावजवाँ को पानी में उबालकर पिलाने से ज्वर के समय की बेचैनी और प्यास मिट जाती है। यह एक उत्तम मूत्रल और शान्तिदायक पदार्थ है। मूत्राशय की पीड़ा और पथरी में भी यह लाभदायक है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार गावजवाँ मूल्यवान औषधि है। विषम ज्वर में इसका क्वाथ बनाकर देने से शान्ति मिलती है और ज्वर में कमी होती है। उपदंश और सुजाक की वजह से पैदा हुई सन्धियों की सूजन में इसको चोपचीनी के साथ दिया जाता है। हृदय की धड़कन में इसकी फांट बनाकर देने से फायदा होता है। मूत्र कृच्छ्र में भी यह लाभदायक है।

बनावटें—खमीरा गावजवाँ—गावजवाँ के पत्ते १० तोले, बिल्ली लोटन ५ तोले, बालछड़, गुलाब के फूल, चन्दन सफेद हर एक २ तोला, तीन भाग पानी और दो भाग गुलाबजल मिला कर उसमें इन सब चीजों को डालकर औटाना चाहिये। चौथाई जल शेष रहे तब मलकर छान लें और तीन पाव सफेद शक्कर मिलाकर चासनी करें, इसमें ४ माशा केशर भी मिला लें। इस खमीरे की मात्रा ६ माशे तक है। यह दिल की धड़कन को मिटाता है तथा दिल और दिमाग को ताकत देता है।

गावजवाँ मीठी

वर्णन—यह गावजवाँ की तरह ही एक पौधा होता है। इसके पत्ते जमीन पर बिछे हुए रहते हैं। इसके पत्तों के बीच में से एक शाखा करीब एक गज लम्बी निकलती है। शाखा के सिरे पर सुरमाई रंग के फूल आते हैं। गावजवाँ से इसका पत्ता चौड़ा, पतला और गोल होता है। सूखने पर इसके पत्तों में सल पड़ जाते हैं। पुराने जमाने में गावजवाँ की जगह इसी वनस्पति का उपयोग किया जाता था।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति दिल की धड़कन और मेदे की गर्मी को दूर करती है। इसके गुण गावजवां से मिलते-जुलते ही हैं।

गिन्दारू

नाम--बढ़वाल—गिन्दारू। देहरादून—परहा। नेपाल—तम्बरकि, बरकुलिला, हरा, निमिला। लेटिन—Stephania Glabra [स्टेफेनिया ग्लेबरा]।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में शिमला से सिक्किम तक खासिया पहाड़ी पर और आसाम में तनासरम में होती है। इसकी शाखाएँ फिसलनी होती है। इसके पत्ते झिल्लीदार और दोनों तरफ चिकने रहते हैं। ये पीछे की ओर फीके रंग के रहते हैं। इसके पुष्पों में प्रायः तीन पंखुड़ियाँ रहती हैं। इसका फल गोल और चपटा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—राक्सवर्ग के मतानुसार इसकी जड़ कसैली होती है। इसे सिलहट में उपचार के काम लेते हैं।

कोचीन और चाइना में इसे फेफड़ों के क्षय, ज्वर, श्वास और पेचिश में उपयोग में लेते हैं।

गिरमी

नाम—हिन्दी—बारीक चिरायता, खेत चिरायता। बंगाली--गिरमी, गिरा। मराठी--लहान किरियात, लंतक। गुजराती—जंगली किरियातू। लेटिन—Erythraca Roxburghii [अर्थरेका राक्सबर्घी]।

वर्णन--यह एक छोटी जाति की वनस्पति है। यह सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। मगर औषधि के रूप में यह बंगाल के अन्दर बहुत काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव--यह सारा पौधा बहुत कड़वा होता है। यह औषधि अपने अग्निदीपक गुण के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसका ज्वरनाशक गुण भी बहुत प्रभावशाली है। बंगाल में इस औषधि को चिरायते के बदले में उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि चिरायता की प्रतिनिधि है।

गिलूर का पत्ता

नाम--हिन्दी--गिलूर का पत्ता, गलपार का पत्ता। अंग्रेजी--Sweet Tangle। लेटिन--Laminaria Sacharina [लेमिनेरिया सेकेरिना]।

वर्णन--यह एक शेवाल जाति की वनस्पति है। यह समुद्र में तथा काश्मीर और तिब्बत की झीलों में पैदा होती हैं। चीन देश की अमूर नदी में पैदा होने वाली शेवाल हिन्दुस्तान में बिकने के लिये आती है। पञ्जाब और सिंध के बाजारों में यह बहुत मिलती है।

गुण, दोष और प्रभाव--यह वस्तु रसायन अर्थात् धातु परिवर्तक मानी जाती है। इसका शीत निर्यास, उपदंश और कण्ठमाला की बीमारियों में लाभदायक माना गया है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उपदंश, कण्ठमाला (Scrofula) और गलगंड (Goitre) में दी जाती है।

गिले अरमानी

नाम--यूनानी--गिले अरमानी।

वर्णन--यह एक जाति की मिट्टी है। इसका रंग लाल होता है। यह नरम, चिकनी और खुशबूदार होती है। यह ईरान और आर्मीनिया में पैदा होती है। इसकी उत्तम जाति वह होती है जो सुनहरी रंग की हो और जबान पर चिपकती हो।

गुण, दोष और प्रभाव--यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह कब्जियत करती है। दमा, क्षय और खांसी में लाभ पहुँचाती है। हृदय को बल देती है। छाती, पेट, गर्भाशय, अन्तड़ियां, मेदा और पेशाब की राह से होने वाले रक्तश्राव को रोकती है। फोड़े, फुँसी, दाद और जख्म इसके लगाने से आराम होते हैं। यह मुँह के छालों की भी बहुत अच्छी औषधि हैं। प्लेग की गठान पर इसका लेप करने से गठान बैठ जाती है। संक्रामक ज्वर में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसके प्रयोग से शरीर में खराबी का बढ़ना रुक जाता है। यह तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तंगी और अर्क गुलाब का प्रयोग करना चाहिये। इसका प्रतिनिधि गेरू है और इसकी मात्रा १ माशे से ७ माशे तक है। [ख० अ०]

गिले खुरासानी

नाम--यूनानी--गिले खुरासानी, गिले निशापुरी। अरबी--तीन अलखुरासानी।

वर्णन--यह भी एक मिट्टी है। यह सफेद, चिकनी, सख्त और खुशबूदार होती है। यह मुलतानी मिट्टी से कुछ मिलती-जुलती है।

गुण, दोष और प्रभाव--यह वमन को रोकती है, मेदे को ताकत देती है, सूजन को बिखेरती है, इसको गर्मी की फुंसियों पर लेप करने से लाभ होता है। इसके खाने से नींद में मुँह से लार का बहना बन्द हो जाता है। हैजे की बीमारी में यह मुफीद है। हकीम गिलानी का कहना है कि यह औषधि हैजे पर कई बार तजुर्बे से लाभदायक सिद्ध हो चुकी है। इसको देने की तरकीब इस प्रकार है। पहले इसको थोड़ा-सा आग में भून लें, फिर १॥ तोला मिट्टी खट्टे

मीठे सेव के रस में दे दें। दूसरी खुराक १॥ तोले की सेव के काढ़े के साथ और तीसरी खुराक ठण्डे पानी के साथ देवें। समय देखकर खुराक में कमी वेशी की जा सकती है। इस प्रकार देने से हैजे में अच्छा लाभ होता है।

जिन लोगों का आमाशय कमजोर होता है और खाना खाने के बाद वमन हो जाया करती है उनको भोजन के पश्चात् इसको १३॥ माशे की मात्रा में देने से बड़ा लाभ होता है। मगर यह जांच कर लेना चाहिये कि रोगी के लीवर की चाल कम न हो।

यह औषधि अधिक मात्रा में खाने से गुर्दे और मसाने में पथरी पैदा करती है। जिन लोगों को गुर्दे और मसाने में पथरी की शिकायत हो उनको यह औषधि बहुत नुकसान करती है। इसका दर्पनाशक अनीसून है। इसकी मात्रा ४ माशे से १३ माशे तक है। [ख० अ०]

गिलेदागशानी

नाम—यूनानी—गिलेदागशानी।

वर्णन—यह भी एक तरह की मिट्टी है। इसकी टिकियाएं बनकर बाहर से आतीं हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। वात, पित्त और कफ तीनों की खराबियों को यह दूर करती है। दिल की धडकन और वेहोशी में यह लाभदायक है। यह खून के बहने को रोकती है। [ख०अ०]

गिलेमखतूम

नाम—यूनानी—गिलेमखतूम।

वर्णन—यह लाल और पीले रंग की मिट्टी है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसको पीसकर जखम पर भुरभुराने से जखम का खून उसी वक्त बन्द हो जाता है। यह मिट्टी विषनाशक है। जहर का असर होने के कुछ देर बाद खाने से यह अच्छा लाभ पहुँचाती है। कहीं से बहते हुए खून को रोकने के लिए यह औषधि बहुत कारगर है। गर्मी की सूजन में इससे बड़ा लाभ होता है। इसके लगाने से कैसा ही खराब जखम हो, भर जाता है। मोच, चोट, हड्डी का टूटना इत्यादि बातों में भी इससे बड़ा लाभ होता है। इसके मंजन करने से मसूड़ों से खून का गिरना रुक जाता है। जहरीले जानवर के काटने पर इसको शराब के साथ खाना चाहिये और सिरके के साथ लगाना चाहिये।

हकीम गिलानी का कथन है कि गुलाब के अर्क के साथ इसे उपयोग में लेने से यह हृदय को बहुत ताकत देती है और प्रसन्नता पैदा करती है। संक्रामक रोगों के चलने के समय भी इसका सेवन करने से बीमारी होने का डर नहीं रहता। इसमें एक गुण यह है कि दूसरी मिट्टियाँ जहाँ कब्जियत पैदा करतीं हैं वहाँ यह दस्तावर है। इसको पीस कर ताजे घाव पर छिड़कने से घाव बहुत जल्द भर जाते हैं और उनसे बहने वाला खून भी बन्द हो जाता है।

यह फेफड़े और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा, शहद और अर्क गुलाब के साथ देना चाहिये। इसकी मात्रा ३ से ७ माशा तक की है। (ख० अ०)

गिलेरूमी

नाम—यूनानी—गिलेरूमी।

वर्णन—इस मिट्टी का रंग गुलाबी होता है। हाथ पर इसको मलने से हाथ का रंग लाल हो जाता है। इसको तोड़ने से इसके अन्दर पीले रंग की धारियाँ दिखलाई देती हैं। इसको जबान पर रखने से यह जबान पर चिपक जाती है।

गुण, दोष और प्रभाव—हर तरह की सूजन पर इसका लेप करने से फायदा होता है। इसको कासनी के पानी में पीसकर आँख के पोटे पर लगाने से आँख की सूजन उतर जाती है। आँतों के जखम और पेचिश पर इसका एनेमा देना चाहिये। (ख० अ०)

गिलोय

नाम—संस्कृत—गुडूची, अमृतवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणा, सोमवल्ली, अमृता, इत्यादि। हिन्दी—गिलोय। बंगाल—गुलच। मराठी—गुड़वेल। गुजराती—गलो। करनाटकी—अमरदवल्ली। तेलगू—तिप्पतिरगा। कोकण—गरुड़वेल। फारसी—गिलाई। अरबी—गलोई। लेटिन—Tinospora Cordifolia (टिनोस्पोरा कोर्डिफोलिया)।

वर्णन—आयुर्वेद की यह सुप्रसिद्ध वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। यह वेल बड़ी और बहुवर्ष जीवी होती है। यह दूसरे वृक्षों के आसरे से चढ़ती है। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है वह नीम गिलोय कहलाती है और औषधि प्रयोग में वही सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके पत्ते हृदय की आकृति के और लम्बे डण्ठल के होते हैं। फूल बारीक, पीले रंग के झूमकों में लगते हैं। फल लाल रंग के होते हैं ये भी झूमकों में लगते हैं। इस लता का तना अंगूठे के बराबर मोटा होता है। शुरू २ में यह हरे रंग का होता है मगर पकने पर धूसर रंग का हो जाता है इस वेल का तना ही औषधि प्रयोग के काम में आता है। इस सारी वनस्पति का स्वाद कड़वा होता है। गरमी के दिनों में इस वेल को इकट्ठी करने से यह ज्यादा गुणकारी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से गिलोय कसैली, कड़वी, उष्णवीर्य, रसायन, मलरोधक, बलकारक, अग्निदीपक, हलकी, हृदय को हितकारी, आयुवर्धक तथा प्रमेह, ज्वर, दाह, तृष्णा, रक्तदोष, वमन, वात, भ्रम, पाण्डुरोग, कामला, आँव, खाँसी, कोढ़, कृमि, खूनी बवासीर, वात रक्त मेद, विसर्प पित्त और कफ को दूर करती है। यह घी के साथ वात को, शक्कर के साथ पित्त को, शहद के साथ कफ को और सोंठ के साथ आमवात को दूर करती है।

गिलोय ओर मानव शरीर की व्याधियाँ—गिलोय में शामक, ज्वर नाशक, पित्तशामक, मूत्रल और शोधक गुण रहते हैं। इसका शामक गुण अत्यन्त आश्चर्य जनक है। आयुर्वेद के मतानुसार शरीर में पैदा होने वाली प्रत्येक व्याधि में वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों में एक या दो का प्रकोप अवश्य रहता है। गिलोय में शामक गुण होने की वजह से वह प्रत्येक कुपित हुए दोष को समानता पर ला देती है। जिस दोष का प्रकोप होता है उसको वह शान्त कर देती है और जिसकी कमी हो जाती है, उसको प्रदीप्त कर देती है इस प्रकार घटे-बढ़े दोषों को समान स्थिति में लाकर प्रकृति को निरोग बनाने का गुण दूसरी किसी भी वनस्पति में नहीं है। इसीलिये इसका नाम अमृता रक्खा गया है। यह एक ही वनस्पति है जो प्रत्येक प्रकृति के मनुष्य को प्रत्येक रोग में दी जा सकती है।

ज्वर पर गिलोय के प्रभाव—ज्वर नाशक गुण होने की वजह से यह हर एक जाति के ज्वरों में निशंकता से दी जा सकती है। यद्यपि मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति इसमें बहुत कम है और इस रोग में यह क्विनाइन का मुकाबला नहीं कर सकती, फिर भी शरीर की दूसरी क्रियाओं को व्यवस्थित करने में यह बहुत सहायता पहुँचाती है, जिसके परिणामस्वरूप मलेरिया ज्वर पर भी इसका असर दिखलाई देता है। क्विनाइन से शरीर में जो खराब प्रतिक्रियाएँ होती हैं उनको भी यह रोकती है। इसलिये अगर क्विनाइन के साथ इसका भी उपयोग किया जाय तो मलेरिया ज्वर में विशेष फायदा हो सकता है।

जीर्ण ज्वर और टायफायड ज्वर में [मोतीज्वर] जहाँ कि क्विनाइन इत्यादि औषधियाँ कुछ भी काम नहीं आ सकतीं वहाँ भी गिलोय आश्चर्यजनक फायदा करती है। इसमें पित्त को शान्त करने का गुण रहता है और जीर्ण-ज्वर तथा मोती ज्वर में विशेषकर पित्त का ही प्रकोप रहता है। इसलिये ऐसे ज्वरों में यह बहुत अच्छा लाभ बतलाती है। तेज ज्वर आने के पश्चात् शरीर में जो हलका बुखार शेष रह जाता है उसको निकालने में भी यह वनस्पति बहुत प्रभावशाली है। इसके सेवन से रोगी में शक्ति का संचार भी बहुत शीघ्रता से होता है।

ऐसे बुखारों में तुलसी, वनफशा, गावजवां, खूबकला इत्यादि औषधियों के साथ इसका काढ़ा बना कर देने से अथवा इसका घन सत्व निकालकर उसको त्रिफले के चूर्ण और शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

यकृत रोग, मन्दाग्नि और गिलोय—यकृत अर्थात लीवर और तिल्ली की खराबी की वजह से शरीर में

जलोदर, कामला, पीलिया इत्यादि जितने भी रोग खड़े होते हैं उन सबको दूर करने के लिये गिलोय एक अत्यन्त चमत्कारिक दवा है। यहाँ तक कि आंत्र क्षय के उग्र केसों में भी इसके प्रयोग से बड़ा लाभ होता है। मन्दाग्नि की ऐसी पुरानी शिकायतों में भी जिनको दूर करने के लिये हजारों रुपये की बहुमूल्य औषधियां भी बेकार साबित हो चुकी थी, गिलोय ने आश्चर्यजनक लाभ बतलाये हैं। ऐसे रोगों के सम्बन्ध में गिलोय के प्रयोग अनेकों बार अनुभवों में आ चुके हैं और इस बात की सिफारिश की जा सकती है कि जो लोग पेट के रोगों से ग्रसित हों, जिनकी तिल्ली और यकृत बिगड़ रहे हों, जिनको भूख न लगती हो, शरीर पीला पड़ गया हो, वजन कम हो गया हो, और जो बड़ी-बड़ी औषधियों से निराश हो गये हों वे भी इस आश्चर्यजनक औषधि का सेवन करके लाभ उठा सकते हैं। ऐसे रोगों में इसके प्रयोग की विधि इस प्रकार है। नीम के ऊपर चढ़ी हुई ताजी गिलोय १॥ तोला, अजमोद २ माशे, छोटी पीपर २ दाने, नीमके पत्ती की सलाइयाँ ७, इन सब चीजों को कुचल कर रात को पाव भर पानी में मिट्टी के बरतन में भिगों दे। सबेरे इन चीजों को ठण्डाई की तरह सिल पर पीस कर उसी पानी में छान कर पीलें। इस प्रकार १५ से लेकर ३० दिनों तक पीने से पेट के सब रोग दूर होते हैं।

रक्त विकार और गिलोय--गिलोय में रक्त विकार को नष्ट करके शरीर में शुद्ध रक्त प्रवाहित करने का गुण भी विद्यमान है। इसलिये खाज, खुजली, वातरक्त इत्यादि रोगों में इसको गूगल के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है।

क्षय की भयंकर व्याधि पर गिलोय का प्रभाव--क्षय रोग के ऊपर भी इस औषधि की बहुत अच्छी क्रिया होती है। दो-ढाई तोले गिलोय का शीत निर्यास छोटी पीपर के चूर्ण के साथ प्रातःकाल के समय पीने से क्षय के रोगी को ऐसा लाभ होता है जो शायद कॉड लिव्हर आइल इत्यादि गन्दी दवाइयों से नसीब नहीं हो सकता। इससे क्षय रोगी के ज्वर का वेग घटता है, उसकी पाचन क्रिया सुधरती है। पाचक रस अधिक उत्पन्न होता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है और जठर बलवान होता है।

गिलोय और मूत्ररोग--सुजाक, प्रमेह, पेशाब की जलन, इत्यादि मूत्र रोगों में भी अपने मूत्रल गुण की वजह से यह अच्छा लाभ बतलाती है। अरण्डी के तेल के साथ इसका काढ़ा बनाकर देने से कष्टसाध्य समझे जाने वाले संधिवात में भी अच्छा लाभ होता है।

विष के उपद्रवों पर गिलोय--गिलोय के अन्दर विष नाशक गुण भी बतलाया जाता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थकारों ने इसको दूसरी औषधियों के साथ सर्प विष में लाभदायक बतलाया है। इसके कन्द को माशे डेढ़ माशे की मात्रा में पानी में घोटकर पिलाने से बार-बार वमन होकर सर्प विष निकल जाता है।

कीर्तीकर और बसु के मतानुसार गिलोय का सत्व जीर्ण रक्तातिसार और पुरानी पेचिश में बहुत लाभदायक है। अन्तड़ियों की पीड़ा में जब कि अन्न बिलकुल भी हजम न होता हो यह औषधि बड़ा चमत्कारिक लाभ बतलाती हैं। अग्निमांद्य और अपचन रोग को यह बिलकुल दूर कर देती है। गठिया रोग के लक्षणों को दूर करने में भी यह बड़ी असरकारक है। इसका ताजा रस मूत्र निस्सारक होता है। पुराने हिन्दू चिकित्सकों ने इसे सुजाक की बीमारी में मुफीद बतलाया है।

हिन्दुस्तान के कुछ भागों में यह विष को दूर करने का एक निश्चित इलाज समझा जाता है। सर्प विष में इसकी जड़ का रस या काढ़ा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है, आँखों में डाला जाता है और आधे-आधे घण्टे की अवधि में पिलाया भी जाता है।

संन्याल और घोष के मतानुसार गिलोय पार्यायिक ज्वर को दूर करनेवाली औषधि है। यह पौष्टिक, धातुपरिवर्तक और मूत्र निस्सारक हैं। इनकी सूखी बेल की अपेक्षा ताजा बेल ज्यादा गुणकारी है। इसका प्रयोग गठिया की बीमारी में भी किया जाता है। यकृत रोग, अग्निमांद्य और मूत्र सम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत लाभदायक है। यह यकृत को उत्तेजना देती है और पीलिया में लाभ पहुँचाती है। अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि मन्दाग्नि, जीर्ण ज्वर और उलट-उलट कर आने वाले ज्वरों में यह अति उत्तम औषधि है।

ज्वर में इसका उपयोग भिन्न-भिन्न रूप से किया जाता है। पैत्तिक ज्वर में नीम गिलोय का सत्व शहद के साथ दिया जाता है। पुराने ज्वर और खाँसी में इसका काढ़ा या ताजा रस पीपल और शहद के साथ दिया जाता है।

चरक के मतानुसार इसका रस उलट कर आने वाले बुखारों में मुफीद होता है। पीलिया की बीमारी में भी इस रस को प्रातःकाल शहद के साथ देने से लाभ होता है। पित्त से होने वाली उल्टियों में भी इसका काढ़ा लाभ-दायक होता है।

गिलोय का सत्व निकालने की विधि—नीम पर चढ़ी हुई ताजी, रसदार और चमकदार गिलोय को लाकर उसके एक-एक दो-दो इंच के टुकड़े कर उन टुकड़ों को पत्थर से कुचल कर एक मिट्टी के बरतन में पानी के अन्दर गला देना चाहिये। जब चार घण्टे तक वे टुकड़े अच्छी तरह गल जांय, तब उनको हाथों से मल-मल कर बाहर निकाल कर फेंक देना चाहिये। उसके बाद उस पानी को कपड़े से छानकर तीन-चार घण्टे तक पड़ा रहने देना चाहिये। जिससे गिलोय का सब सत्व उस बरतन की पेंदी में जम जायगा। उसके बाद धीरे-धीरे उस पानी को दूसरे बरतन में निकाल लेना चाहिये और नीचे जो सफेद रंग का सत्व जमा हो उसको निकाल कर धूप में सुखा लेना चाहिये। यही गिलोय का सत्व है। जो अनेक रोगों में काम में आता है।

गिलोय का घन सत्व बनाने की विधि--सत्व निकालते समय सत्व के ऊपर के पानी को आग पर चढ़ा कर खूब औटाना चाहिये। जब औटाते-औटाते रबड़ी सरीखा हो जाय तब उसको उतार कर या तो उसकी बट्टियाँ बाँध लेना चाहिये या उसको थाली में डालकर धूप में सुखा लेना चाहिये। यही गिलोय का घन सत्व है।

यह घन सत्व भी अत्यन्त प्रभावशाली औषधि है और जहाँ-जहाँ गिलोय सत्व और गिलोय को लेने का विधान है, वहाँ-वहाँ उसके बदले में इसका उपयोग बेधड़क होकर किया जा सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और तर है। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है वह पुराने बुखार के लिए बहुत मुफीद है। तपेदिक या क्षय में भी यह बहुत लाभ करती है। हर किस्म के तप को यह दूर करती है। दिल, जिगर और मेदे की जलन को मिटाती है। खाँसी, पीलिया और बेहोशी में फायदा करती है। कफ को छाँटती है, भूख बढ़ाती है, कामेन्द्रिय को ताकत देती है, वीर्य्य को पैदा करके गाढ़ा करती है। मिश्री के साथ लेने से पित्त की तेजी को दूर करती है और शहद के साथ लेने से कफ के कोप को मिटाती है। मधु प्रमेह या डायबिटीज में जब पेशाब के साथ शकर जाती हो तब ६ माशा गिलोय का चूर्ण और ६ माशा मिश्री मिलाकर प्रातःकाल खाली पेट खाने से बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी लकड़ी और जड़ उपचार के काम में आती है। यह स्वाद में कड़वी होती है। इसका रस ज्वरघ्न औषधि के रूप में काम में लिया जाता है। इसको हिन्दुस्तानी क्विनाइन भी कहते हैं। इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का सत्व तैयार किया जाता है जो कि निर्बलता, सविराम ज्वर और अग्निमांद्य के प्रयोग में लिया जाता है। यद्यपि कई लोगों ने कोढ़, उपदंश और गठिया के सम्बन्ध में इसकी तारीफ की है मगर उपरोक्त रोगों में इसकी उपयोगिता कहाँ तक है यह अभी संशय पूर्ण है।

ग्रन्थ लेखक के अनुभव—करीब १० वर्षों से नीम गिलोय के अनुभव इस ग्रन्थ के लेखक को बराबर होते आ रहे हैं। मन्दाग्नि, आंत्र क्षय और उदर रोगों के कठिन केसों में इसका सफलता पूर्वक उपयोग किया जा चुका है। एक ऐसी स्त्री के केस में जिसको मन्दाग्नि और आँतों की कमजोरी की भयंकर शिकायत थी। भूख नहीं लगती थी हमेशा ज्वर की हरारत बनी रहती थी। सारा शरीर कमजोर हो गया था, वजन. स्वाभाविक वजन से १६ सेर कम हो गया था और आंत्र क्षय के लगभग सभी चिह्न दृष्टिगोचर होने लग गये थे। उसको गिलोय का प्रयोग प्रारम्भ किया गया। १॥ तोला ताजी गिलोय, २ माशे अजमोद, दो दाने छोटी पीपर और ७ नग नीम के पत्तों के डण्ठल। इन सब चीजों को रात में मिट्टी के बरतन में भिगोकर प्रातःकाल ठण्डाई की तरह पीसकर आधा पाव पानी में छानकर उसमें ईंट का एक टुकड़ा गरम करके बुझाकर रोज सवेरे उसे पिलाया जाने लगा। पहले ही सप्ताह में लाभ के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। उसकी हरारत निकल गई और भूख बढ़ने लगी। दूसरे सप्ताह में उसकी रक्ता-

भिसरण क्रिया में सुधार हो गया और उसका वजन बढ़ने लगा। जो तीसरे सप्ताह में १२ सेर बढ़ गया। उसके अन्दर काम करने की स्फूर्ति और आरोग्य के सभी लक्षण पैदा हो गये। और भी इस प्रकार के मन्दाग्नि और उदर रोग से सम्बन्ध रखनेवाले केसों में इसके चमत्कारिक गुण अनुभव में आये हैं।

फेफड़े के क्षय में भी अगर वह पहली स्टेज में हो तो इस औषधि का धैर्य पूर्वक सेवन करने से अवश्य लाभ होता है। इसका सत्व, शरीर की जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति को बढ़ाने की अद्भुत क्षमता रखता है। किसी भी रोग के पश्चात् की कमजोरी में शीतोपलादि चूर्ण दो माशा और प्रवाल पिष्टी दो रत्ती के साथ इसको एक माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से मनुष्य की जीवन विनिमय क्रिया को बड़ा बल मिलता है। ऐसे अनेक केस हमारे अनुभव में आये हैं, जिनको साल भर में २-४ बार बीमार पड़ने की आदत सी हो गई थी, मगर इस औषधि को नियम पूर्वक डेढ़, दो महीना सेवन करने के पश्चात् पांच-पांच, दस-दस वर्षों तक उनको बीमार पड़ने की नौबत नहीं आई और उनका जनरल स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा।

इसी प्रकार मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ गिलोय का सेवन करने से रक्त विकार के भी कई केसों में अच्छा लाभ होता देखा गया है।

उपयोग—गठिया—इसका क्वाथ या शीत निर्यास पिलाने से पुरानी गठिया और पेशाब की बीमारियों में बड़ा लाभ होता है।

सांप का जहर—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर पिलाने से सांप के विष में लाभ पहुंचता है।

गर्मी के फोड़े-फुंसी—उसवे के साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से गर्मी से पैदा हुए फोड़े फुन्सी मिट जाते हैं। इसके खालिस रस में पखान भेद का चूर्ण और शहद मिलाकर खिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

श्वेत प्रदर—इसका काढ़ा या शीत निर्यास पिलाने से स्त्रियों का श्वेत प्रदर मिटता है।

दिल की धड़कन—ब्राह्मी के साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से दिल की धड़कन और पागलपन मिटता है।

क्षय—इलायची, बंशलोचन और गिलोय के सत को शहद के साथ चटाने से क्षय में बहुत लाभ होता है।

पार्यायिक ज्वर—इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से बारी बारी से आने वाला ज्वर मिट जाता है।

श्वेत प्रदर—शतावरी के साथ इसको औटाकर पिलाने से योनि से सफेद पानी का गिरना बन्द हो जाता है।

कान का दर्द—गिलोय को घिस कर पानी में कुनकुना करके कान में टपकाने से कान का मैल निकल जाता है।

पित्त ज्वर—गिलोय के काढ़े में शक्कर मिलाकर पीने से पित्त का ज्वर छूट जाता है।

कफ ज्वर—गिलोय के क्वाथ में छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से कफ का ज्वर छूट जाता है।

अरुचि—गिलोय के रस में पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर पिलाने से तिल्ली के रोग आराम होते हैं, भूख और रुचि बढ़ती है और खांसी में लाभ होता है।

पीलिया—इसके पत्तों को पीसकर मट्ठे में मिलाकर पीने से पीलिया दूर होता है।

हिचकी—इसके और सोंठ के चूर्ण को मिलाकर सुँघाने से हिचकी बन्द हो जाती है।

पैर के तलवों की जलन—गिलोय और अरण्डी के बीजों को दही में मिलाकर लगाने से पैर के तलवों की जलन मिटती है।

वातरक्त (१) इसके काढ़े में अरण्डी का तेल और गूगल मिलाकर नियमित रूप से सेवन करने से वात रक्त मिटता है। (२) ३ या ५ छोटी हर्रें के चूर्ण को गुड़ में गोली बनाकर खाने से और ऊपर से गिलोय का काढ़ा पिलाने से बढ़ा हुआ वात रक्त भी शांत होता है।

अनेक रोग—गिलोय को गुड़ के साथ खाने से कब्जियत दूर होता है। मिश्री के साथ लेने से पित्त का कोप शांत होता है। शहद के साथ खाने से कफ के विकार शान्त होते हैं। सोंठ के साथ लेने से आमवात मिटता है और गौ मूत्र के साथ इनका प्रयोग करने से श्लीपद की बीमारी दूर होती है।

अग्निमांद्य—गिलोय १ ड्राम, लौंग १ ड्राम दालचीनी १ ड्राम, पानी १ पिंट। इन सब चीजों को पीसकर उबालकर, जब आधा रह जाय तब छान लेना चाहिये। इसको एक औंस की मात्रा में दिन में तीन बार देने से मन्दाग्नि में बहुत लाभ होता है।

ज्वर के बाद की कमजोरी—गिलोय १ ड्राम, चिरायता १ ड्राम, सोंठ १ ड्राम, पानी १ पिंट इनको उबाल कर जब आधा पानी शेष रह जाय तब छान लेना चाहिये। इसको १ औंस की मात्रा में दिन में तीन बार देने से ज्वर के बाद की कमजोरी दूर होती है। [सन्याल और घोष]

बनावटें—अमृता गूगल—हरी ताजी नीम गिलोय ६४ तोला, शुद्ध गूगल ३२ तोला, त्रिफला ९६ तोला इन सबको जौ कुट करके २० सेर पानी में डालकर अग्नि में चढ़ाना चाहिये। जब ५ सेर पानी बाकी रह जाय तब उतार कर कपड़े में छान कर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब औटते २ वह गाढ़ा हो जाय तब उसमें दन्ती की जड़ २ तोला, सोंठ ६ माशे, मिरच ६ माशे, छोटी पीपर ६ माशे, बायविडंग २ तोला, गिलोय २ तोला, त्रिफला चूर्ण २। तोला, इन सब को कपड़छान करके मिला देना चाहिये। जब ठण्डा हो जाय तब तीन-तीन माशे की गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से १ से लगाकर ४ तक गोलियाँ प्रतिदिन सवेरे शाम रासना के क्वाथ या अन्य अनुपान के साथ लेने से वात रक्त, गलित कुष्ठ, विस्फोटक व्रण इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

अमृता मोदक—नीम गिलोय का घन सत्व ४ तोला, हरड़ १ तोला, आँवला १ तोला, सोंठ और छोटी पीपर २ तोला। इन सब चीजों को १५ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब ४ तोला पानी शेष रह जाय तब उसको छान कर आठ तोला शक्कर मिलाकर फिर आग पर चढ़ाकर गाढ़ी चासनी कर लेना चाहिये। पश्चात् उतार कर उसका जितना वजन हो उससे सोलहवां हिस्सा मण्डूर भस्म मिलाकर तीन २ माशे की गोलियां बना लेना चाहिये। इसमें से प्रतिदिन सवेरे शाम एक-एक गोली लेने से तिल्ली की बढ़ती, मन्दाग्नि और जीर्ण ज्वर में अद्भुत लाभ होता है।

अमृता अरिष्ट—ताजी नीम गिलोय ४०० तोला, बेल ४० तोला, अरनी ४० तोला, अडूसा ४० तोला, गम्भारी ४० तोला, पाडर ४० तोला, अरलू ४० तोला, शालपर्णी ४० तोला, पृष्ठपर्णी ४० तोला, कटाई ४० तोला, लघु कटाई ४० तोला, गोखरू की जड़ ४० तोला। इन सब को लेकर १ मन १० सेर पानी में उबालना चाहिये। जब १२॥ सेर पानी बाकी रह जाय तब उतारकर छान कर उसमें ३० सेर गुड़, ६४ तोला जीरा, ८ तोला पित्तपापड़ा और सोंठ, मिरच, पीपर, नागरमोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस, इन्द्र जौ और सप्तपर्णी (सतवन) चूर्ण चार-चार तोला डालकर खूब मिलाकर चीनी की बरनियों में भरकर उनका मुँह बन्द करके एक महीने तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसको उपयोग में लेना चाहिये। इस अरिष्ट में से ४ तोला सवेरे और ४ तोला शाम को जल के साथ लेने से हर तरह के जीर्ण ज्वर, उदर रोग, मन्दाग्नि इत्यादि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

अमृता मोदक नं० २—नीम गिलोय का उत्तम सत्व ३० तोला, तमालपत्र, आंवला, मूसली, इलायची, मेंहदी के बीज, काली दाख, केशर, नागकेशर, कमलकन्द, भीमसेनी कपूर, चन्दन, लालचन्दन, सोंठ, मिरच, पीपर, मुलेठी, असगन्ध, शतावरी, गोखरू, कौंच के बीज, जायफल, कङ्कोल, जटामासी, रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, बंग भस्म और लोह भस्म। इन सबों को एक २ तोला लेकर पीस छान कर गिलोय के सत्व में मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् ८ तोला घी, ८ तोला शक्कर और ८ तोला शहद मिलाकर एक २ तोले की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से एक १ गोली रोज सवेरे शाम खाने से क्षय, रक्त पित्त, हाथ पैरों के तलवों की जलन, दाह, प्रदर, रक्त प्रदर, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रमेह रोग दूर होते हैं।

गुजरात में गिलोय के योग से कई प्रकार की संशमनियाँ तैयार की जाती हैं। संशमनी गुजराती वैद्यों के व्यवहार की एक घरेलू चीज है। नीचे हम कुछ संशमनियों के नुस्खे देते हैं।

संशमनी (१)—नीम के ऊपर फैली हुई ताजा गिलोय लाकर उसके एक २ इञ्च के टुकड़े कर लेना चाहिये। फिर उन टुकड़ों को साफ करके, कुचल कर, चौगुने पानी में तीन घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उनको अच्छी तरह से मसल कर, पानी को कपड़े में छान लेना चाहिये। उसके बाद उस पानी को हलकी आंच पर चढ़ा देना चाहिये। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उसकी टिकड़ियाँ बाँध लेनी चाहिये। जब वह सूख कर खरल में घुटने काबिल हो जाय, तब उसमें से १० तोला घन सत्व लेकर उसमें एक रुपये भर लोह भस्म, एक रुपये भर स्वर्ण माक्षिक की भस्म डालकर अच्छा खरल करके आधा २ रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये।

इन गोलियों को ५ से लेकर १० की मात्रा में दिन में दो बार दूध के साथ देने से जीर्ण ज्वर, पांडु रोग दाह, मन्दाग्नि, हृदयरोग, धातु की कमजोरी, बीमारी के बाद की कमजोरी, श्वेतप्रदर इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

संशमनी (२)—ऊपर के नुस्खे में से केवल लोह भस्म को निकाल देने से संशमनी न० २ तैयार हो जाती है। यह भी उपरोक्त संशमनी के समान गुणवाली होती है। मगर उसके बराबर उग्र वीर्य और तेज नहीं होती है। इसकी प्रकृति सौम्य रहती है।

बृहत संशमनी (३)—अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रस सिन्दूर, शुद्ध शिलाजीत और चतुर्वङ्ग भस्म। इन सब चीजों को एक २ तोला लेकर १२ तोला गिलोय के घन सत्व के साथ सरल करके एक २ रत्ती भर की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से २ से लेकर ४ गोली दिन में तीन बार पानी अथवा दूध के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, क्षय निर्बलता, पाण्डु रोग, प्रदर, अनियमित वीर्यश्राव, इत्यादि रोग मिटते हैं। यह औषधि शीत वीर्य और अत्यन्त पौष्टिक है। छोटे बच्चों की कमजोरी में भी यह बहुत उत्तम है।

शक्तिवर्धक गोलियाँ—गिलोय का घन सत्व ४० तोला, लींडी पीपल ५ तोला, लौह भस्म ५ तोला, कुनेन ५ तोला, शुद्ध कुचल का चूर्ण ५ तोला, इन सबको खरल में पीसकर डेढ़-डेढ़ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दोनों टाइम १ से ३ तक गोलियाँ दूध के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, तिल्ली और यकृत की वृद्धि, मन्दाग्नि, पाण्डु रोग और सूजन वगैरह दूर होकर शक्ति बढ़ती है।

गिलोय की फाँट—ताजी नीम गिलोय १० तोला, अनन्तमूल का चूर्ण २० तोला। गिलोय के छोटे-छोटे टुकड़े करके उनको कुचल कर अनन्तमूल के चूर्ण के साथ एक बर्तन में रखकर ऊपर से खूब तेज खौलता हुआ पानी २॥ सेर डालकर बर्तन का मुँह बन्द कर देना चाहिये। २ घण्टे उसको वैसा ही पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद खूब मसल कर उस पानी को छान लेना चाहिये। इस पानी को दिन में तीन बार ५ तोले से लेकर १० तोले तक की मात्रा में देना चाहिये। यह औषधि एक उत्तम रसायन और मूत्रजनक है। फिरङ्गोपदंश की दूसरी अवस्था में और जीर्ण आमवात में यह अत्यन्त उपयोगी होती है।

गिलोय की मात्रा हरी हालत में १ तोले से लेकर २॥ तोले तक की है। सूखी गिलोय की मात्रा ४ से ६ माशे तक और गिलोय सत्व की मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक की है। इतनी ही मात्रा गिलोय के घनसत्व की होती है।

गीदड़ तम्बाकू*

नाम—हिन्दी—गीदड़ तम्बाकू, अटबिन, बिथूआ, नीलकटाई, पोपथुरि। पंजाब—पोपट बूँटी, अत् नुन, बिथुआ, गीदड़ तमाखू, नील कटई। लेटिन—Heliotropium Europium [हेलिओट्रोपियम यूरोपियम]।

वर्णन—यह वनस्पति कश्मीर, पंजाब, राजपूताने के रेगिस्तान, सिंध और बलूचिस्तान में पैदा होती है। इसका तना रुएंदार, पत्ते अंडाकार और रुएंदार और फल लम्ब गोल होता है। औषधि प्रयोग में इसके पत्ते काम में आते हैं।

---

* नोट—एक गीदड़ तम्बाखू और होती है, उसको लेटिन में Verbascum Thapsws, व्हरबेस्कम थेप्सस कहते हैं। उसका वर्णन "अरण्य तम्बाकु" के नाम से इस ग्रंथ के पहिले भाग में दिया गया है।

गुण, दोष और प्रभाव-- यह वनस्पति वमनकारक होती है। सर्प के विष में इसको तम्बाखू के तेल के साथ खिलाते हैं और पत्तों को पीसकर काटी हुई जगह पर लेप करते हैं। बिच्छू के विष पर इसके पत्तों को अरंडी के तेल में उबाल कर लगाते हैं। घावों को पूरने और साफ करने में भी इन पत्तों को अरंडी के तेल में उबाल कर बाँधते हैं। इन पत्तों को लपेट कर कान के अन्दर रखने से कान के दर्द में भी लाभ होता है।

महस्कर और केस के मतानुसार यह औषधि साँप और बिच्छू के जहर पर निरुपयोगी है।

गुञ्जा (चिरमिटी)

नाम--संस्कृत--गुञ्जा, गुञ्जिका, अंगारवल्लरी, रत्तिका, कृष्णचूड़िका, शिखंडी, सौम्या, कम्बोजि श्वेतगुंजा। हिन्दी--गुञ्जा, चिरमिटी, घुंघचीं, गोंचि। बंगाली--कुन्च, गुन्च, चुनहटी। बम्बई--घुंघची, गुन्जा। गुजराती--चनोटी चणोटीराती, चणोटीधोली। मराठी--गुन्ज, मदलवेल। पंजाब--लाबरी, रतक। तामील--अरिंगम, कंदम, कुरुविदम, मदुरगम्। तेलगू--अतिमपुरम, गुरिजा, गुरुविजा। उर्दू--गुँचि। अरबी--एनुदिक। फारसी--चश्मेखरश, चश्म खुरोष। लेटिन--Abrus Precatoroius [एब्रस प्रिकेटोरियस]।

वर्णन--चिरमिटी के बीज प्रायः सारे हिन्दुस्तान में रत्तियों के तौल में काम में लिये जाते हैं। इसलिये ये सब दूर मशहूर हैं। यह एक पराश्रयी लता होती है। इसकी शाखाएँ लचीली होती हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तों की तरह होते हैं और खाने में मीठे लगते हैं। कई जगह ये पत्त पान में रखकर खाये जाते हैं। इसके फूल सेम के फूलों की तरह और फली भी सेम के सदृश गुच्छे वाली होती है। ये फलियाँ रुएँदार होती हैं। इनके अन्दर चिरमियें निकलती हैं जो अत्यन्त सुन्दर लाल रंग की मुँह पर काले धब्बे वाली होती है। ये ऊपर से अत्यन्त चिकनी और चमकदार होती हैं। इसकी एक जाति और होती है, जिसका रंग बिलकुल सफेद होता है। उसको सफेद घूँघची कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव--आयुर्वैदिक मत--आयुर्वेद के मतानुसार दोनों प्रकार की घूँघची स्वादिष्ट, कड़वी, बलकारक, गरम, कसैली, चर्मरोग नाशक, केशों को हितकारी, रुचिकारक, शीतल, वीर्य्यवर्धक तथा नेत्र रोग, विष, पित्त, इन्द्रलुप्त, व्रण, कृमि, राक्षस, ग्रह पीड़ा, कण्डु, कुष्ठ, कफ, ज्वर, मुख रोग, वात, भ्रम, श्वास, तृषा, मोह और मद का नाश करती है। इसके बीज वमनकारक और शूल नाशक होते हैं। इसकी जड़ और पत्ते विषनाशक होते हैं। सफेद गुन्जा वशीकरण के काम में आती है।

इसकी जड़ और पत्ते मीठे होते हैं। इसका फल कड़वा, कसैला, कामोद्दीपक और विषैला होता है। यह कफ कारक, पित्तनिवारक, सौन्दर्यवर्धक और रुचिकारक होता है। नेत्र रोग, खुजली, चर्म रोग और घावों में भी यह उपयोगी है। इसकी जड़ और इसके पत्ते ज्वर, मुँह की सूजन, दमा, प्यास, क्षय की ग्रंथि, और दाँतों की सड़ान में लाभदायक है।

वाग्भट्ट के मतानुसार इसकी जड़ सर्पदंश पर लगाई जाती है और पत्तों को पीस कर वमन कराने के लिये पिलाते हैं।

इसके बीज जहरीले होते हैं और स्नायुमण्डल के विकारों के उपयोग में आते हैं। चर्मरोग, व्रण और सिर की गंज में इनका लेप किया जाता है। पक्षाघात, जोड़ों के दर्द और गृध्रसी में भी इनके लेप से लाभ होता है। सफेद कुष्ठ में इन बीजों को चित्रक की जड़ के साथ लेप किया जाता है। इसके पत्तों को सरसों के तेल में उबाल कर उस तेल को जोड़ों के दर्द पर लगाने से दर्द मिट जाता है।

रासायनिक विश्लेषण--रासायनिक विश्लेषण से इसके अन्दर पाया जानेवाला प्रधान तत्त्व एब्रिन है। इसकी वजह से चिरमी के बीजों का पानी बनाकर [इन बीजों को कूट कर पानी में गला देते हैं और बाद में पानी को छान लेते हैं] आँखों में डालने से जलन पैदा होती है। एब्रिन के अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, एंझिम, एबसिएसिड और हेमेग्लुटिनिन तथा यूरीज नामक पदार्थ भी रहते हैं। इसके बीजों के छिलकों में एक लाल तत्त्व पाया जाता है। सफेद बीजों वाली जाति में एब्रिन और ग्लिसिरिझन नामक पदार्थ रहते हैं। इस जाति के पत्तों को अकेले या कबाब चीनी के साथ चूसने से स्वर का मोटापन मिट कर स्वर सुरीला हो जाता है। मुखक्षत में भी ये लाभदायक हैं।

इसमें पाया जाने वाला एब्रिन नामक पदार्थ एक बहुत ही तेज और विषैली वस्तु है। एब्रिन में दो तत्व पाये जाते हैं। एक ग्लोबुलिन और दूसरा एल्बुमोस। यह (एब्रिन) बहुत तेज और चिड़चिड़ा पदार्थ है। इसको लगाने से सूजन पैदा होकर चमड़ी से खून निकलना शुरू हो जाता है। मुँह और गले में यह विशेष तेजी नहीं दिखाता। थोड़ी मात्रा में यह पेट के अन्दर भी नुकसान नहीं पहुँचाता और पचा लिया जाता है। एब्रिन की एक आश्चर्यजनक बात यह है कि अगर यह साधारण मात्रा में इंजेक्शन के द्वारा जानवरों के शरीर में पहुँचाया जाय तो उन पर विष असर नहीं करता।

आर्य लोग बहुत पुराने समय से इस वस्तु को औषधि प्रयोग में लेते आ रहे हैं। सुश्रुत के समान प्रामाणिक ग्रंथों में भी इसका उपयोग बतलाया गया है। इसके पत्ते स्वाद में मीठे होते हैं और इनका रस गले की खराबी, स्वरभंग और गले के खुरदरेपन को मिटाने के लिए काम में लिया जाता है।

एब्रिन या इसके छिलके रहित बीजों का शीत निर्यास पलकों की सूजन और अनीनिका के विकार में लाभदायक होता है। इससे बहुत तेज जलन लगती है यद्यपि इससे कुछ मामलों में सुधार होता है मगर यह इलाज बहुत खतरनाक होता है। असह्य जलन के साथ-साथ आँखों को और भी नुकसान पहुँचने का अन्देशा रहता है। इसलिये इसका प्रयोग सर्वसाधारण को कदापि न करना चाहिये।

नेत्र रोगों के प्रसिद्ध डाक्टर दिवेकर लिखते हैं कि "आँख के अन्दर की पुरानी खील और फूली को मिटाने के लिये यह वस्तु बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। खील या फूली का रोग जब पुराना हो जाता है तब रोगी की आँखों में जानबूझ कर ललाई पैदा करनी पड़ती है। उसके बिना ये रोग नष्ट नहीं हो सकते। इसलिये ऐसे रोगियों की आँखों में चिरमिटी का उपयोग करने से उनकी रक्तहीन और फीकी आँखें सुर्ख अर्थात् लाल हो जाती हैं और उनके द्वारा खील और फूली में रक्त का संचारण होकर वे नष्ट हो जाती हैं। इस काम के लिये चिरमिटी के सफेद बीजों के ऊपर के छिलकों को निकाल कर उनका कपड़छन चूर्ण करके २० तोले गरम पानी में ७० चिरमिटी का चूर्ण डाल कर २४ घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उस पानी को छानकर रख लेना चाहिये। इस पानी की कुछ बूँदें आँख में डालने से आँखें लाल होकर दुखनी आ जाती हैं और आँख के फूले में रक्त पहुँच कर गल जाता है। पुराने रोगों को दूर करने के लिये इससे भी जोरदार पानी बनाना पड़ता है। जिसमें २० तोला पानी के अन्दर १ तोला चिरमिटी का चूर्ण डाला जाता है।"

इण्डियन मटेरिया मेडिका के कर्त्ता डाक्टर नाड करनी लिखते हैं कि चिरमिटी के ३२ दानों को लेकर उनकी मगज निकाल कर, उनका कपड़छन चूर्ण करके ४० रुपये भर ठण्डे पानी में २४ घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उसमें ४० तोला उबलता हुआ जल डालना चाहिये। जब पानी ठण्डा हो जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस जल को आँख में टपकाने से दूसरे दिन आँखें लाल होकर उनके ऊपर के पोपटे सूज जाते हैं। यह तकलीफ ५ से लेकर १५ दिन तक रहती है, उसके बाद धीरे-धीरे घटने लगती है और उसके साथ ही रोगी खील या फूली के रोग से मुक्त हो जाता है।

जंगलनी जड़ी-बूटी के लेखक लिखते हैं कि हमने भी फूली के कुछ रोगियों पर चिरमी से बनाये हुए जल का प्रयोग किया। रक्त हीन, फीकी आँख वाले रोगी की आँख में २-४ बार इस जल को डालने से आँखें लाल सुर्ख होकर सूज जाती हैं। तब इस जल को डालना बन्द करके उसकी आँखों में प्रतिदिन गाय का घी आँजना चाहिये। अगर किसी की प्रकृति को यह प्रयोग अनुकूल न पड़े और उसको असह्य पीड़ा होती हो तो इमली के गूदा को पानी में गला कर उस पानी को मल छानकर आँख में टपकाना और आँख के आजू-बाजू लेप करना चाहिये। इस प्रयोग से ८-१० दिन में आँख अच्छी हो जायगी और खील तथा फूली नष्ट हो जायगी।

आँख की फूली और खील के लिए यद्यपि यह प्रयोग बहुत अद्भुत और लाभकारी है मगर यह इतना उग्र और कष्टप्रद है कि कमजोर प्रकृति वाले आदमियों को और जिनकी सहनशक्ति कमजोर है उनको कदापि इसका प्रयोग

नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिन लोगों की आँखों में थोड़ी भी ललाई हो. उनकी आँखों में भी यह औषधि नहीं डालना चाहिये। यह प्रयोग अनुभवी वैद्यों के लिये ही उपयोगी है।

सिर के अन्दर की गंज में भी चिरमटी अच्छा काम करती है। इसके बीजों के मगज का कपड़छन चूर्ण ५ रुपये भर लेकर उसे भांगरे के रस की सात भावनाएँ देना चाहिये। फिर इलायची, जटामासी, कपूर काचरी और कूट इनको पाँच-पाँच तोला लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। उसके बाद चिरमटी के चूर्ण में इन औषधियों के चूर्ण को मिलाकर पानी के साथ पीस कर लुग्दी बना लेना चाहिये। फिर एक बड़ी पीतल की कलईदार कढ़ाई में ५ सेर पानी और तीन पाव काली तिल्ली का तेल डालकर उस कढ़ाही के बीच में उस लुगदी को रखकर, हलकी आँच पर पकाना चाहिये। जब सब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल को सिर में जहां के बाल उड़ गये हों मालिश करने से नये बाल पैदा होने लगते हैं, जिन स्त्रियों को बाल बढ़ाने का शौक हो उनको भी इस तेल के प्रयोग से बड़ा लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चिरमिटी तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी हर एक किस्म तेज होती है और जखम पैदा करती है। इसके मगज को पीस कर शहद में मिलाकर उसमें बत्ती तर करके रखने से बदगोश्त साफ हो जाता है। बच्चों के कान में एक प्रकार का रोग हो जाता है जिसको हंगुड़ा कहते हैं उसमें इसकी बत्ती बना कर रखने से बहुत लाभ होता है। सफेद चिरमिटी के मगज को पीसकर तिल के तेल में मिलाकर सोते वक्त मुँह कर मल कर सबेरे धो डालने से चेहरे की झाँई और मुँहासे मिट जाते हैं। कामेन्द्रिय को बलवान करनेवाली तिलाओं और लेपों में भी वस्तु डाली जाती है। मासिक धर्म से शुद्ध होकर अगर स्त्री सफेद चिरमिटी के दाने निगल ले तो उसको गर्भ रहना बन्द हो जाता है। लाल चिरमिटी के चूर्ण को लेने से भी यह काम हो सकता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार चिरमिटी, विरेचक, वमनकारक, पौष्टिक और कामोद्दीपक है। इसे स्नायु मण्डल के विकारों पर काम में लेते हैं। जानवरों को विष देने के काम में भी यह ली जाती है। इसमें एब्रिन और ग्लूकोसाइड्स् रहते हैं।

उपयोग—गण्डमाला—इसकी जड़ और फलों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े का जितना वजन हो उससे आधा काली तिल्ली का तेल उसमें डाल कर आग पर पका लें। जब क्वाथ जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लें। इस तेल के मालिश से भयंकर गण्डमाला भी मिटती है।

तिमिर रोग—इसकी जड़ को बकरी के मूत्र में घिस कर अञ्जन करने से असाध्य तिमिर रोग भी मिटता है।

सुजाक—सफेद चिरमिटी की ३० रत्ती जड़ को पीस कर उसका अर्क़ निकाल कर मिश्री के साथ देने से सुजाक मिटता है।

श्वेत प्रदर—इसकी जड़ को रात भर जल में भिगोकर सवेरे शाम छान कर पीने से श्वेत प्रदर मिटता है।

कुक्कुर खाँसी—इसकी जड़ को ढाई से तीन रत्ती तक सोंठ के साथ देने से कुक्कुर खाँसी मिटती है।

गठिया—इसके पत्तों को राई के तेल से चुपड़ कर गठिया पर बाँधने से गठिया की सूजन उतरती है।

बादी का दर्द—इसके ताजे पत्तों का रस निकाल कर तेल में मिलाकर मालिश करने से बादी का दर्द मिटता है।

फोड़े और फुंसी—चिरमिटी को पारा, गन्धक, निम्बोली, भंग के पत्ते और बिनौले के साथ पीसकर लगाने से फोड़े-फुंसियाँ मिटती हैं।

स्नायुजाल की कमजोरी—आधी रत्ती से डेढ़ रत्ती तक घुंघची के चूर्ण को दूध में औटा कर इलायची भुरभुरा कर पीने से स्नायुजाल की शक्ति बढ़ती है। मगर इसको अधिक मात्रा में लेने से वमन होने लगती है।

पुरुषार्थ की कमी—सफेद चिरमिटी तथा उसकी जड़ को दूसरी दवाइयों के साथ चटनी बनाकर खिलाने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

सिर का दर्द—इसके चूर्ण को सुँघाने से सिर का तेज दर्द मिटता है।

आधा शीशी—इसकी जड़ को पानी में घिस कर नास देने से आधा शीशी मिटती है।

बवासीर—चिरमी और उसकी जड़ को नारियल के पानी के साथ देने से बवासीर में लाभ होता है।

आँख की फूली—सफेद घुंघची को मुगली एरंड के रस में घिस कर अंजन करने से शीतला से पैदा हुआ आँख का फूला कटता है। मगर इसके प्रयोग से आँख में असह्य जलन और सूजन पैदा हो जाती है। इसलिए इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये।

प्रमेह—इसके पत्तों के रस को दूध के साथ पीने से प्रमेह मिटता है।

उपदंश—सफेद चिरमी की जड़ और सफेद गुड़हल की जड़ को पानी में घिस कर पीने से और उपदंश की टाँकी पर लगाने से लाभ होता है।

नुकसान—यह एक विषैली वस्तु है। अधिक मात्रा में सेवन करने से दस्त और उल्टियाँ लाती है तथा कमजोरी बेचैनी पैदा करती है। इसके विष को दूर करने के लिए घी, दूध और बेल का गूदा देना चाहिये। इसकी साधारण मात्रा १॥ रत्ती से ३ रत्ती तक की है।

गुड़हल

नाम—संस्कृत—अर्कप्रिया, रक्तपुष्पी, जवा, जपा, पातिका, हरिवल्लभा। हिन्दी—गुड़हल, जवा, जासूद। बंगाल—जवाफूलेरगाच्छ। मराठी—जासवंद। गुजराती—जासुम। कर्नाटकी—दासनिगे। तेलगू—दासंच्चेट्टु मंदार्पु। तामील—शेमरत्तै। अरबी—अंगारे हिन्द। फारसी—अंगारे हिन्द। अंग्रेजी—Shoe flower [शोफ्लावर] लेटिन—Hibiscus Rosasinensis [हिबिस्कस रोसासायनेन्सिस]।

वर्णन—गुड़हल का वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह प्रायः सभी बाग-बगीचों में लगाया जाता है। इसके पत्ते अड़ूसे के पत्तों की तरह मगर चिकने और चमकीले रहते हैं। इसके फूल लाल, केशरी रंग के तथा कोई नारंगी और पीले रहते है। हिन्दुस्तान में इस वृक्ष के ऊपर फल नहीं लगते। औषधि प्रयोग में विशेषकर इसके फूल ही काम में आते हैं। इसके लाल फूलों से एक प्रकार का लाल रंग भी तैयार किया जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गुड़हल शीतल, मधुर, स्निग्ध, गर्भस्थ सन्तान को पुष्ट करने वाला, संकोचक, बालों को हितकारी और शरीर की जलन, मूत्र नाली के रोग, वीर्य की कमजोरी, बवासीर तथा गर्भाशय और योनि मार्ग की तकलीफों को दूर करता है। यह वमनकारक है तथा आंतों में कृमि उत्पन्न करता है। इसके फूल को घी में भून कर खिलाने से अत्यधिक रजःस्राव बन्द होता है और रुधिर विकार मिटता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति समशीतोष्ण है। इसकी सफेद जाति कुछ सर्द होती है। यह वस्तु हृदय के लिये बहुत ही पौष्टिक पदार्थ है। यह दिल को शान्ति देकर उसमें प्रसन्नता पैदा करता है। गर्मी और सरदी से होने वाली दिल की धड़कन को दूर करता है। दिमाग की खराब वायु को निकाल कर भ्रमजनित पागलपन को दूर करता है। इसका गुलकन्द या शरबत बनाकर लेने से दिल की गरमी और खून की खराबी दूर होती है इसका अर्क भी खून साफ करता है। यह वस्तु मनुष्य की स्मरण शक्ति और काम शक्ति को बढ़ाने में भी अच्छी असर दिखलाती है। इसके पत्तों को सुखाकर, उनका चूर्ण कर, उसमें समान भाग शक्कर मिला कर नौ माशे की मात्रा में चालीस दिन तक लेने से मनुष्य की कामशक्ति बढ़ती है।

सुजाक के अन्दर भी यह औषधि अच्छा लाभ करती है। इसके पौने दो तोला पत्ते लेकर रात में पानी में भिगों देगा चाहिये। सबेरे उनका लुआब निकाल कर मिश्री मिलाकर पीने से सुजाक में लाभ होता है। सुजाक के रोगी को पहले दिन इसका एक फूल बताशे के साथ खिलाना चाहिये, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, इस प्रकार पाँचवें दिन पाँच फूल खिलाना चाहिये। फिर एक २ फूल घटाते हुए दसवें दिन एक फूल खिलाना चाहिये। इस प्रयोग से सुजाक नष्ट हो जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—इस वनस्पति के रासायनिक विश्लेषण में Absorption Spectra और Colur reaction तथा Dyeing Properties पदार्थ पाये जाते हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार इसके पत्तों का लेप सूजन को मुलायम करके दर्द को कम करता है। इसकी कलियां रक्त संग्राहक, वेदना नाशक और मूत्रल होती हैं। इसकी छाल स्नेहन और रक्त संग्राहक होती है। इसका रक्त संग्राहक धर्म बहुत साधारण है। इसके ताजा पत्तों को पीसकर बालों में लगाने से बाल बढ़ते हैं और उनका रंग सुधरता है। इसकी कलियाँ सुजाक में और छाल रक्त प्रदर में दी जाती है मगर इन रोगों में इसका गुण सुनिश्चित नहीं है।

बनावटें—शर्बत अनगरा-गुड़हल के १०० फूल लेकर उनके हरे हिस्से को दूर करके, एक चीनी के प्याले में १० कागजी नीम्बू के रस में शाम के वक्त भिंगो दें। सवेरे के वक्त उसमें डेढ़ पाव गुलाब का बढ़िया अर्क डालें और एक दिन एक रात पड़ा रहने दें। फिर मिश्री एक सेर, अर्क गावजबां आधा सेर, अर्क केवड़ा आधा पाव, विलायती अनार का रस एक पाव, मीठे संतरे का रस एक पाव, ये सब चीजें मिलाकर उसी बरतन में डाल दें और ऊपर से ६ माशे इलायची के बीज और ६ माशे धनिये का चूर्ण करके उसमें मिला दें और एक दिन रात भिंगोकर, मल छानकर साफ करलें और आग पर चढ़ा कर चाशनी कर लें शरबत की चाशनी आने पर उसको उतार लें और उसमें कस्तूरी दो रत्ती, अम्बर तीन माशे और केशर ४ रत्ती इन सबको गुलाबजल में घोट कर चाशनी में मिला दें।

इस शरबत को २ तोले से ४ तोले तक की मात्रा में लेने से दिल और दिमाग को ताकत मिलती है। चेहरे की कान्ति बढ़ती है और माली खोलिया रोग में लाभ होता है।

शरबत असबालेहोन—गुड़हल के फूल १०० की सब्जी दूर करके कागजी नीबू के पाव भर रस में भिगोंकर रात भर खुली छत पर रक्खें। सवेरे १ सेर मिश्री और २ सेर पानी का शरबत बनाकर उस शरबत में उन फूलों को डालकर कांच अथवा चीनी के बरतन में भर दें और उसका मुँह खूब मजबूती से बन्द कर दें। फिर एक दूसरे बड़े बरतन में पानी भरकर उस बर्तन में शर्बत के बर्तन को तीन चौथाई डुबोकर तीन या चार रोज तक पड़ा रहने दें। उसके बाद उसको खोल कर ऊपर के झागों को दूर कर छान कर रख लें। इस शरबत को १॥ तोले से ३॥ तोले तक की मात्रा में पीने से सर्दी और गरमी से होने वाली दिल की धड़कन मिटती है। गर्भाशय को फायदा होता है। पागलपन और भय मिटता है, चेहरे का रंग सुर्ख होता है तथा ताकत और भूख बढ़ती है। [ख० अ०]

गुड़मार

नाम—संस्कृत—अजगन्धिनी, अजाश्रंगी, [?] मधुनाशिनी। हिन्दी—गुड़मार। गुजराती—गुड़मार लेटिन—Gymnema Sylvestris [जिम्नेमा सिलवेस्ट्रिस]

वर्णन—यह एक लता होती है जो दूसरे झाड़ों के आश्रय से चढ़ती है। यह लता मध्य भारत और पूर्वी तथा उत्तरी हिन्दुस्तान में बहुत पैदा होती है। इसका वास्तविक संस्कृत नाम क्या है, इसका पता नहीं लगता। कीर्तिकर और बसु, डॉक्टर वामन गणेश देसाई, कर्नल चोपरा इत्यादि प्रामाणिक ग्रंथकारों ने इसका संस्कृत नाम मेषश्रंगी, अजश्रृङ्गी, अजगन्धिनी इत्यादि लिखे हैं, मगर हमारे यहाँ यह वनस्पति बहुत बड़ी तादाद में पैदा होती है और जहाँ तक हमारा खयाल है यह मेषश्रृङ्गी, से भिन्न दूसरी वस्तु है। इसके पत्ते चमेली के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं और उसकी सबसे उत्तम और निर्विवाद परीक्षा यही है कि इसका एक पत्ता खाकर के गुड़ और शक्कर खाई जाय तो उसका स्वाद बिलकुल मिट्टी की तरह लगने लगता है। जब तक उस पत्ते का असर जबान से दूर न होगा, तब तक गुड़ और शक्कर का मिठास कभी अनुभव में नहीं आ सकता। इंडियन मेडिसनल प्लांट्स में जिसको "जिम्नेमा सिल्वेस्ट्रिस" और बंगाली में छोटी दूधीलता लिखा है उसी का नाम हिन्दी में गुड़मार और दूसरा नाम मेढ़ासिंगी दिया है। ऐसी स्थिति में यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह जिम्नेमा सिल्वेस्ट्रिस ही असली गुड़मार है या कोई दूसरी चीज ?

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, कसैली, शक्कर के स्वाद को नष्ट करने वाली, सर्प विषनाशक, जीभ की स्वाद परखने की शक्ति को नष्ट करनेवाली, पेशाब में जाने वाली शक्कर को रोकने वाली और धातुपरिवर्तक है। हृदय रोग, बवासीर, प्रदाह, धवल रोग और नेत्र रोगों में भी यह लाभदायक है।

बम्बई और गुजरात के रहनेवाले वैद्य इसके पत्तों को मधुमेह रोग या पेशाब में जानेवाली शक्कर को दूर करने के काम में लेते हैं। बम्बई और मद्रास के वैद्य लोग इसे विस्फोटक और मधुमेह के रोग में उपयोग में लेते हैं।

सर्प विष के अन्दर इस वनस्पति का अन्तःप्रयोग और बाह्य प्रयोग करने से लाभ होता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। मगर महस्कर और केस के मतानुसार यह वनस्पति सर्प विष में बिलकुल निरुपयोगी है।

गुड़मार और मधुमेह रोग—इस वनस्पति की मधुमेह रोग को नष्ट करने के सम्बन्ध में बहुत प्रशंसा है। बम्बई और गुजरात में तो इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में इतना विश्वास है कि वहाँ के लोग अपने बगीचों में इसको लगाते हैं। इसकी प्रशंसा को देखकर कई देशी और विदेशी डाक्टरों और रसायन शास्त्रियों ने इस वनस्पति के सम्बन्ध में, अपने मत प्रगट किये हैं।

बम्बई की हाफकीन इंस्टिट्यूट की फारमाकोलाजिकल लेबोरेटरी के रसायन शास्त्री महस्कर और केस ने महाबलेश्वर से इसके पत्तों को मंगवाकर उनका चूर्ण, गरम फॉट, क्वाथ, एक्स्ट्रैक्ट और इसमें पाये जाने वाले तत्व जिम्नेमिक एसिड को निकाल कर इन सब बनावटों का उपयोग खरगोश, मेंढक और कुत्तों पर किया।

इन सब परीक्षणों के पश्चात् ये लोग इस निश्चय पर पहुँचे कि गुड़मार के असर से खून में शक्कर की मात्रा कम होती है।

इसके पश्चात् बम्बई के सुप्रसिद्ध जे० जे० अस्पताल में मधुमेह के रोगियों पर इस औषधि के परीक्षण किये गये और अन्त में इस निश्चय पर पहुँचा गया कि गुड़मार में कृमिनाशक गुण विशेष मात्रा में नहीं हैं। अगर इसको अधिक मात्रा में दिया जाय तो यह अरुचि, दस्त और निर्बलता पैदा करती है। साधारण मात्रा में यह हृदय और रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजना देती है और मूत्र तथा गर्भाशय की क्रिया को बढ़ाती है। यह खून में से शक्कर की तादाद कम करती है।

इसकी यह क्रिया इसको मुँह के द्वारा या इन्जेक्शन के द्वारा लेते ही तुरन्त प्रारम्भ हो जाती है और एक निश्चित समय तक चलती है। इस औषधि का शक्कर को कम करने का यह असर जीवन क्रिया पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता प्रत्युत वह शरीर की इन्स्यूनीन पैदा करने वाली क्रिया पर असर करके उसके द्वारा यह प्रभाव पैदा करती है। इसके पत्ते मृदु विरेचक भी होते हैं।

इस वनस्पति के सूखे पत्तों का चूर्ण ३० से ६० ग्रेन तक की मात्रा में प्रतिदिन देने से तीन महीने में मधुमेह रोग (Glycosuria) पर लाभ होता है।

कर्नल चोपरा का मत—कलकत्ता, स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन के प्रसिद्ध रसायन शास्त्री कर्नल चोपरा ने भी इस वनस्पति के सम्बन्ध में काफी अध्ययन किया और उसके परिणाम स्वरूप उन्होंने नीचे लिखा हुआ मत प्रकाशित किया।

"गुड़ गोबरी, यह एक पराश्रयी लता है जो मध्य भारत और दक्षिण भारत में विशेष रूप से पैदा होती है। यह हिन्दू मटेरिया मेडिका में ज्वरनिवारक, अग्निवर्धक और मूत्रल मानी जाती है। सुश्रुत के मतानुसार मधुमेह और अन्य मूत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। आधुनिक जनसमाज भी इसके शर्करा नाशक गुण को बहुत चमत्कारिक मानता है।

आज से करीब १०० वर्ष पहले एजवर्थ नामक विद्वान् ने यह बतलाया कि इसके पत्तों को चूसने से जबान की मीठा स्वाद ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। उसके पश्चात् हूपर ने भी इस बात का समर्थन किया और यह भी बतलाया कि केवल मीठी वस्तु ही नहीं, इसके पत्तों को खा लेने के बाद जबान की कुनेन के समान कड़वी वस्तु के अनुभव की शक्ति भी जाती रहती है और करीब एक घण्टे तक वह वैसी ही बनी रहती है।

शक्कर के स्वाद को नष्ट करने की शक्ति के कारण ही इसका नाम गुड़मार रखा गया है और इसके इसी स्वभाव की वजह से लोगों का ऐसा विश्वास हो गया है कि यह शरीर में बढ़ी हुई शक्कर के प्रभाव को नष्ट कर सकती है। बम्बई और मध्यभारत में यह विश्वास अधिक प्रचलित है।

रासायनिक विश्लेषण—सन् १८८७ में हूपर ने इसके पत्तों का रासायनिक विश्लेषण किया। इन पत्तों में उनको दो प्रकार के रेजिन्स मिले। पहले अलकोहल में घुलने वाले और न घुलने वाले। न घुलने वाले रेजिंस की मात्रा अधिक थी। घुलनशील रेजिंस का स्वाद कुछ तीखा रहता है। यह गले में चिड़चिड़ापन लाता है। इसमें टेनिन्स नहीं थे। इसमें एक एसिड भी पाया गया जिसमें शक्कर को नष्ट करने की शक्ति है। इसका नाम जिम्नेमिक एसिड रक्खा गया। यह इसमें ६ प्रति सैकड़ा की तादाद में पाया गया। इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में एक नवीन कटु तत्व, कुछ टारटारिक एसिड और केलशियम आक्झेलेट पाये गये।

सन् १९०४ में पावर और ट्यूटिन ने इस वनस्पति का रासायनिक अध्ययन किया। उनको इसमें हेंट्रियेकांटेन, क्वर्सीटाल और जिम्नेमिक एसिड मिले। जिम्नेमिक एसिड को शुद्ध करके उसका विश्लेषण किया गया। इसमें शक्कर को नष्ट करने की शक्ति नहीं पाई गई और ग्लूकोसाइड भी नहीं मिले।

सन् १९२८ में चोपरा, बोस और चटर्जी ने इसके पत्तों के तत्वों का परीक्षण किया। इन्होंने इसमें से जिम्नेमिक एसिड को अलग किया और सोडियम साल्ट भी निकले। बीमारों पर इसका परीक्षण भी किया गया तथा इसमें से एक्झिस्स भी प्राप्त किया गया।

सन् १९३० में महस्कर और केस ने इसका सूक्ष्म रासायनिक विश्लेषण किया। इसके हवा में सुखाये हुए पत्तों में से खनिज तत्व निकाले गये, जो कि खास कर एलकली, फासफोरिक एसिड, फेरिक आक्साइड और मेगनेशियम के रूप में थे। इसमें दो हाइड्रो कारबन, हेंटिया कार्केन, क्रोरोफिल, फाइटोल, रेजिन्स टारटोरिक एसिड, इनोसिटाल, एन्थोक्विनोन नामक तत्व और जिम्नेमिक एसिड पाये गये।

औषधि शास्त्र में उपयोगिता—इस वनस्पति के प्रभाव खरगोश इत्यादि पशुओं के ऊपर आजमाये गये, उनको इसके सब क्यूटेनिस इंजेक्शन दिये गये। इन इंजेक्शनों में जिम्नेमिक एसिड के अतिरिक्त इसके पत्तों का रस, अलकोहालिक एक्स्ट्रैक्ट्स और जिम्नेमिक एसिड से प्राप्त किया जानेवाला सोडियम साल्ट भी था। इन सबके दिये जाने पर भी जानवरों के रक्त में शक्कर की तादाद कम न हुई। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि जानवरों के लीव्हर में शक्कर अधिक बनती है इसी से शायद रक्त की शक्कर कम न हुई हो। मगर यह बात ध्यान में रखने की है कि जिन जानवरों पर यह अजमाई गई उनको ३६ घण्टे से कुछ खाने को नहीं दिया गया था।

यह वनस्पति मधुमेह के कई रोगियों पर भी प्रयोग में ली गई। ये शुद्ध मधुमेह के रोगी थे। इनका २४ घण्टे का मूत्र इकट्ठा किया गया और उसकी जाँच की गई। समय-समय पर रक्त में पाई जाने वाली शक्कर की परीक्षा भी की गई और उसका वजन भी लिया गया।

छः बीमारों में से ४ को इसके पीसे हुए पत्तों का चूर्ण ६० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार दिया गया। इस तरह प्रतिदिन १८० ग्रेन पत्तों का चूर्ण प्रति रोगी को दिया गया मगर उसके बाद भी इस वनस्पति ने रक्त और मूत्र के अन्दर की शक्कर पर कोई प्रशंसनीय प्रभाव नहीं बतलाया। उपचार के अन्त में इनमें से कुछ बीमारों को कुछ लाभ अवश्य नजर आया और उनके रक्त में भी कुछ सुधार हुआ, मगर यह सुधार इतना कम था कि वह खान-पान के संयम से भी पैदा किया जा सकता है।

मतलब यह है कि अभी तक इसके सम्बन्ध में जितने अनुसन्धान किये गये उनमें मधुमेह पर इसके विशेष प्रशंसनीय प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुए। फिर भी इसके सम्बन्ध में निश्चित सम्मति नहीं दी जा सकती। मधुमेह रोग में इसकी वास्तविक उपयोगिता को जानने के लिये इसको अभी और अजमाने की तथा इस पर विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता है।

बनावटें—मधुमेह नाशक गोली—गुड़मार के पत्ते १० तोले, जामुन की गुठली ५ तोले, सूंठ ५ तोले, इन

सबका कपड़छन चूर्ण करके उसको बारम्बार घीगुवार के रस में घोट कर चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से तीन-तीन गोली दिन में तीन बार शहद के साथ देने से मधुमेह रोग में अच्छा लाभ होता है। लगातार एक दो महीने तक इसका सेवन करना चाहिये।

नम्बर २—गुड़मार १८ तोला, सोंठ १८ तोला, बबूल की छाया में सुखाई हुई कोमल पत्तियाँ १८ तोला, जामुन की गुठलियाँ १८ तोला, शिलाजीत ६ तोला, प्रबाल भस्म ४ तोला, रस सिन्दूर ३ तोला, लोह भस्म ३ तोला, अभ्रक भस्म ३ तोला, नागभस्म १ तोला। इन सब चीजों को कूट-पीसकर, कपड़छन करके, उस चूर्ण को घीगुवार के रस, पलाश के फूलों के रस, गुड़मार के क्वाथ और गूलर के दूध की एक-एक भावना देनी चाहिये। उसके बाद इसमें ६ माशे सोने के वर्क मिलाकर खूब कुटाई करवानी चाहिये और फिर इन चारों चीजों की दो-दो भावनाएँ और देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से एक गोली सवेरे और एक गोली शाम को गुड़मार के पत्ते, गूलर की छाल, जामुन की छाल और बबूल की कूँपलों के सम्मिलित क्वाथ के साथ लेने से थोड़े ही दिनों में दुःसाध्य मधुमेह भी आराम हो जाता है। मगर पथ्य में केवल तीन भाग जौ और एक भाग चने को मिलाकर उसके आटे की रोटी मट्ठे के साथ खाना चाहिये अथवा बाजरी की रोटी शहद के साथ खाना चाहिये। मूँग का उपयोग भी किया जा सकता है। मगर शक्कर, गुड़, नमक, खटाई, चावल इत्यादि चीजों को बिलकुल छोड़ देना चाहिये। [जंगलनी जड़ी-बूटी]।

गन्दागिला

नाम—हिन्दी—गन्दागिला। लेटिन—Bawhinia Macrostachya।

वर्णन—यह वनस्पति सिलहट और आसाम में होती है। इसकी शाखाएँ मुलायम होती हैं। इसके पत्ते ७.५ से १० से० मी० तक लम्बे होते हैं। इसकी पंखड़ियाँ मखमली होती हैं। इसका पापड़ा लम्बा और चपटा होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विस्फोटक और चर्म रोगों में तथा जख्मों पर लाभदायी है।

गुरजन

नाम—हिन्दी—गुरजन। गुजराती—गुरजन। बंगाली—गुरजन। आसाम—तिलिया गुरजन। लेटिन—Dipterocarpus Turbinatus [डिप्टेरोकारपस टर्बीनेटस]।

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसकी छाल सफेद खाकी रंग की चिकनी और साफ होती है। इसकी कोमल शाखाएँ रुएँदार और मुलायम होती हैं। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह वृक्ष मध्यभारत, गुजरात, आसाम, चटगाँव, बरमा और अण्डमान में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसमें से निकलने वाली राल [रेजिन] दाद, व्रण और अन्य चर्म रोगों पर लाभदायक होती है। यह मूत्रल है और जननेन्द्रिय तथा श्लेष्मिक झिल्लियों [Mucous Surfacas] को उत्तेजित करती है। सुजाक और मूत्रेन्द्रिय की दूसरी जलन में जिसमें कि कोपेवा आइल उपयोग में लिया जाता है वहाँ पर यह भी उपयोग में ली जा सकती है।

गुरलू

नाम—संस्कृत—गोवेधू, गोजिह्वा, जरगर्द, क्षुद्र। हिन्दी—गुरलू, कसई, गर्गा, गरुन, दबीर गंडुटा, गरह-हुआ संखरू। बंगाल—गुरगुर। बम्बई—कसई बीज। मराठी—रनजोढला, रणमकई। पंजाब—संखलू। राजपूताना—दभिर। बुन्देलखण्ड—गंडुला। सन्थाली—जरगदी, गरुन। मध्यप्रदेश—गल्वी, गंडुला, कसई। लेटिन—Coix Lachryma [कोइक्स लेक्रिमा]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष के समशीतोष्ण प्रांतों में पैदा होती है इसका पौधा ज्वारी के पौधे की तरह होता है। इसका फल लम्बगोल और रंग में नीले तथा भूरे रंग का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति शीतल, मूत्रजनक और शांतिदायक होती है। इसके बीज कड़वे, सुगन्धित, खाँसी में लाभदायक और शरीर के वजन को कम करने वाले होते हैं।

यूनानी मत से इसके बीज पौष्टिक और मूत्रल होते हैं।

केम्पबेल के मतानुसार सन्थाल लोग इसकी जड़ को पथरी को नष्ट करने के लिये देते हैं। मासिक धर्म को तकलीफ में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह रक्त शोधक है। इसकी जड़ें मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करने के काम में ली जाती है।

गुरकमे

नाम—हिन्दी—गुरकमे। पंजाब—रूपबरिक। फारसी—अनबे सालिब। लेटिन—Solanum Dulcamara [सीलेनम डलकेमेरा]।

वर्णन—यह एक प्रकार की पराश्रयी लता होती है। जो काश्मीर से गढ़वाल तक ४००० फीट से ८००० फीट तक की ऊँचाई पर पैदा होती है। इसके पत्ते लम्ब गोल, फूल बैंगनी और फल पकने पर लाल होते हैं। बाजार में इसकी सूखी कोमल डालियाँ और लाल फल बिकते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका फल धातु परिवर्तक, मूत्रल और पसीना लाने वाला होता है। जीर्ण सन्धिवात, उपदंश, कुष्ठ, चर्म रोग और विषर्पिका रोग में यह लाभदायक होता है। इसकी कोमल शाखाएँ नींद लाने वाली, मूत्रल और ग्रंथि रस को उत्तेजना देनेवाली होती हैं। ये सन्धिवात, दुष्ट विद्रधि और गण्डमाला में भी लाभदायक है।

यकृत के बढ़ने पर इसका फल मकोय के बदले में उपयोग में लिया जाता है। यह मूत्रल, विरेचक और जल निस्सारक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को पुष्ट करने वाला, धातु परिवर्तक, मूत्रल और चर्म रोग नाशक है। इसमें ग्लुकोसाइड, उपक्षार और सोलेनाइन रहते हैं।

गुलखेरो

नाम—हिन्दी—गुलखेरो। लेटिन—Althaea Rosea (एलथिया रोजिया)।

वर्णन—यह खतमी की ही एक जाति होती है। खतमी के फूलों को भी फारसी में गुलखेरो और लेटिन में Althaea Officinalis एल्थीया आफिसीनेलिस कहते हैं और इस वनस्पति को एल्थीया रोजिया कहते हैं। यह वास्तव में यूनान देश की वनस्पति है। मगर भारत के बगीचों में भी बोई जाती है। इसके पत्ते मोटे, फूल बैंगनी, गुलाबी और सफेद रंग के होते हैं। ये फूल भी बड़े और प्याले के आकार के होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इस वनस्पति के बीज शांतिदायक, मूत्रल और ज्वर निवारक होते हैं। इसके फूल शीतल और मूत्रल होते हैं। इसकी जड़ें संकोचक और शान्तिदायक होती हैं। इनसे एक प्रकार का शांतिदायक पेय-पदार्थ तैयार किया जाता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार पंजाब में इसके फल सन्धिवात में और इसकी जड़ पेचिश में दी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज शांतिदायक, मूत्रल और ज्वर निवारक होते हैं। इसकी जड़ें संकोचक और शान्तिदायक हैं। इनमें एल्थेइने नामक एक पदार्थ पाया जाता है। इसके गुण-धर्म खतमी से मिलते-जुलते हैं।

गुलचिन

नाम—संस्कृत—देवगंगालु, क्षीरचम्पक। हिन्दी—गुलचिन, गोबरचंपा, गोलैचि। बंगाल—गोरुरचंपा, दलन फूल, गोबरचंपा। बम्बई—खुरचंपा, खैरचंपा, सोनचंपा, गुलचिन। मराठी—खैरचंपा, सोनचंपा। फारसी—गुलसिन। तेलगू—अड़विगनेरू। तामील—इलत्तलरी, कुपियलरी। लेटिन—Plumieria Acutifolia [प्लूमिएरिया एक्यूटीफोलिया]।

वर्णन—गुलचिन के वृक्ष छोटी जाती के और कमजोर होते हैं। इसकी शाखाओं में काफी दूध भरा रहता है। इसके पत्ते हाथ भर लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और बीच में पीले रहते हैं। ये गन्ध रहित होते हैं। औषधि में इसकी छाल, फूल, पत्ते और दूध काम में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कड़वी, तीक्ष्ण, कसैली, तीव्र विरेचक, मूत्रल, सूजन को नष्ट करने वाली, वातनाशक और पार्यायिक ज्वर को रोकने वाली है। यह कुष्ठ, खुजली, व्रण, शूल और जलोदर में उपयोगी है। इसके दूध को ४ से ६ रत्ती तक की मात्रा में शक्कर के पानी के साथ मिला कर देने से पानी के समान पतले दस्त होते हैं और दस्त के साथ बहुत पित्त निकलता है। यह दूध अत्यन्त दाहक और उग्र होता है। कभी-कभी इससे जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। इसलिए इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसकी छाल के क्वाथ से पहले दस्त होते हैं और फिर पेशाब की मात्रा बढ़ती है।

मलेरिया ज्वर में इसके फूल की कली नागर वेल के पान में रखकर देते हैं, जिससे बुखार का आना रुक जाता है। गुलचिन का यह धर्म सिनकोना की छाल के धर्म के समान है।

बदगांठ और सूजन पर इसकी छाल को पीसकर लेप करने से और ऊपर से गरम पत्ते बाँधने से बहुत लाभ होता है। जोड़ों के दर्द और चर्म रोगों पर भी इसकी छाल लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। इसकी जड़ की छाल का काढ़ा बहुत तेज जुलाब है। यह प्राचीन प्रमेह और मूत्र सम्बन्धी रोगों में बहुत लाभदायक है। इसका लेप सूजन को बिखेर देता है। यह अर्बुद और सन्धिवात के शूल को दूर करता है। अगर इसके जुलाब से बहुत तेज दस्त आवें तो उनको बन्द करने के लिए मट्ठा पिलाना चाहिये या मक्खन खिलाना चाहिये।

सुजाक के अन्दर भी इसकी छाल लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों का पुल्टिस सूजन को दूर करने के लिये लगाया जाता है। इसकी छाल नारियल के तेल, घी और चावल के साथ में अतिसार को दूर करने के लिए दी जाती है। इसके फूल की कलियाँ जूड़ी ताप में पान के साथ खाई जाती हैं। इसका रस चन्दन के तेल औरक पूर के साथ खुजली पर लगाया जाता है।

कम्बोडिया में इसकी लकड़ी कृमिनाशक मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु विरेचक, चर्मदाहक, दद्रुनाशक और सुजाक में लाभदायक है। इसमें Agoniadin एगोनियाडिन नामक ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

गुलतुर्रा

नाम—संस्कृत—रत्नगंधि, सिद्धेश्वरा, सिद्धाख्या। हिन्दी—गुलतुर्रा। गुजराती—सधेसरो, कृष्णचूड़। मराठी—संकेश्वर, अकंटक, श्वेतसेवरी। तामिल—मेलकन्ने। कनाड़ी—कोसरी। तेलगू—रत्नगन्धी, सिन तुरई। लेटिन—Caesalpinia Pulcherrinea (सेसलपिनिया पुलचेरीनिया)।

वर्णन—गुलतुर्रे के वृक्ष १५ से २० फुट तक ऊँचे होते हैं। इसके छोटी-छोटी पतली और चमकदार शाखाएँ लगती हैं। इसके पत्ते बबूल के पत्तों की तरह लम्बाई में आधे इंच.तक व चौड़ाई में १-८ इंच तक होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक सफेद फूल वाली जाति और दूसरी पीले फूल वाली। दोनों जातियों के फूल वसंत ऋतु से बरसात तक आते हैं उसके बाद इन पर फलियाँ लगती हैं। ये फलियाँ ४ से ८ इंच तक लम्बी, चपटी, कच्ची हालत में हरी, सफेद रुएँदार और पकने पर भूरे रंग की हो जाती हैं। इनके अन्दर बादामी रंग के बीज निकलते हैं। इन दोनों जातियों में पीले फूल वाले गुलतुर्रे की जड़ गीली हालत में ही गुणकारी होती है मगर सफेद फूल वाले गुलतुर्रे की जड़ गीली और सूखी दोनों हालत में गुणकारी रहती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गुलतुर्रा शीतल, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक और गांठ, नासूर तथा वायु के रोगों को नष्ट करने वाला होता है। यह ज्वरोपशामक भी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह ठण्ढा, चिकना, कड़वा और कसैला होता है। इसके पत्तों को पीस कर लगाने से गाँठ और नासूर मिटते हैं। औषधि में इसके पाँचों ही अङ्ग काम में आते हैं।

फिलीपाइन द्वीप समूह में इसके पत्ते ऋतुस्रावनियामक, ज्वरनिवारक और विरेचक माने जाते हैं। इसका छिलटा ऋतुस्राव नियामक है और गर्भस्राव करने के उपयोग में लिया जाता है। इसके फूलों का शीत निर्यास, ज्वर निवारक और वक्षःस्थल के रोगों को दूर करने वाला होता है। इसे वायु नलियों के प्रदाह, श्वास और मलेरिया ज्वर में काम में लेते हैं।

बिच्छू का जहर और गुलतुर्रा—हाल ही के नवीन अनुसन्धानों में इस वनस्पति के अन्दर बिच्छू का जहर उतारने की अद्भुत् शक्ति पाई गई है। बिच्छू के जहर पर यह औषधि हजारों रोगियों पर प्रयोग में आकर विजयी प्रमाणित हुई है। इसका वर्णन बड़ोदे के भूतपूर्व चीफ मेडिकल आफिसर डाक्टर सर भालचन्द्र कृष्ण भाटबड़ेकर ने सन् १८८० के सितम्बर मास के "थिओसाफिस्ट" नामक पत्र में प्रकाशित करवाया था। उसका सार इस प्रकार है।

"सन् १८७८ के फरवरी महीने में राय बहादुर जनार्दन सखाराम गाडगिल ने बिच्छू के जहर को दूर करने वाली जड़ी का एक टुकड़ा मुझे दिया। इस टुकड़े को देने के पहले वे भी इसे बिच्छू के कई केसों पर अजमा चुके थे। मुझे भी इस जड़ी की परीक्षा के कई अवसर मिले और मुझे उसमें बराबर सफलता मिलती गई। तब मैंने इस जड़ी की विशेष आजमाइश करने के लिए इसके बहुत से टुकड़े करके राज्य के अस्पतालों में परीक्षा के लिये भेज दिये।

भिन्न-भिन्न अस्पतालों में कुल ८०४ मनुष्यों के ऊपर भिन्न-भिन्न जाति के बिच्छुओं के जहर पर इसको अजमाया गया और सभी स्थानों से बाकायदा रिपोर्ट मंगवाई गई। इसका परिणाम यह निकला कि कुल ८०४ रोगियों में सिर्फ ग्यारह रोगियों को फायदा नहीं हुआ। अर्थात् प्रति सैकड़ा ९८.६ बिच्छू के जहर के रोगी इस जड़ी से बिलकुल आराम हो गये। यह परिणाम हर हालत से सन्तोषजनक कहा जा सकता है।

जिस जड़ी में ऐसा दिव्य गुण समाया हुआ है, वह किस वृक्ष की जड़ी है, यह जानना आवश्यक है। इस वृक्ष को संस्कृत में कृष्णचूड़, गुजराती में सवेसरा और हिन्दी में गुलतुर्रा कहते हैं। इस वृक्ष की दो जातियाँ होती हैं। एक सफेद फूल वाली और दूसरी पीले फूल वाली। इनमें से सफेद फूल वाली जाति विशेष गुणदायक होती है। ऊपर जिन ८०४ रोगियों पर जो जड़ियाँ अजमाई गई थीं, उनमें दोनों जातियों की जड़ियाँ शामिल थीं।

मिस्टर गाडगिल का कथन है कि इस झाड़ की जड़ी को खोदने में समय का बड़ा खयाल रखना पड़ता है। तीसरे पहर से लेकर संध्या तक अगर यह जड़ी खोदी जाय तो विशेष गुणकारी होती है। इसी प्रकार और दिनों की अपेक्षा रविवार के दिन खोदी हुई जड़ी विशेष प्रभावशाली होती है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि शाम के समय, वृक्ष में सब दूर समान भाग से रस फिरता होगा।

इस वृक्ष की जड़ी के दो-दो, तीन-तीन इञ्च के टुकड़े काटकर उनको धोकर साफ करके उपयोग में लिये जाते हैं। इनको उपयोग में लाने को रीति दिखने में बड़ी अवैज्ञानिक है, मगर लाभ करने में बिलकुल प्रामाणिक है। जहाँ तक बिच्छू का जहर चढ़ा हो वहाँ से लेकर डंक तक, इस जड़ी को फिराना चाहिये। जड़ी का एक हिस्सा शरीर के नजदीक चमड़ी से नहीं छू सके इतने अन्तर पर रख कर, ऊपर से नीचे की ओर धीरे-धीरे फिराना चाहिये। एक फेरा पूरा होने पर, फिर दूसरा फेरा ऊपर से नीचे की ओर लाना चाहिए। विरुद्धदिशा में अर्थात् नीचे से ऊपर की ओर उसे घुमाना नहीं चाहिये। इस प्रकार करने से थोड़े ही समय में विष की वेदना, नीचे उतरकर डंक पर आ जाती है। डंक पर आने के बाद उस जड़ी को डंक पर रख देना चाहिये। इतने पर भी जलन शांत न हो तो जड़ी को थोड़ा सा घिसकर उस पर लेप कर देना चाहिये, जिससे डंक की वेदना भी दूर हो जायगी। इतने पर भी अगर जहर फिर चढ़ने लगे तो फिर इसी प्रकार प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार करने से अधिकांश केसों में सिर्फ आध घण्टे में जहर उतर जाता है। परन्तु यदि डंक भारी होता है तो एक घण्टा या इससे भी अधिक समय लग जाता है। ऐसे मौके पर रोगी और वैद्य, दोनों को धीरज से काम लेना चाहिये।

इस जड़ी के सूख जाने पर यह जैसा चाहिये वैसा फायदा नहीं करती इसलिये जहाँ तक हो ताजी जड़ का

उपयोग करना चाहिये। अगर सूखी जड़ मिले तो उसको थोड़ी देर तक पानी में भिगोकर फिर उपयोग में लेना चाहिये।

डाक्टर सर भाटवड़ेकर लिखते हैं कि मैंने स्वयं इस जड़ी को १०० बिच्छू के काटे हुए रोगियों पर अजमाया जिसमें ६८ रोगियों को बिल्कुल आराम हो गया।

गुलदाउदी (सेवती)

नाम—संस्कृत—शतपत्रिका, भृङ्गवल्लभा, सेवंती, शिववल्लभा, चन्द्रमल्लिका, इत्यादि। हिन्दी—गुलदाउदी, गुलसेवती। बंगाली—चन्द्रमल्लिका, गुलदाउदी। मराठी—गुलसेवती, तुरसीफल। बम्बई—गुलसेवती, अकुरकरा, चेवटी। पंजाब—गेन्दी, बगोर। तामिल—अकरकम, शावंती। तेलगू—चमन्ती। लेटिन—Chrysanthemum Coronarium (क्रिसेंथेमम कोरोनेरियम,) C. Indica (क्रिसेन्थेमम इण्डिका)।

वर्णन—सेवती का क्षुप होता है। इसकी जड़ अकलकरे की जड़ के समान झनझनाहट पैदा करती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक सादी और दूसरी काँटेवाली। काँटेवाली जाति को संस्कृत में कूजा और हिन्दी में सदा गुलाब कहते हैं। गुलदाउदी की सफेद, नारंगी और पीले फूल के हिसाब से तीन जातियाँ होती हैं। गुलदाउदी के फूल प्राय: सभी बाग बगीचों में शोभा और सुगन्धी के लिए लगाये जाते हैं। लेटिन में इसकी दो प्रकार की जातियों का उल्लेख पाया जाता है। एक क्रिसेन्थेमन कोरोनेरियन और दूसरी क्रिसेन्थेनम इन्डिकम।

गुण, दोष और प्रभाव—[क्रिसेन्थेनम इन्डिकम] आयुर्वेदिक मतानुसार इसके फूल शीतल, कटु, पौष्टिक, वीर्य्यवर्धक, हृदय को पुष्ट करने वाले, उत्तेजक, पित्तशामक, मलरोधक, कांतिवर्धक, अग्निप्रदीपक तथा त्रिदोष, मुखपाक, रक्तपित्त, रुधिर-विकार और दाह को दूर करने वाले हैं। इसका फूल शीतल, कान्ति बढ़ाने वाला और वात, पित्त तथा दाहनाशक है।

इसकी जड़ के धर्म अकलकरे की जड़ के समान होते हैं। इसलिये इसको अकलकरे के बदले में उपयोग में लिया जा सकता है।

इस वनस्पति का यकृत की क्रिया के ऊपर प्रत्यक्ष असर होता है। यह यकृत की क्रिया को सुधार कर पाचन नली और सारे शरीर में जोम [उत्तेजना] पैदा करती है। इसलिये पाचन नली की शिथिलता, अजीर्ण और शारीरिक दुर्बलता में इसका प्रयोग किया जाता है।

यकृत की क्रिया में सुधार होने की वजह से जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर में भी इस औषधि से लाभ होता है। पित्त ज्वर में इसकी फांट बनाकर देने से शरीर का ताप कम होता है। वमन होकर पित्त निकल पड़ता है और पित्त के प्रकोप के लक्षण कम हो जाते हैं। कष्टप्रद मासिक धर्म में भी इसको देने से लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार गुलदाउदी के फूल दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क होते हैं। ये स्वाद में तीखे और खराब होते हैं। ये मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, पेट का आफरा उतारने वाले, रक्त शोधक और यकृत को फायदा पहुँचाने वाले होते हैं। मूत्र सम्बन्धी रोग, पुरातन प्रमेह, कटिवात और प्रदाह में भी ये लाभदायक है।

खजाइनुल अदबिया के मतानुसार यह वनस्पति गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ने में बहुत मुफीद साबित हुई है। इसके सूखे फूल १ माशे से लेकर ६ माशे तक पीस कर समान भाग मिश्री मिलाकर खाने से गुर्दे और मसाने की पथरी टूट कर निकल जाती है अथवा इसके तीन तोले फूलों का क्वाथ बनाकर देने से भी पथरी गलकर निकल जाती है। एक अनुभवी का कहना है कि दाउदी के फूलों की पोटली में चावल बांधकर आधे पक जाने के बाद उस पोटली को उसमें छोड़ दें और जब वे पूरे पक जांय तब उस पोटली को निकाल कर फेंक दें। इन चावलों को खाने से पथरी के बीमार को नुकसान नहीं पहुंचता।

इसका बनाया हुआ काढ़ा मासिकधर्म की रुकावट को दूर करता है। वायु के उदरशूल में लाभ पहुँचाता है। सुजाक और रक्त विकारों में मुफीद है। इसका लेप कफ की सूजन को बिखेरता है। जली हुई जगह पर लगाने से

शान्ति पैदा करता है। इसका अर्क और गुलकन्द सरदी की वजह से पैदा हुई दिल की धड़कन को मिटाता है। दिल को ताकत देता है और प्रसन्नता पैदा करता है। इसके पत्तों का शीतनिर्यास शक्कर के साथ पीने से बवासीर का खून बन्द हो जाता है। इसके हरे पत्तों को पीस कर अण्डकोषों और गुदा के बीच में मलने से कामेन्द्रिय की शक्ति बढ़ती है। कफ की वजह से पैदा हुई ऐसी सूजन जो जोर से बढ़ती जा रही हो, उस पर एक तोला गुलदाउदी के फूलों का तीन माशे सोंठ और एक माशे सफेद जीरा के साथ लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

इसका शीत निर्यास नेत्र रोगों को दूर करने के काम में भी मुफीद समझा जाता है। दक्षिण के निवासी इनको काली मिरच के साथ सुजाक की बीमारी में काम लेते हैं।

गुलचीनी—[क्रिसेन्थेनम कोरोनियम] इसका छिलका विरेचक होता है। इसे गरमी की बीमारी में काम में लेते हैं। इसके पत्ते प्रदाह को कम करते हैं। इसके फूल चेमोमाइल के प्रतिनिधि हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति सुजाक में उपयोगी है। इसमें इसेन्शियल आइल ग्लुकोसाइड और क्रिसेन्थेनम पाये जाते हैं।

उपयोग—मूत्रकृच्छ्र—इसके पत्तों को काली मिरच के साथ पिसकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिट जाता है।

आवेश रोग—इसकी जड़ को कुलिंजन और सोंठ के साथ औंटा कर पिलाने से स्त्रियों का आवेश रोग, मस्तक पीड़ा, तंद्रा और पानीझिरा मिट जाता है।

गांठ—इसकी जड़ को पीसकर पुल्टिस बनाकर बाँधने से कच्ची गांठें बिखर जाती हैं और पकनेवाली जल्दी पक जाती है।

फोड़ा—इसकी जड़ को घिसकर गरम कर पके हुये फोड़े पर लगाने से उनका मुंह खुल जाता है।

गुलदुपहरिया

नाम—संस्कृत—बन्धुजीवक, अर्कवल्लभा, हरिप्रिया, ज्वरघ्न, रक्तपुष्पा, शरद पुष्पा, सूर्यभवना। हिन्दी—दुपहरिया बंगाली—बन्धुलि, दुपहरिया। गुजराती—सौभाग्य सुन्दरी, दुपोरियौ। मराठी—ताम्बड़ी दुपारी। तामिल—नागपू। पंजाब—गुलदुपहरिया। लेटिन—Pentapets Phoenicea (पैन्टापेटस फीनीसिया)।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है, जो उत्तर पूर्वीय भारत, बंगाल और गुजरात में पैदा होती है और भी कई स्थानों पर यह बाग बगीचों में लगाई जाती है यह वनस्पति वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका वृक्ष ६–७ फीट ऊँचा हो जाता है। इसकी शाखाएँ और फूल बहुत सुन्दर होते हैं। इसके फूल सफेद, सिन्दूरी और लाल रंग के होते हैं। ये फूल दुपहर के समय खिलते हैं। इसीलिये इनको दुपहरिया कहते हैं। इसकी फली लम्बी और कुछ गोल होती है। इसके बीजों के ऊपर धब्बे लगे हुए रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मंत से इसका फल मलरोधक, किंचित् गरम, भारी, कफनाशक, ज्वरनाशक तथा वात और पित्त को दूर करने वाला होता है।

चरक के मत से यह औषधि दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश में काम में ली जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में उपयोगी नहीं है।

गुलशब्बो

नाम—संस्कृत—रजनीगन्धा। हिन्दी—गुलशब्बो। मराठा—गुलछड़ी। बंगाल—रजनीगन्धा। पंजाब—गुलशब्बो। तेलगू—नेलशपेगा वरुशोथा। बम्बई—गुलचेरी। लेटिन—Polianthes Tuberosa पोलिएन्थस ट्यूबरोसा।

वर्णन—इस वनस्पति का मूल स्थान मेक्सिको है। यह हिन्दुस्तान के बगीचों में भी बोई जाती है। इसकी जड़ें गठानदार होती हैं। इसके फूल, सफेद, मुलायम, लम्बे और बहुत सुगन्धित रहते हैं। इनका इतर भी निकाला जाता है। औषधि में इसकी जड़ विशेष काम में आती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वस्तु रूखी, गरम, मूत्रल और वमन कारक होती है। इसके कन्द को सुखाकर उनका चूर्ण दूध के साथ देने से अथवा उसको ठंडाई के साथ पीसकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है। इसको हलदी के साथ पीसकर, मक्खन के साथ मिलाकर छोटे बच्चों को होने वाली लाल फुंसियों पर लगाने से बड़ा लाभ होता है। इसको दुर्वा के रस के साथ पीसकर गठान पर लगाने से गठान बिखर जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूल मूत्रल और वमन कारक होते हैं। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

गुलनार

नाम—यूनानी—गुलनार।

वर्णन—इसका वृक्ष अनार के वृक्ष की तरह होता है। इस वृक्ष पर फल नहीं आते किसी-किसी वृक्ष में अगर कभी कोई फल आ जाता है, तो वह बहुत अशुभ माना जाता है। इसके सफेद, लाल और काले रंग के फूल लगते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक जंगली और दूसरी बागी। जंगली जाति बागी जाति से ज्यादा प्रभावशाली होती है। फारस या मिश्र का गुलनार सब से अच्छा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह दस्त को बन्द करता है। शरीर के किसी भी अंग से बहते हुए खून को रोकता है। पौष्टिक है। पित्त की तथा खून की दस्तों को बन्द करता है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं, और दाँत मजबूत होते हैं तथा मुँह की बदबू दूर होती है। इसके पत्तों को पीसकर लगाने से पुराने जखम या फोड़े भर जाते हैं। आँतों के जखम, पेचिश और कफ के साथ खून आने की बीमारी में यह बहुत मुफीद है। इसके काढ़े से योनिमार्ग को धोने से प्रदर और गर्भाशय में लाभ होता है। इसकी मात्रा ७ माशे तक की है। [ख० अ०]

गुनभटारंगी

नाम—हिन्दी—गुनभटारंगी।

वर्णन—इसकी वेल करेले की वेल के समान होती है। इसकी लकड़ी का स्वाद मुलेठी के समान होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क तथा खाँसी और कफ के रोगों में लाभदायक है। पेट के दर्द को फायदा करती है। पित्ती उछल आने में तथा पीनस की बीमारी में भी यह मुफीद है। [ख० अ०]

गुलाब

नाम—संस्कृत—महाकुमारी, शतपत्री, अतिमंजुला, तरुणी, शतदला, इत्यादि। हिन्दी—गुलाब। बम्बई—गुलाब। मराठी—गुलाब। गुजराती—गुलाब। लेटिन—Rosa Centifolia [रोजा सेन्टिफोलिया], Rosa Damascena [रोजा डेमेस्केना]

वर्णन—गुलाब के फूल सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। अत: इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। इसकी सफेद, गुलाबी, आदि कई जातियाँ होती हैं। इसको लेटिन में रोज डेमेस्केना, रोज सेंटीफोलिया, रोज इण्डिका, रोज एल्बा इत्यादि नाम से पहिचानते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से गुलाब कड़ुआ, शीतल, कसैला, दस्तावर, रुचिकारक वात नाशक, कुष्ठ नाशक, मुँह के मुँहासों को दूर करने वाला, सुगन्धित तथा दाह, ज्वर, रक्त पित्त और विस्फोटक को नाश करने वाला होता है।

यूनानी मत—यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क होता है। इसके ताजा फूल दस्तावर और सूखे फूल क़ाबिज होते हैं। यह हृदय को ताकत देकर तबियत में प्रसन्नता पैदा करता है। गर्मी से पैदा हुए सिर दर्द, बुखार,

दिल की धड़कन और वेहोशी में यह लाभदायक है। इसका लेप सूजन को दूर करता है। इसको सूँघने से दिल और दिमाग को ताकत मिलती है मगर कमजोर दिमाग वालों के लिये यह खुशबू नुकसान करती है। इसके सूखे फूलों का चूर्ण चेचक के बीमार के बिस्तर पर डालने से दानों के जख्म जल्दी सूख जाते हैं। इसके अर्क को आँख में टपकाने से गरमी की वजह से आई हुई आँख अच्छी हो जाती है। इसके फूलों का काढ़ा बनाकर कुल्ले करने से मुँह के छाले मिट जाते हैं तथा मसूड़े और दाँत मजबूत होते हैं। इसके फूलों को पीस कर शरबत बनफशा या शरबत जूफा के साथ चटाने से दमे की बीमारी में लाभ होता है। गुलाब के फूलों का सेवन दिल, फेफड़ा, मेदा, गुर्दा, आँतें, गर्भाशय और गुदा को बहुत ताकत देता है। इसके सेवन से मेदा और जिगर के सुद्दे दूर हो जाते हैं और मेदे का ढीलापन मिट जाता है। गुलाब के फूलों को पीस कर योनि मार्ग में रखने से प्रदर में लाभ होता है, गर्भाशय का दर्द मिटता है और योनि तंग हो जाती है। इसके ताजा फूलों को अधिक मात्रा में खाने से मनुष्य की कामशक्ति कमजोर हो जाती है। इसकी जड़ को साँप के काटे हुए स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

इसके ताजे फूलों की मात्रा १ तोले से ३ तोले तक और सूखे फूलों की मात्रा ७ माशे से १४ माशे तक है। इसका प्रतिनिधि बनफशा और दर्पनाशक अनीसून है।

गुलाब

नाम—लेटिन—रोज सेंटिफोलिया। [Rosa Centifolia]

वर्णन—इसका फूल बड़ा, हलका गुलाबी होता है। इसकी लाल और सफेद फूल के हिसाब से दो जातियाँ होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह शीतल, विरेचक, कामोद्दीपक तथा त्रिदोष, पित्त, कोढ़, कफ और रक्त विकार में लाभदायक है। बिच्छू के विष पर भी यह लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ आँतों को सिकोड़ने वाली और घावों को पूरने वाली होती है। यह प्रदाह को कम करती है। इसके पत्ते सिर के घाव और नेत्र रोगों में लगाये जाते हैं। दाँतों के लिये भी ये मुफीद हैं। यकृत की शिकायतों और बवासीर में इनके सेवन से लाभ होता है। इसके फूल दमे में उपयोगी हैं, ये घावों को पकाने के लिये मुफीद हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक, मृदु विरेचक और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है।

गुलाब सफेद

नाम—लेटिन—Rosa Alba. [रोज एल्बा]।

वर्णन—यह एक सफेद जाति का गुलाब होता है, जिसे सेवती भी कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत में इसका फूल कड़वा, कसैला, तीखा, सुगन्धित, शीतल, आँतों को सिकोड़ने वाला, कामोद्दीपक और त्रिदोष नाशक होता है। मुखशोथ, कुष्ठ, पित्त की जलन और रक्त की खराबी को यह दूर करता है। यह कान्तिवर्धक और रुचिवर्धक है।

यूनानी मत से इसके फूल रक्त वर्धक, मृदु विरेचक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले होते हैं। सरदी नजला, सिर दर्द, दाँत का दर्द, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खाँसी, चक्षुरोग और सन्धिवात में यह लाभदायक है।

बेडन पावेल के मतानुसार इसके फूल ज्वर में शान्तिदायक वस्तु की तौर पर दिये जाते हैं। यह हृदय की धड़कन में लाभदायक है।

गुलाब सादा

नाम—लेटिन—Rosa Indica. [रोज इण्डिका]।

वर्णन—इसका फूल बड़ा, सफेद, लाल, पीला और बैंगनी रंग का होता है। यह पौधा चीन में पैदा होता है। चीन में इसका फल घाव, मोच, चोट और दुष्ट व्रणों पर लगाने के काम में आता है।

गुलाब का फल

जब गुलाब के फूल की पत्तियाँ झड़ जाती हैं तब उसका फल नजर आता है। पकने के पश्चात् इसका रंग नजर आता है। बस्तानी गुलाब का फल उन्नाव की तरह होता है। इसका स्वाद हलका मीठा होता है इसके अन्दर रुएँ और लम्बे-लम्बे सफेद दाने होते हैं। [ख० अ०]

गुण, दोष और प्रभाव—गुलाब का फल दूसरे दर्जे में खुश्क और सर्द है। वह कब्जियत दूर करता है। इसको खाने से यकृत, मेदा और हृदय को बल मिलता है। इसको पीसकर दाँतों पर मलने से दांत मजबूत होते हैं। इसके काढ़े से कुल्ले करने से गले की सूजन दूर होती है। घाव से बहते हुए खून पर इसको पीसकर भुर-भुराने से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

इसके अधिक प्रयोग से फेफड़े को नुकसान होकर खाँसी पैदा हो जाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए गुलकन्द और कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

गुलाब फल

यह एक जाति का मेवा है। जो बंगाल और दक्षिण में पैदा होता है। इसमें गुलाब के फूल की सी खुशबू आती है। इसलिये इसको गुलाब फल कहते हैं। इसका फल पिश्ते के बराबर होता है। इस फल पर एक छिलका रहता है। इसके छिलके को छीलने पर भीतर से चिलगोजे की तरह मगज निकलता है। जिसका रंग ऊपर से हरापन लिये हुए सफेद और भीतर से पीला होता है।

यूनानी मत से यह मेवा शीतल, तर और हृदय तथा आमाशय को ताकत पहुँचाने वाला होता। [ख० अ०]

गुलजाफरी पूर्णका

नाम—पंजाब—गुलजाफरी पूर्णका, खेरपोश, कुरु। लेटिन—Limnanthemum Nymphacoides. [लिमनेंथमम निम्फैकोइडस]।

वर्णन—यह वनस्पति मध्य यूरोप से लगाकर चीन तक होती है। यह एक जल में पैदा होने वाला पौधा है। जिसका तना लम्बा, पत्ते गोल और कटी हुई किनारों के, फूल पीले और फली लम्बी गोल होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नियत समय पर होने वाले सविराम मस्तक शूल पर लाभदायक होते हैं।

गुलशाम

नाम—हिन्दी—गुलशाम। मराठी—दशमूलि, गुलशाम। पोरबन्दर—दसमूलि। कच्छी—लसोअसेरिया। लेटिन—Doedalacanthus Roseus [डिडालकेन्थस रेसिअस]।

वर्णन—इसके पौधे दो ढाई हाथ ऊँचे होते हैं। इसकी शाखाएँ चौधारी होती हैं। पत्ते लम्बे और आमने सामने लगते हैं। फूल बैगनी और नीले रंग के होते हैं। इसके फूलों में एक तेज और खराब गंध आती है। इसकी फलियाँ आधा इंच लम्बी होती हैं। यह वनस्पति कच्छ, कोकण और दक्षिण में घनी झाड़ियों और झरनों के किनारे तथा पहाड़ों पर बबूल इत्यादि झाड़ों के नीचे पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ को दूध में उबाल कर देने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है। ज्वर, प्रदर और संधिवात में इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर देने से फायदा होता है। इसकी जड़ गर्भस्थ सन्तान को भी बल देती है।

गुलबांस

नाम—संस्कृत—संध्या कलि, कृष्ण केली, संध्याकाली। हिन्दी—गुलबांस, गुलेब्बास। मराठी—गुलबांस। बंगाल—फेरुलझल। अरबी—गुलबांस। बम्बई—गुलअब्बास। पंजाब—गुलेअब्बास, अब्बासी। फारसी—गुलेबास। गूलिबास। उर्दू—गूलेब्बास। तामील—अतिनरुल, पट रवि। तेलगू—चन्द्रकांता, चन्द्रमल्लि। लेटिन—Mirabilis Jalapa [मिराबिलिस जेलप]।

वर्णन--इसके पत्ते ६-७ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसकी डालियाँ बहुत कमजोर, इसकी जड़ें बहु वर्ष स्थायी और कन्दमय होती हैं। एक बार जमने के पश्चात् इनको नष्ट करना मुश्किल होता है। इसके फूल प्रायः बैंगनी रंग के तथा लाल, पीले और सफेद रहते हैं। यह फूल सायंकाल के समय खिलता है। इसमें खुशबू नहीं होती है। इसके फूल बरसात में खिलते हैं। इसके बीज काली मिर्ची की तरह होते हैं इसकी जड़ पुरानी पड़ने के बाद चोबचीनी की तरह गुणकारी हो जाती है। यह वनस्पति सन् १५६६ में भारतवर्ष में लाई गई है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्ते स्वाद में तीक्ष्ण, गठान को पकानेवाले, कामोद्दीपक, उपदंश में लाभदायक और प्रदाह को कम करने वाले होते हैं।

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। इसकी जड़ दूसरे दर्जे में गरम और तर है। इसके फूल मोतदिल तथा बीज सर्द और खुश्क होते हैं। इसके पत्तों को फोड़े पर बाँधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं। इसके फूल और इसकी जड़ वीर्य को गाढ़ा करने वाली और कामशक्ति को बढ़ाने वाली होती है। यह खून को साफ करती है। कमर के दर्द को मिटाती है। इसके पत्ते जलोदर के रोग में लाभदायक हैं। इनको १॥ तोले की मात्रा में घोटकर दिन में २-३ बार पीने से जलोदर और पीलिया में लाभ होता है। इसकी जड़ को ऊपर से छीलकर १॥ तोले की मात्रा में तवे पर भून कर नमक और काली मिर्च के साथ खिलाने से तिल्ली की सूजन मिट जाती है।

बवासीर के रोग में इसकी जड़ के चूर्ण को समान भाग सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर शहद में चटाने से बड़ा लाभ होता है। कब्जियत की वजह से पित्त कुपित होकर जब शरीर में दाह होता है और चमड़े पर कंडू (खुजली) पैदा हो जाती है उस पर इसके पत्तों के रस की मालिश करने से लाभ होता है। चोट, मोच, सूजन इत्यादि पर इसके पत्तों को ठण्ढे पानी में पीस कर लगाने से शान्ति मिलती है।

फिलीपाइन द्वीप समूह में इसकी जड़ को विरेचक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं। इसके पत्ते व्रण और विस्फोटक रोग पर बाँधे जाते हैं।

डायमॉक के मतानुसार कोकण में इसकी जड़ को सुखाकर, पीसकर मसालों के साथ मिलाकर पौष्टिक वस्तु के बतौर खाने के काम में लेते हैं। शस्त्र के जखम पर इसको लगाने के काम में लेते हैं।

गुल-चांदनी

नाम—यूनानी—गुल चांदनी।

वर्णन—गुल चांदनी एक झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसके पौधे बाग-बगीचों में बहुत लगते हैं। यह पौधे गुड़हल के पौधे की तरह होते हैं। यह रब्बी की मौसम में खिलता है। इसके पत्ते बहुत मुलायम होते हैं। इसकी फलियाँ सींग की तरह मालूम होती हैं। यह सफेद, नरम और मुलायम होती हैं। इसके फूल गुलाब के फूल की तरह मगर उससे छोटे होते हैं। ये चाँदनी रात में खूब खिलते हैं। इसमें नीलोफर की सी खुशबू आती है। इसके बीज कौड़ी की तरह होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि काले दाने का पेड़ और गुल चाँदनी का पेड़ एक ही समान होता है। छोटी किस्म को काला दाना कहते हैं और बड़ी किस्म को चाँदनी का बीज कहते हैं। चाँदनी का गुलकन्द भी गुलाब के फूलों के गुलकन्द की तरह बनाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—चांदनी के फल मोतदिल अर्थात् समशीतोष्ण होते हैं। फल के सिवाय इसके दूसरे सब अंग सर्द और खुश्क होते हैं। इसका फूल हृदय के लिये एक पौष्टिक वस्तु है। यह दिल की धड़कन को दूर करके प्रसन्नता पैदा करता है। तबियत में पैदा होने वाले बहमीले खयालातों को दूर करता है। प्रतिदिन इसके तीन फूल तीन बताशों के साथ लगातार दो हफ्तों तक खाने से गर्मी की वजह से पैदा हुई दिल की धड़कन और दिल की कमजोरी मिट जाती है। इसके अतिरिक्त सिरदर्द, जुकाम, नजला, प्यास, पेशाब की जलन, शर्करा प्रमेह और कामेन्द्रिय की कमजोरी में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसका गुलकन्द भी दिल की धड़कन में मुफीद है।

गुलाब जामन

नाम—संस्कृत—बृहत्फल, महाफल, फलेन्द्र, राजजांबू, शुकप्रिया इत्यादि। हिन्दी—गुलाबजामन। बंगाली—गुलाब जामन, जमफल। बम्बई—गुलाब जामन, सफरजंब। उर्दू—गुलाब जामन। अरबी—तोफा। तामील—पेरुनबल, संबुनबल। तेलगू—जंबूररेदू। लेटिन—Eugenia Jambos [यूगेनिया जंबोस]।

वर्णन—गुलाब जामन का वृक्ष जामुन के वृक्ष से कुछ छोटा होता है। यह विशेषकर बंगाल में पैदा होता है। इसके फल में गुलाब की सी खुशबू आती है, इसलिये इसको गुलाब जामन कहते हैं। इसका स्वाद मीठा होता है। इसके अन्दर का गूदा सफेद रंग का होता है और गुठली गोल और भूरी होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से इसकी छाल मीठी, कसैली, गरम और आँतों को सिकोड़ने वाली होती है। दमा, प्यास, पेचिश, वायु नलियों के प्रदाह और स्वर की खराबी को यह दूर करती है। इसका फल मीठा, स्वादिष्ट, आँतों को सिकोड़ने वाला, भारी और त्रिदोषनाशक होता है।

यूनानी मत में यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। इसका फल दिल, दिमाग और जिगर को तसल्ली पहुँचाता है। पित्त की घबराहट को दूर करता है, मेदे को ताकत देता है। इसके बीज कब्जियत पैदा करते हैं।

इण्डोचायना में इसकी छाल एक उत्तम संकोचक वस्तु मानी जाती है। इस वनस्पति का हर एक हिस्सा पाचक और उत्तेजक माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आँखों की तकलीफ में लाभ पहुँचाते हैं। इसमें जेम्बोसाइन नामक उपक्षार पाया जाता है।

गुल्जड़ू

नाम—यूनानी—गुलजड़ू।

वर्णन—खजाइनुल अदविया में इसके नाम गूलीन, नागनी, मच्छा, लछमी इत्यादि लिखे हुए हैं। मगर इन नामों की तलाश करने पर हमें कहीं इसका पता न लगा।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह एक वेल होती है। इसके पत्ते गिलोय के पत्तों की तरह मगर कुछ मोटे और सख्त होते हैं। इसका फूल सफेदी लिये पीले रंग का होता है। इसके फल में रूई की तरह एक पदार्थ रहता है जो फल फटने पर हवा में उड़ता है। इसके बीज मसूर के दानों की तरह गोल और पतले होते हैं। इसकी डाली तोड़ने पर उसमें से पीलापन लिए हुए सफेद रंग का दूध निकलता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। दूसरी जाति के बीज काले दानों से मिलते-जुलते मगर उनसे छोटे होते हैं। इसकी जड़ लम्बी और मोटी होती है। यह बरसों तक जमीन में रहती है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके प्रयोग से पेट के दर्द, नेत्र रोग, माली खोलिया, ज्वर और सन्निपात में लाभ होता है। गठिया की बीमारी से जब हाथ पाँव सूख जाते हैं, तब इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। बच्चों के उदरशूल, पीलिया और नेत्र रोगों में भी इसका उपयोग होता है।

[ख० अ०]

गुल्ग

नाम—हिन्दी—गुल्ग। गुजराती—परदेशी ताड़ियो। बंगाली—गबना, गुल्ग। तेलगू—कोटिटिकिया, निपमु। लेटिन—Nipa Fruticans [निपा फ्रूटीकेन्स]।

वर्णन—यह वनस्पति बरमा, मलाया और सीलोन में पैदा होती है। इसका बीज मुरगी के अण्डे के बराबर होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—फिलिपाइन द्वीप समूह में इसके पत्ते व्रण के ऊपर तथा कनखजूरे की काटी हुई जगह पर लगाने के काम में लेते हैं।

गुलू (खड़िया)

नाम—हिन्दी—गुलू, बुलि, खड़िया। मराठी—सारढोड़, पांढरुख। गुजराती—कड़ायो, खड़ियो। मध्य-भारत—खड़िया। मध्यप्रदेश—गुलू, गुरलू, कुलू। बम्बई—कढ़इ, चंड़ई, कडोल। तामील—वेलई, पुतली। तेलगू—कवली। उड़िया—गुड़लो। अजमेर—कालरू। लेटिन—Sterculia Urens [स्टेरक्यूलिया यूरेन्स]।

वर्णन—खड़िया या गुलू के झाड़ बहुत बड़े और छाया वाले होते हैं। इसका प्रकांड और शाखाएँ खाकीपन लिए हुए सफेद रंग की होती हैं। इसकी छाल बहुत साफ, चिकनी और मुलायम होती है। इसके पत्ते बड़े और सुन्दर होते हैं। इनके पांच किनारे कटे हुए रहते हैं। इन पत्तों पर पीछे सफेद रंग के बारीक रुएँ होते हैं। इसके फूल बैंगनीपन लिये हुए पीले और हरे रंग के होते हैं। इसके पिण्ड पर कोई निशान कर देने से अथवा किसी का नाम लिख देने से वह नाम जब तक वृक्ष कायम रहता है तब तक बराबर बना रहता है। सरदी के दिनों में इसकी छाल फटकर उसमें से गोंद निकलता है। कई लोगों के मत से यही गोंद कतीरा गोंद के नाम से बाजार में बिकता है। यह गोंद ठण्डे पानी में बिलकुल घुल जाता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वस्तु ग्राही और पौष्टिक मानी जाती है। इसकी जड़ का क्वाथ शक्कर के साथ चिर गुणकारी पौष्टिक वस्तु की तरह दिया जाता है। इसकी छाल का स्वरस पीपर और शहद के साथ देने से खाँसी में बहुत लाभ होता है। इसके बीजों को भूनकर उनका चूर्ण काफी के स्थान पर काम में लिया जाता है। इसका गोंद तिल्ली और फेफड़े के रोगों में लाभदायक है। यह पौष्टिक पाकों में डाला जाता है। फिलिपाइन्स में इसकी जड़ की छाल को पीसकर उसका पुल्टिस घाव, अस्थिभंग और अण्डकोष के प्रदाह पर लगाया जाता है।

इसके पत्ते और इसकी कोमल शाखाएँ पानी के साथ पीस कर फुफ्फस शोथ और फुफ्फुस कोष की सूजन में देने से लाभ होता है। इसका गोंद बम्बई में ट्रागा कांथ के बदले उपयोग में लिया जाता है।

विशेष वर्णन—यह सारा वृक्ष दुष्काल के समय में पशुओं के खाद पदार्थ की तरह काम में आता है। यह एक ऐसा वृक्ष है जो दुष्काल के दिनों में भी नहीं सूखता है। संवत् १६५६ के भयंकर दुष्काल के समय में कच्छ, पोरबन्दर, गुजरात और मध्यभारत में इस वृक्ष ने हजारों भैंसों का पालन किया था।

गुल जलील

नाम—हिन्दी—गुलजलील, असपर्ग। लेटिन—Delphinium Zalil [डेलफीनियम झलील]।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति मूत्रल और वेदनाशून्यता पैदा करनेवाली है। यह पीलिया और जलोदर रोग में उपयोगी मानी जाती है। इसमें अलकेलाइड्स और ग्लुकोसाइड्स पाये जाते हैं।

गुल खुशनज़र

नाम—फारसी—गुल खुशनजर।

गुण, दोष और प्रभाव—यह एक खुशबूदार फूल है। यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह कब्ज पैदा करता है, खून को रोकता है, ताजा जख्मों पर इसको लगाने से खून फौरन बन्द हो जाता है। इसका रस कान में टपकाने से कान की फुन्सियाँ और दर्द मिट जाता है। [ख० अ०]

गुलबकावली

नाम—हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती—गुलबकावली। लेटिन—Clerodendron Fragrans क्लेरोडेण्ड्रोन फ्रेग्रेन्स [कच्छनी वनस्पतियो]।

वर्णन—गुलबकावली के झाड़ ३ से ६ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसकी शाखाएँ और पत्ते आमने सामने लगते हैं और घने भरे हुए रहते हैं। इसके पत्ते मोटे, चौड़े, नोकदार और गंभारी के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों को

मसलने से उनमें खराब गन्ध आती है। गरमी और बरसात में इसके फूलों के गुच्छे वृक्ष पर लद जाते हैं। ये फूल सुगन्धित और सफेद रंग के गुलाब की तरह दोहरी-तीहरी पँखड़ियों वाले हलके गुलाबी और बैंगनी झाँई लिये हुए होते हैं। इनका रूप और गन्ध अत्यन्त मनोहर होता है। इनके फूलों का गुलदस्ता बनाने की जरूरत नहीं होती, क्योंकि ये वृक्ष पर स्वयं ही छोटे और बड़े गुलदस्ते के रूप के लगते हैं। इनके बीज और फल देखने में नहीं आये।

गुण, दोष और प्रभाव—गुलबकावली के फूलों का उपयोग विशेषकर इनकी सुगन्ध के लिये ही होता है। औषधि के उपयोग में इनका प्रयोग बहुत कम होता है। फिर भी यह वृक्ष अरनी और भारंगी की जाति का होने से इसमें उन्हीं के समान गुण दोषों का अनुमान किया जा सकता है। बागों के माली इसके पत्तों का सामान्य उपयोग गाँठ, फोड़े, फुंसी और सूजन पर लगाने के काम में करते हैं। ढोरों के घावों में कीड़े पड़ जाने पर भी इनका उपयोग किया जा सकता है। [कच्छनी वनस्पतियो]।

गुलमेंदी

नाम—हिन्दी—गुलमेंदी। गुजराती—गुलमेंदी, पनतम्बोल। मराठी—तरादा। पंजाब—बेंतिल, हालू, जुक पल्लू, ततूरा, तिलफाड़ा। उर्दू—गुलमेंदी। उड़िया—हाड़ागोड़ा। इंग्लिश—Garden Balsam, Touch-me-not. लेटिन—Impatiens Balsamina [इम्पेटन्स बालसेमिना]

वर्णन—यह एक प्रसिद्ध फूल है। जो लाल, गुलाबी, नीला, सफेद इत्यादि कई रंगों का होता है। इसका वृक्ष ख़ूबसूरत और फूलों से भरा हुआ रहता है। यह प्रायः सभी बाग-बगीचों में लगाया जाता है। इसका पेड़ हाथ डेढ़ हाथ लम्बा होता है। इसके बीज गोल, काले रंग के, बड़ी इलायची के दानों की तरह होते हैं। एक छोटी सी थैली के अन्दर कई बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इनके फूल गरम और तर होते हैं। किसी २ के मत से यह सर्द होते हैं। इसके फूलों को पका कर खाने से कामेन्द्रिय को ताकत मिलती है। इसके पत्तों और शाखाओं का रस आग से जले हुए स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है। इसके बीजों को पीसकर गुदा पर लगाने से कांच निकलने का मर्ज जाता रहत है। इसके फूल मेदे और शरीर को ताकत देते हैं। यह बादी के बवासीर को फायदा पहुँचाता है। इसके लेप से जोड़ों के दर्द में लाभ पहुँचता है।

इसको पेट के अन्दर खाने से यह वमन कारक और विरेचक प्रभाव बतलाता है।

गुवार फली

नाम—संस्कृत—गोराखी, दृढ़बीजा, निशान्धघ्नि, बाकुचि, वक्रशिम्बि, गोरक्ष फलिनि, इत्यादि। हिंदी—गुवार की फली। मराठी—गोवारीचा शेंगा। गुजराती—गवार की फली। लेटिन—Cymopsis Tetragonolova. [सिमोप्सिस टेट्रागोनोलोवा]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में सब दूर तरकारी (शाग) बनाने के काम में आती है। यह एक छोटा पौधा होता है। इसके फूल छोटे और बैगनी रंग के होते हैं। इसकी लम्बी और चपटी फलियां लगती हैं जो हरे रंग की होती हैं। इन फलियों के अन्दर चपटे-चपटे गुवार के बीज रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वैदिक मत से गुवार की फली रूखी, वातकारक, मधुर, भारी, मृदु विरेचक कफकारक, अग्नि दीपक और पित्त नाशक होतो है। इसके पत्ते रतौंधी को दूर करने वाले और पित्त को हरने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह मौतदिल वीर्य वर्धक, कामोद्दीपक, खून में जोश पैदा करने वाली, कफ नाशक और पेट में फुलाव और कब्जियत करने वाली है।

पित्त की दस्तों को मिटाने के लिए इसका काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिये। चोट और मोच पर तिल और गुवार फली को कूटकर गरम करके बाँधने से लाभ होता है। इसके पत्तों के रस को आँख में लगाने से और इसके पत्तों को पकाकर खाने से रतौंधी मिटती है।

ये फलियाँ कमजोर और वात की बीमारी वाले लोगों को नहीं खाना चाहिये। इनसे पेट में आफरा आकर वायु का उदर शूल पैदा हो जाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये हरा धनियाँ देते हैं।

गुनमनि झाड़

नाम—बंगाल—गुनमनि झाड़। लेटिन--Unona Narum [यूनोना नेरम]।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति सन्धिवात, ज्वर और श्लीपद में लाभदायक है। इसमें उड़नशील तेल पाया जाता है।

गूगल

नाम-- संस्कृत -- गुग्गुल, कौशिक, कुम्भि, देवधूप, देवेष्टा, कालनिर्यास, शिवा, वायुघ्न, मरुदिष्ट इत्यादि। हिन्दी--गूगल। गुजराती—गूगल। मराठी—गूगल, कणगूगल। बंगाली—गूगल, गूगुल। तामील—गुग्गल, गूगल। तेलगू—गुगूल, महिषाक्षि। अरबी--अफलेतन, मुकल। फारसी—बोए, जहूदान। लेटिन--Balsamodendron Mukul [बालसेमोड़ेन्ड्रोन मुकुल] Commiphora Mukul [कॉमिफोरा मुकुल]।

वर्णन—गूगल के वृक्ष ४ से १२ फीट तक ऊँचे होते हैं। यह बारहों मास जीवित रहते हैं। इनकी शाखाओं की डंडियों पर से हमेशा भूरे रंग का पतला छिलका उतरता हुआ दिखाई देता है। उस छिलके के नीचे छाल का रंग हरा होता है। इस वृक्ष के छोटी बड़ी, बांकी टेढ़ी, कांटे वाली अनेकों डालियाँ निकलती हैं। इसके पत्ते दलदार और छोटे होते हैं। इसके छोटे और लाल रंग के फूल आते हैं। इसके फल चिकने और चमकदार होते हैं। इनका रंग भूरा और लाल होता है। इस वृक्ष के किसी भी हिस्से को तोड़ने से उसमें एक प्रकार की सुगन्ध निकलती है। इस वृक्ष पर सरदी में एक प्रकार का गोंद निकलता है उसी को गूगल कहते हैं।

यह वृक्ष विशेष कर सिंध, मारवाड़ और काठियावाड़ में पैदा होता है।

गूगल के प्रकार--भाव प्रकाश के मतानुसार गूगल महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म और हिरण्य इन भेदों से पाँच प्रकार का होता है।

महिषाक्ष गूगल भौंरे के रंग के समान काले रंग का होता है। महानील गूगल अत्यन्त नीले रंग का होता है। कुमुद गूगल कुमुद के फूल के समान वर्ण वाला होता है। पद्म गूगल माणिक रत्न के समान लाल रंग का होता है और हिरण्याक्ष गूगल सोने के समान रंग वाला होता है।

महिषाक्ष और महानील गूगल हाथियों के लिए हितकारी है। कुमुद और पद्म गूगल घोड़ों के लिए आरोग्य-प्रद है और हिरण्याक्ष गूगल मनुष्यों के लिए अत्यन्त उपकारी है। कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि मनुष्यों के लिये कहीं २ महिषाक्ष गूगल भी हितकारी होता है।

गूगल की परीक्षा—गूगल के अन्दर कई प्रकार की मिलावटें होती हैं तथा इसके बदले में अक्सर सालर का गोंद भी दिया जाता है क्योंकि इसको भी कई स्थानों पर साली गूगल बोलते हैं। कई स्थानों पर व्यापारी जली हुई लकड़ी के कोयले पर चाहे जिस गोंद का पुट चढ़ाकर उसको गूगल के बदले वेचते हैं। इसलिये गूगल को लेने के पहिले उसकी जाँच अच्छी तरह से कर लेना चाहिये। असली गूगल का रंग नवीन हालत में पीला और पुराना पड़ने पर काला हो जाता है। सालई गूगल का रंग लाल होता है। असली गूगल के टुकड़ों को तोड़ने से वे टूट जाते हैं और उनको पानी में डालने से हरी झांई लिये हुये सफेद रंग का प्रवाही बन जाता है। गूगल को अग्नि पर रखने से वह एक दम नहीं जलता, बल्कि फूलता है और फिर उसमें से बारीक २ टुकड़े फूटते हैं। लेकिन सालर का गूगल अग्नि पर डालने से साफ जल जाता है। पुराना गूगल निःसत्व होकर गुणहीन हो जाता है। इसलिये बाजार से लेते वक्त बिलकुल ताजा गूगल खरीदना चाहिये। यह ऊपर से पीले रंग का और तोड़ने पर भीतर से हरी और लाल रंग की झांई मारता हुआ नजर आता है।

एक दूसरी जाति का गूगल जिसको भैंसा गूगल कहते हैं, कच्छ, सिंध और राजपूताने में बहुत आता है। इसकी जाति भी हलकी होती है। इसका रंग प्रायः हरी झांई लिए हुये पीला होता है। इसकी डालियों पर मैल,

बाल और छाल के टुकड़े चिपके हुए रहते हैं। यह मोम की तरह नरम, लेकिन चीठा और देवदार की तरह गन्ध-वाला होता है। इसको पानी में डालने से हरे रंग का और मैला प्रवाही तैयार होता है और अग्नि पर जलाने से थोड़ा गन्ध देता है। यह भी असली कण गूगल के बराबर गुणकारी नहीं होता।

गुण, दोष और प्रभाव--भाव प्रकाश के मत से गूगल कड़वा, उष्ण वीर्य्य, पित्त कारक, मृदु विरेचक, पाक में चरपरा, रूखा, हलका, हड्डी को जोड़ने वाला, वीर्य्य वर्द्धक, स्वर को सुधारने वाला उत्तम रसायन दीपक और कफ, वात, व्रण, अजीर्ण, मेद वृद्धि, प्रमेह, पथरी, व्याधि, क्लेद, कुष्ठ, आमवात, ग्रंथि रोग सूजन, बवासीर, गण्डमाला और कृमि रोग को नष्ट करने वाला होता है। यह मीठा मधुर रस युक्त होने से वात को, कसैला होने से पित्त को और कड़वा होने से कफ को नष्ट करता है। इसलिये गूगल त्रिदोषनाशक है।

नवीन गूगल वीर्य्य वर्धक और बलकारक होता है। पुराना गूगल शरीर को दुर्बल करने वाला और अनिष्ट कारक होता है।

गूगल को शुद्ध करने की विधि—एक सेर त्रिफला [हरड़, बहेड़ा, और आँवला] और आधा सेर गिलोय में दस सेर पानी डालकर १२ घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उसको आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब आधा पानी जल जाय तब उसको कपड़े में छानकर उस काढ़े को एक लोहे की कढ़ाई में भरकर आग पर चढ़ाना चाहिये। कढ़ाही के दोनों कुन्दों में एक बाँस का डंडा पिरोकर उस डंडे में नये कपड़े की एक पोटली में एक सेर उत्तम कण गूगल भर कर उस पोटली को उस डण्डे पर बाँध देना चाहिये। जिससे वह पोटली उस पानी के अन्दर लटकती रहे। नीचे हलकी २ आँच देना चाहिये। थोड़ी देर में वह सब गूगल उस पोटली में से निकल कर कढ़ाही में चला जायगा और उसका मैल कपड़े में रह जायगा तब उस कपड़े को निकाल कर फेंक देना चाहिये। तत्पश्चात् उस कढ़ाई को उतार कर उसके पानी को दूसरी कढ़ाई में धीरे २ निथार लेवें और नीचे जो कचरा मिट्टी जमा हो उसे भी फेंक दें और साफ काढ़े को लेकर आग पर चढ़ा दें कौंचे से चलाते जांय ताकि कढ़ाई के पेंदे में चिपके नहीं। जब वह क्वाथ गाढ़ा हो जाय तब हाथ पर घी लगा २ कर उसकी गोलियां बना ले। यही शुद्ध गूगल है। हर एक प्रयोग में इसी गूगल को डालना चाहिये।

जिन कढ़ाइयों में गूगल शुद्ध किया जाता है उन कढ़ाइयों को साफ करना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे समय में गाय का ताजा गोबर डालकर उनको साफ करने से बहुत जल्दी साफ हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दरजे में गरम और खुश्क है। यह वायु को नष्ट करता है। सूजन को बिखेरता है। इसका लेप करने से कण्ठमाला बिखर जाती है। इसको सिरके में घोट कर सिर की गंज पर लगाने से लाभ होता है। इसके लेप से हर अंग का दर्द और खिंचावट दूर होती है। पुरानी खाँसी, फेफड़े की सूजन और फेफड़े के दर्द में भी यह लाभदायक है। इसको खाने से और धूनी देने से बवासीर में लाभ होता है तथा गुर्दे और मसाने की पथरी निकल जाती है। रुके हुए मासिक धर्म और पेशाब को भी यह चालू करता है। जहरीले जानवरों के काटने पर भी यह लाभदायक है। दमा, जिगर की कमजोरी, धनुर्वात, सन्धिवात और गृध्रसी रोगों में भी यह लाभदायक है। तीन माशे गूगल को दूध के साथ खाने से मनुष्य की काम शक्ति बढ़ती है। इसका अधिक सेवन फेफड़ा, जिगर और तिल्ली को नुकसान पहुँचाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये केशर और कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

डाक्टर वामन गणेश देशाई के मतानुसार गूगल उत्तेजक, रोग कीटाणु नाशक और कफ नाशक होता है। पुराने कफ रोगों में जिसमें कि बहुत अधिक चिकना और दुर्गन्धित कफ पड़ता है इसको पीपर, अडूसा, शहद और घी के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। यह प्रौढ़ अवस्था के अशक्त और दुर्बल मनुष्यों के लिये विशेष उपयोगी है।

गूगल अग्नि दीपक और आनुलोमिक होता है। इसलिये अग्निमांद्य और कब्जियत सम्बन्धी रोगों में जिनमें कि आमाशय और आंतें शिथिल पड़ जाती हैं, इसको इन्द्र जौ और गुड़ के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

इस वस्तु के अन्दर रक्त शोधक गुण भी रहता है और यह सारे शरीर को उत्तेजना और बल प्रदान करता है। इसलिए उपदंश, सुजाक और पुराने आमवात में इनका उपयोग किया जाता है। गण्डमाला रोग के लिए यह एक

उत्तम औषधि है। यह रक्त के अन्दर श्वेत कणों को बढ़ाता है जिससे गण्डमाला रोग का जोर धीरे धीरे कम होता चला जाता है। गण्डमाला में यह पारा, सोमल और बायबिडंग के साथ दिया जाता है। उपदंश में यह अनन्तमूल के साथ और पुराने आमवात और सन्धिवात में शिलाजीत के साथ तथा सुजाक और जीर्ण वस्तिशोथ में गिलोय के साथ दिया जाता है।

गूगल को पेट के अन्दर देने के पश्चात् यह त्वचा के रास्ते से बाहर निकलता है। जिससे त्वचा की विनिमय क्रिया में सुधार होता है। इसलिए यह सब प्रकार के पुराने चर्म रोगों में बहुत लाभ पहुँचाता है। अगर निरोग मनुष्य इसका सेवन करे तो उनकी त्वचा का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

गर्भाशय के ऊपर भी गूगल की बहुत अच्छी क्रिया होती है यह गर्भाशय का संकोचन करता है। तरुण स्त्रियों के रुके हुए मासिक धर्म को यह चालू कर देता है। गर्भाशय के फूल के द्वारा एक प्रकार का चिकना पदार्थ बहता है और वह स्त्री की सन्तान धारण करने की शक्ति को नष्ट करके बाँझ कर देता है। ऐसी स्त्रियों के लिए गूगल बहुत गुणकारी वस्तु है। इस रोग में इसको रसोत के साथ देना चाहिये।

पाण्डु रोग के ऊपर भी गूगल का बड़ा चमत्कारिक असर होता है। इसके प्रयोग से रक्त में श्वेत कणों की वृद्धि होती है और ज्यों २ श्वेत कण बढ़ते हैं त्यों २ रक्त की रोग जन्तु नाशक शक्ति बढ़ती जाती है और रोगी की घी, तेल इत्यादि स्निग्ध पदार्थों को पचा कर खून में जज्ब करने की शक्ति बढ़ती जाती है, जिससे पांडु रोग नष्ट होता हुआ चला जाता है। इस रोग में इसको लोह-भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गूगल को कूट कर उसका घी में मलहम बनाकर व्रण पर लगाने से व्रण रोपण और व्रण शुद्धि बहुत अच्छी होती है। ऐसे हठीले व्रण जो कभी नहीं भरते हैं और सड़ते जाते हैं, उनमें यह मलहम अच्छा काम करता है। क्षयरोग के जन्तुओं से पैदा होने वाली गलग्रन्थियों पर गूगल को गरम पानी में उबाल कर प्रतिदिन २—४ बार गाढ़ा २ लेप करने से अच्छा लाभ होता है। इससे ग्रन्थियों की सूजन कम होती है। गूगल का लेप हिचकी रोग पर भी अच्छा काम करता है। देहली की ओर एक प्रकार का विशेष फोड़ा लोगों को होता है, जिसको देहली सोअर्स (Delhi-Sores) कहते हैं। उस पर गूगल, गन्धक, सुहागो और कत्थे का मलहम बनाकर लगाते हैं।

कर्नल चोपरा का मत—गूगल एक वृक्ष से प्राप्त होने वाला गोंद है। इसका वृक्ष ४ से ६ फीट तक ऊँचा होता है। यह राजपूताना, सिंध, पूर्वी बंगाल और आसाम में पाया जाता है।

इसके रासायनिक तत्वों का पूर्ण अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। मगर इसी से मिलती जुलती एक जाति "बेलसेमोण्डेड्रोन मोरा" जो कि उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण अरब में पैदा होती है उसका अध्ययन हो चुका है। इसमें २७ से ५० प्रतिशत तक रेजिन, २.५ से १० प्रतिशत तक उड़नशील तेल और कुछ कटु तत्व पाये जाते हैं। गूगल में भी साधारणतया इसी प्रकार के तत्व होना चाहिये। कुछ बारीक बातों में चाहे अन्तर हो सकता है।

चिकित्सा शास्त्र में गूगल की उपयोगिता–इस वस्तु के गुण कोपेवा और कवाबचीनी से मिलते जुलते हैं यह फटे हुये चमड़े पर और श्लेष्मिक झिल्लियों पर अपना कृमिनाशक प्रभाव दिखलाता है। अन्तः प्रयोग में लिया जाने पर यह अग्नि दीपक, शांतिदायक, आफरा दूर करने वाला और पाचन शक्ति को बलवान बनाने वाला सिद्ध होता है। इसके लेने से पेट में एक दम गरमी मालूम होने लगती है।

दूसरे सभी ओलियोरेजिन्स की तरह यह भी रक्त के श्वेत कीटाणुओं (Leucocytes) को और फेगोसाइटोसिस नाम के कोषाणुओं को भी बढ़ाता है। गुर्दा और श्लेष्मिक झिल्लियों को यह उत्तेजित करता है और उनके ग्रन्थिरसों के कृमियों को नष्ट कर देता है। यह पसीना लाने वाला, मूत्रल, उत्तेजक और कफ निस्सारक पदार्थ है।

यह गर्भाशय को उत्तेजित करता और मासिक धर्म को नियमित कर देता है। इसको बहुत समय तक सेवन करने से भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती। कभी २ इससे गुर्दे में जलन पैदा हो जाती है और शरीर पर कोपेवा की तरह कुछ फुन्सियां उठ जाती हैं। लेकिन इसका सेवन बन्द करते ही फौरन मिट जाती है।

इसका लोशन दुष्ट व्रणों को भरने तथा दाँतों की सड़ान, मसूड़ों की सूजन, पायरिया; तालुमूल की ग्रन्थिका

का जीर्ण प्रदाह, कण्ठ नली की जलन और गले के व्रणों को मिटाने के काम में लिया जाता है। यह लोशन, इसके २ ड्राम टिंचर को १० औंस पानी में मिला देने से, तैयार हो जाता है।

प्राचीन अग्निमांद्य रोग में यह अग्निदीपक वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है। यह उदर यन्त्रों के ढीलेपन को और पेशी की दुर्बलता को भी मिटा देता है। पुराना नजला, अतिसार, आंतों की सूजन, आंतों के व्रण और बड़ी आंत के पुरातन प्रदाह में बहुत लाभदायक है।

फेफड़ों के क्षय में यह एक उत्तेजक और कृमिनाशक पदार्थ की तरह दिया जाता है। इसके सेवन से ज्वर कम होता है, भूख बढ़ती है, कफ के कृमि नष्ट हो जाते हैं और जीवन शक्ति को बल मिलता है।

जलोदर और पांडुरोग में तथा फुफ्फुस के व्रण प्रदाह में भी यह बहुत उपयोगी पदार्थ है। स्नायविक दुर्बलता और साधारण कमजोरी को दूर करके यह कामोद्दीपन की शक्ति को भी बहुत बढ़ाता है।

स्वर नली के प्रदाह, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खाँसी और निमोनिया में प्रति ४-६ घण्टे के बाद इसकी मात्रा देने से अच्छा लाभ होता है। इसे अकसर सेलीसाइलेट ऑफ सोडियम के साथ मिलाकर काम में लेते हैं।

कुष्ठ के रोगियों की हालत को भी यह बहुत हद तक सुधारता है और इस व्याधि से पैदा हुए दूसरे विकारों को भी मिटा देता है। मूत्राशय की जलन, सुजाक और पेडू की सूजन में तीव्र लक्षणों के दूर हो जाने पर इसको देने से अच्छा लाभ होता है। गर्भाशयावरण की जीर्ण सूजन में तथा नष्टार्तव में भी यह लाभ दायक है। यदि काफी तादाद में दिया जाय तो वह श्वेत प्रदर और अत्यधिक रजःस्राव में फायदा पहुँचाता है।

गूगल धूप देने के उपयोग में लिया जाता है। इसकी धूप देने मात्र से ही ज्वर, नजला, स्वर नाली का प्रदाह, नलियों का जीर्ण प्रदाह और क्षय में लाभ होता है।

इसके गुणों का कारण इसका ओलियों रेजिन ही मालूम पड़ता है। इसमें सुगन्धित तत्व रहने के कारण ही इसका धुँआं भी अपना गुण बतलाता है।

वैद्यकल्पतरु के संपादक स्वर्गीय जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी ने गूगल की सर्वोत्तम बनावट योगराज गूगल पर सन् १६१४ के वैद्य कल्पतरु में एक अध्ययन पूर्ण लेख लिखा था। उसका सारांश हम नीचे दे रहे हैं।

"योगराज गूगल की बनावटों में मुख्य वस्तुएँ गूगल, त्रिफला और भस्में हैं। वैद्यक शास्त्रकारों ने गूगल के अन्दर वातहर, शोधक, सारक, रोपक, कृमिनाशक और पौष्टिक गुण बतलाये हैं।

वातहर शब्द का अर्थ केवल वायु और पवन के दोषों को हरने वाला ही नहीं होता है। बल्कि ज्ञानतन्तु और गतितन्तु की खराबी को दूर करके उनका सुधार करना यह भी वातहर शब्द के अन्दर सम्मिलित है।

गूगल मस्तिष्क के तन्तुओं को पोषण देता है। जिस वात व्याधि में मज्जा तन्तु [Nerves] कमजोर पड़ जाते हैं और उनकी गति मन्द हो जाती है, उस वात व्याधि में गूगल अपना चमत्कारिक असर दिखलाता है। ऐसी जीर्ण वात व्याधियों में डाक्टर और हकीम जहरी कुचले की बहुत तारीफ करते हैं और उसका बहुत उपयोग भी करते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि जहरी कुचला वास्तव में एक बहुत अच्छा "नरवाइन टानिक" है पर इस बात को न भूलना चाहिये कि कुचला एक विष है और गूगल विष नहीं है। कुचले को २-४ महीने तक लगातार खाने से जिनको वात व्याधि या धनुर्वात नहीं है उनको भी होने का डर रहता है। मगर गूगल को २-४ बरस लगातार खाने पर भी किसी तरह की हानि की आशंका नहीं रहती।

अपने वातहर गुण की वजह से गूगल बिगड़े हुए और कमजोर पड़े हुए तन्तुओं को बल देता है। मगज के यह तन्तु सारे शरीर में फैले हुए रहते हैं। विशेष कर बड़े २ मर्म स्थानों में तो इनका जाल बिछा हुआ रहता है। उदाहरणार्थ स्त्रियों का गर्भस्थान इन तन्तुओं से व्याप्त होने की वजह से गूगल की गर्भ स्थान पर बहुत अच्छी क्रिया होती है। जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों के ऋतुदोष सुधारने में और उनको सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाने में गूगल बहुत सहायक होता है। यह बात शास्त्र और अनुभव से सिद्ध है।

वातहर के सिवाय गूगल में कृमिनाशक गुण भी बहुत उत्तम है। यह अफसोस की बात है कि पाश्चात्य ढंग से चिकित्सा करने वाले इस देश के देशी डाक्टर गूगल के समान कृमिनाशक और सर्वोत्तम द्रव्य की तरफ लक्ष्य नहीं देते। गूगल अति उत्तम कृमिनाशक द्रव्य है। ऐलोपैथी की कृमिनाशक दवायें अक्सर जहरीली होती हैं मगर गूगल जन्तुघ्न होते हुए भी एक निरुपद्रवी औषधि है। बिगड़े हुए रक्त को सुधारकर शरीर के अन्दर संचित भिन्न-२ दोषों और जन्तुओं को नष्ट करने में यह वस्तु बहुत ही शक्ति शालिनी है। जब शरीर के मर्मस्थान बिगड़ते हैं और उनका योग्य प्रतिकार नहीं होने से शरीर की रस, रक्त, मज्जा, हड्डी, वीर्य्य इत्यादि सप्त धातुएं उत्तरोत्तर दूषित होती रहती हैं। उस समय योग राज गूगल आशीर्वाद की तरह काम करता है। शरीर के अन्दर के मर्म स्थानों के दोषों को सुधारने के लिए यह एक बड़े से बड़ा निर्भय डिसइनफेक्टंट [Disinfectant] अर्थात् जन्तुघ्न उपाय है।

वातहर तथा कृमिनाशक गुण के अतिरिक्त गूगल में रोपक, सारक और पौष्टिक गुण भी रहते हैं। शरीर के अन्दर संचित दोषों को खोदकर निकाल देने का यह एक विश्वसनीय उपाय है।

गूगल के सिवाय योगराज गूगल का प्रधान द्रव्य त्रिफला अर्थात्, हरड़, बहेड़ा और आंवला है। ये तीनों आयुर्वेद की महान रसायन औषधियाँ हैं। यह तीनों शोधक, सारक और धातु परिवर्तक है। त्रिफला गूगल की उष्णता और उग्रता को कम करके उसके गुणों की वृद्धि करता है।

इस प्रकार गूगल और त्रिफला का यह महान योग चर्मरोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, संग्रहणी और भगंदर के समान दुष्ट व्याधियों को नष्ट करने में समर्थ हों तो इसमें विशेष आश्चर्य की बात नहीं। अगर योगराज गूगल को लम्बे समय तक उचित पथ्य और परहेज के साथ सेवन किया जाय तो यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि वैद्यक शास्त्र में बतलाये गए बहुत से रोगों में यह औषधि बहुत उत्तम परिणाम बतलाती है।

योगराज गूगल की बनावट में तीसरी मुख्य वस्तु उसमें पड़ने वाली धातुओं की भस्में हैं। इन भस्मों में से लोह और मंडूर भस्म रक्त को शुद्ध करती है। चाँदी की भस्म मगज को ताकत देती है। अभ्रक, बंग और नाग भस्म भिन्न २ मर्म स्थानों को बल देती है और रस सिन्दूर पारे की बनावट होने की वजह से सब रोगों में योग वाही के रूप में कार्य करती है।

यह योगराज गूगल त्रिदोषनाशक माना जाता है। पित्त का कार्य पाचन क्रियाओं को करने का है। इस कार्य में अगर शिथिलता हो जाय तो योगराज गूगल उसको दूर कर देता है। इसी प्रकार कफ का कार्य सारे शरीर की क्रिया को व्यवस्थित रखकर शरीर में स्निग्धता और तृप्ति प्रदान करने का होता है। इस कार्य में भी योगराज गूगल सहायता करता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि पित्त रस को उत्पन्न करने वाली आशयो सिस्टम्स को योगराज नियमित करता है। इन दोनों दोषों को नियमित करने की शक्ति योगराज गूगल में इसलिये है कि वह मज्जा तन्तु [Nerves] और मज्जा तन्तु समूह [Nerve Centers] के ऊपर अपना सीधा प्रभाव बतलाता है। मज्जातन्तुओं पर असर होने की वजह से सारे मर्म स्थान और पित्त तथा कफ की क्रिया नियमित हो जाती है। क्योंकि पित्त और कफ की क्रिया मज्जा तन्तु और वायु चक्रों की क्रिया के अधीन रहती है। इसलिए आयुर्वेद के अन्दर कफ और पित्त को पंगु बतलाया गया है। सच बात तो यह है कि शरीर का सारा व्यापार वात तंत्र अर्थात् नर्व्ह सिस्टम के अधीन है और योगराज गूगल उसी वात तंत्र पर अपना सीधा असर डालकर उसकी क्रिया को व्यवस्थित कर देती है और उसी के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह सारे शरीर के दोषों को दूर करती है।

झंडू फार्मेसी के संस्थापक सुप्रसिद्ध वैद्य झण्डू भट्ट जी अपने जामनगर के धन्वन्तरि-धाम पर आने वाले सभी रोगियों को योगराज गूगल देते थे और इसके त्रिदोष नाशक गुण का अनुभव करते थे। उन्होंने कितने ही असाध्य रोगियों को पांच पांच और दस दस रतल योगराज गूगल खिला कर आराम किये थे।

गोहिरे का विष और गूगल—गोहिरा एक अत्यन्त जहरी प्राणी होता है। इसका आकार बड़ी छिपकली की तरह होता है। अगर यह किसी मनुष्य अथवा पशु को काटता है तो वह तुरन्त मर जाता है। ऐसा कहा जाता है कि सब जानवरों के जहर की औषधि होती है मगर गोहिरे के विष की कोई औषधि नहीं है। मगर आयुर्वेद महा-

महोपाध्याय रसायन शास्त्री भागीरथ स्वामी ने धन्वन्तरि पत्र के सिद्ध योगांक में इस विष के लिये गूगल का एक प्रयोग बतलाया है, वह इस प्रकार है।

अगर दैवयोग से किसी को गोहिरे ने काटा हो तो उसको गूगल उबाल कर पिला देना चाहिये अथवा उसकी गोली बनाकर खिला देना चाहिये। इससे अगर किसी के प्राण कण्ठ में भी आकर उनका नाम मात्र शेष रह गया होगा तो भी वह मनुष्य बच जायगा। ज्यों २ इस औषधि का असर होता जाता है त्यों २ विष का विकार कम होकर बेहोश मनुष्य होश में चला आता है। इसलिये जहाँतक पूरी तरह से जहर का असर दूर नहीं हो जाय तब तक पाँच २ अथवा दस २ मिनट के अन्तर से १॥ माशे से लेकर तीन माशे तक गूगल खिलाते अथवा पिलाते रहना चाहिये। अगर किसी घर के अन्दर वा भीतर के ऊपर अथवा दूसरे स्थान पर गोहिरे का निवास हो तो उस स्थान पर गूगल की धूप देने से उसका धुआँ पहुँचते ही गोहिरा बेहोश होकर गिर जाता है और फिर कभी उस स्थान पर नहीं आता है।

बनावटें—महा योगराज गूगल—सोंठ, पीपलामूल, पीपर, चव्य, चित्रक की जड़, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, सफेद जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढल, बायबिडंग, गज पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, घोड़ा बच्च और मूर्वा इन २० औषधियों को एक २ तोला और त्रिफला ४० तोला लेकर सबको कूट छान कर चूर्ण कर लें। इसके बाद ६० तोला उत्तम शुद्ध की हुई कण गूगल को लेकर उसको पाव भर पानी के साथ कढ़ाही में चढ़ाकर नीचे हलकी आँच जलावें जब गूगल पानी में घुलकर अवलेह के समान हो जाय तब ऊपर लिखा ६० तोला चूर्ण उसमें मिला दें और उसके साथ ही ४ तोला रस सिंदूर, २ तोला स्वर्ण भस्म, ४ तोला चाँदी की भस्म, ४ तोला बंग भस्म, ४ तोला नाग भस्म, ४ तोला फौलाद भस्म, ४ तोला शत पुटी अभ्रक भस्म और ४ तोला मण्डूर भस्म भी उसमें मिला दें। उसके बाद उस सब औषधि को पत्थर के खरल में डाल कर चार २ तोले घी डालते हुए कूटना शुरू करें जब एक लाख चोट उसपर पड़ जाय और वह एक दिल हो जाय तब उसकी आधे आधे माशे की गोलियां बना लें। इसी योग को महायोगराज गूगल कहते हैं। इस योग में से आठों प्रकार की धातु भस्मों को निकाल देने से लघु योगराज गूगल बनता है।

इस बनावट को बनाने में मुखय बात ध्यान में रखने की यह है कि इसमें जिस गूगल का उपयोग किया जाय वह बहुत उत्तम और असली होना चाहिये। इसका दूसरा प्रधान अंग त्रिफला है वह भी बहुत उत्तम और नवीन देख कर लेना चाहिये। औषधियां भी उतनी ही उत्तम और नवीन देख कर लेना चाहिए। औषधियाँ जितनी ही उत्तम और भस्में जितनी ही विश्वसनीय होंगी, योगराज गूगल उतना ही लाभदायक होगा।

योगराज गूगल की अनुपान विधि—वातरक्त—योगराज गूगल को वृहत्मंजिष्ठादि क्वाथ अथवा गिलोय के साथ देने से वात रक्त के समान दारुण रक्त रोग में भी बहुत लाभ होता है।

प्रमेह—दारु हलदी के क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से प्रमेह में लाभ होता है।

पांडु रोग और सूजन—गो मूत्र के साथ योगराज गूगल को देने से पांडु रोग और सूजन नष्ट होती है।

मेदवृद्धि—शहद के साथ योगराज गूगल को देने से मेद वृद्धि के रोग में लाभ होता है। मेद रोग में चरबी के थर जम जाते हैं। इनको नष्ट होने में बहुत लम्बा समय लगता है। इसलिये इसमें धैर्य के साथ बहुत दिनों तक इस औषधि का सेवन करना चाहिये। अगर योगराज गूगल के साथ शिलाजीत भी ली जाय तो विशेष लाभदायक हो सकती है।

प्रसूति रोग—प्रसूति रोग में दशमूल क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से अच्छा लाभ होता है।

नेत्र रोग—त्रिफला के क्वाथ के साथ योगराज गूगल को लेने से कितने ही प्रकार के नेत्र रोग दूर हो जाते हैं।

उदर रोग—पुनर्नवादि क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से सब प्रकार के उदर रोग मिटते हैं।

नष्टार्तव—स्त्रियों का गर्भस्थान जब वायु, कफ और चर्बी से आच्छादित हो जाता है तब उनको मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है और सन्तान होना भी रुक जाता है। ऐसे समय में उनको एक दो लंघन देकर एक दो महीने तक योगराज गूगल का सेवन कराने से बड़ा सन्तोषजनक परिणाम दृष्टि गोचर होता है।

स्नायु शूल—शरीर के भिन्न २ अंगों में स्नायुशूल [Pain Neuralgia] होता हो और उसमें दूसरी औषधियाँ निष्फल हो गई हों तो योगराज गूगल को देने से जरूर लाभ होता है। अगर ऐसे शूल का मूल कारण गर्मी [Syphilis] हो तो उस हालत में बृहत्मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से बहुत लाभ होता है, मगर धीरज के साथ दवा लेते रहना चाहिये।

कुष्ठ—नीम की छाल के क्वाथ के साथ योगराज गूगल का सेवन करने से कष्टसाध्य कुष्ठ भी आराम होते हैं।

इसके अतिरिक्त उदावर्त, क्षय, गुल्म, मृगी, मंदाग्नि, श्वास, खाँसी, अरुचि तथा मनुष्य का वीर्य दोष इस महान औषधि के सेवन से दूर होते हैं।

किशोर गूगल—त्रिफला १२८ तोले, गिलोय ४२ तोले ८ मा०, इन दोनों चीजों को लोहे की कढ़ाई में डालकर पकावें जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको उतार कर छान लें। फिर उस क्वाथ में उत्तम शुद्ध गूगल ४२ तोला ८ माशा मिलाकर आगपर चढ़ा दें और कलछी से बराबर चलाते जाँय। जब वह अवलेह के समान गाढ़ा हो जाय तब उसमें हरड़ १० तोला ८ माशा, गिलोय ५ तोला ४ माशा, सौंठ ३२ माशे, मिर्च ३२ माशे, पीपर ३२ माशे, बायबिडंग ३२ माशे, निसोथ १६ माशे तथा जमाल गोटे की जड़ १६ माशे। इन सबको मिलाकर घी का हाथ लगा लगाकर खूब कूटें, जब एक दिल हो जाय तब तीन २ माशे की गोलियाँ बनाकर चिकने पात्र में रख दें। इन गोलियों में से एक से लेकर दो गोली तक गरम जल, दूध या मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ युक्ति पूर्वक देने से सब प्रकार के कुष्ठ, व्रण, गुल्म, प्रमेह पिड़िका, उदर रोग, मंदाग्नि, खाँसी, सूजन और पांडु रोग नष्ट होते हैं। यह किशोर गूगल उत्तम रसायन है और इसका सेवन करने वाला किशोर अवस्था के समान बल को प्राप्त करता है।

त्रिफला गूगल—त्रिफले का चूर्ण १६ तोला, छोटी पीपर का चूर्ण ५ तोला ४ माशा, गूगल शुद्ध २६ तोला ८ माशा इन सब को एक में मिलाकर खूब कूटें। एक दिल होने पर चार चार माशे की गोलियाँ बना लें। इनमें से रोगी के बलाबल के अनुसार एक से लगाकर दो गोली उचित अनुपान के साथ देने से भगन्दर, गुल्म, सूजन और बवासीर का नाश होता है।

काँचनार गूगल—कचनार की छाल ५३ तोला ४ माशे, त्रिफला ३२ तोला, सौंठ, मिर्च और पीपल तीनों मिलाकर १६ तोला, बरना की छाल ५ तोला ४ माशे, इलायची, तज और तेजपात प्रत्येक सोलह २ माशे। इन सब चीजों का बारीक चूर्ण करके चूर्ण के वजन के बराबर ही शुद्ध गूगल लेकर उसको थोड़े पानी में डाल कर आग पर गला लें और गल जाने पर यह सब चूर्ण उसमें मिला कर खरल में खूब कुटवावें, उसके बाद चार २ माशे की गोलियाँ बना लें इस गूगल को उचित अनुपात के साथ देने से गण्डमाला, अर्बुद, गाँठ, व्रण, भगन्दर, कुष्ठ, अग्निमांद्य, गुल्म इत्यादि सब रोग नष्ट होते हैं।

गोक्षरादि गूगल—गोखरू १६० तोला लेकर ६०० तोला पानी में औटावें। जब आधा जल रह जाय तब उसमें ४२ तोला शुद्ध गूगल डालकर कलछी से चलावें, जब अवलेह की तरह गाढ़ा हो जाय, तब उसमें सौंठ, मिर्च पीपर, हर्र, बहेड़ा, आंवला और मोथा ये सब औषधियाँ प्रत्येक सोलह २ माशे लेकर बारीक चूर्ण करके मिला दें और चार २ माशे की गोलियाँ बना लें। यह गोक्षुरादि गूगल उचित अनुपानों के साथ प्रमेह, मूत्र कृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वातरक्त, रक्तपित्त, वीर्य दोष और पथरी को नष्ट करता है।

सिंहनाद गूगल—त्रिफला, खस, बायबिडंग, जमाल गोटे की जड़, पुनर्नवा, कमल, चित्रक, सौंठ, गिलोय रासना, हलदी, देवदारु, पीपला मूल, इलायची, गज पीपल यह सब औषधियाँ सोलह २ माशे लेकर चार सेर जल में इनका क्वाथ बना लें, जब आधा जल रह जाय तब उस जल को छानकर उसमें २० तोला गूगल मिलाकर कलछी से चलावें। जब अवलेह की तरह गाढ़ा हो जाय तब उसमें सौंठ, मिरच, पीपर, बायबिडंग, गिलोय, दारुहलदी, हर्र, तेजपात इलायची, तज और निसोथ इन सब औषधियों का सोलह २ माशे चूर्ण मिलाकर खूब कुटवावें और फिर किसी बर्तन में बन्दकर एक महीने तक किसी धान के ढेर में गाड़ दें और फिर उपयोग में लें। इस सिंहनाद गूगल के सेवन से तिल्ली की वृद्धि, सूजन, उदर रोग, नाभि व्रण, बवासीर, संग्रहणी, वातरक्त, कुष्ठ और कष्टसाध्य पांडु रोग भी दूर होते हैं।

चन्द्रप्रभा गूगल—बेल का गूदा, सौंठ, मिरच, पीपर, हर्र, बहेड़ा, आँवला, सेंधा नमक, संचर नमक, काला नमक, सजी खार, जवाखार, चव्य; निसोथ, पीपला मूल, नागर मोथा, जीरा, सनाय, धनियां, तज, करंज, देवदारु, गज पीपल, चिरायता, जमाल गोटे की जड़, हलदी, तेजपात, इलायची, अतीस, नीम ये सब औषधियाँ सोलह २ माशे, बंसलोचन ५ तोला ४ माशे, लोह-भस्म ५ तोला ४ माशे, गूगल ५४ तोला, शिलाजीत ४२ तोला, मिश्री २२ तोला। इन सब को एक दिल करके चार २ माशे की गोली बना लें।

इनमें से प्रतिदिन एक गोली घी अथवा शहद के साथ सेवन करने से बवासीर, प्रदर, विषमज्वर नासूर, पथरी, मन्दाग्नि, उदर रोग, पांडुरोग, कामला, क्षय, भगन्दर, प्रमेह पिडिका, गुल्म, अरुचि, वीर्य दोष, इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन से वीर्य और बल बढ़कर वृद्ध मनुष्य भी युवा के समान हो जाता है।

गूगलधूप

नाम—संस्कृत—गूगल धूप। कनाड़ी—गूगल धूप। तामील—पेरुमरम। मराठी—हेम्मर, गूगलधूप। तेलगू—पदमनु। लेटिन—Ailanthus Malbarica [एलेन्थस मलेबेरिका]।

वर्णन—यह बड़ा वृक्ष कर्नाटक, कोंकण, पश्चिमीय घाट, भारत वर्ष की दक्षिणी टोंक और लंका में पैदा होता है। इसके पत्ते १ से १॥ फुट तक लम्बे, फूल सफेद, छाल मोटी, खरदरी, लकड़ी हलकी और नरम तथा फल लाल बादामी रंग का होता है। इसकी छाल में चीरा लगाने से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो काले और खाकी रंग का सख्त और अपारदर्शक होता है। इसको दक्षिण में लादन, ऊद मलयालय में मट्टिपाल, तेलगू में भंट्टिपाल और कनाड़ी में बागा धूप कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—गूगल धूप स्नेहन, संग्राहक, उत्तेजक और कफ नाशक होती है। इसकी छाल पौष्टिक, संग्राहक और ज्वर नाशक होती है। यह अग्निमांद्य और ज्वर के अन्दर पौष्टिक द्रव्य की तरह दी जाती है। पेचिश और वायु नलियों के प्रदाह पर भी यह एक उत्तम औषधि है। इसकी मात्रा १० रत्ती से ३० रत्ती तक की है, जो दूध के साथ मिलाकर दी जाती है।

यह एक उत्तेजक औषधि है। जो आँतों के ऊपर अपना प्रभाव दिखाती है। यह छोटी और बड़ी आँतों की श्लेष्मिक झिल्लियों को उत्तेजित करती है। इस वृक्ष में से एक सुगन्धित राल प्राप्त की जाती है जो कि मूतिपलया सिमरुआ के नाम से मशहूर है। इसे दक्षिण भारत के जेलखानों में पेचिश की बीमारी को मिटाने के लिये दिया जाता है। करीब १५ बीमारों को इसके छिलके का रस दिया गया और परिणाम सन्तोष जनक रहा। कुनानेर के सेण्ट्रल जेल के मेडिकल ऑफिसर ने इसको पेचिश की बीमारी का उत्तम इलाज अनुभव किया। मेन्सन ने भी अपनी ट्रॉपिकल डिसीज नामक पुस्तक में इस औषधि की बहुत तारीफ की है।

इसके फल को चावल के साथ मिलाकर नेत्र रोगों के उपयोग में लिया जाता है, इसकी जड़ की छाल को कुचल कर तिल के तेल में भिगोकर कोबरा सर्प के विष दूर करने के लिये पिलाया जाता है।

इसकी सूखी हुई छाल में दालचीनी की तरह गन्ध आती है। इसलिये दक्षिण में दालचीनी के बदले भी यह वस्तु उपयोग में ली जाती है। इसको जंगली दालचीनी भी कहते हैं। इसकी ताजी छाल २॥ तोले की मात्रा में पीसकर पेचिश की बीमारी में दी जाती है। पुराने कफ रोग में भी यह एक उत्तम गुणकारी वस्तु है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली, ज्वर निवारक और पेचिश में लाभदायक है। इसे सर्पदंश के उपयोग में भी लेते हैं। इसमें क्वेसिन और एलेन्थिक एसिड पाये जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश में निरुपयोगी है।

गून्दी

नाम—संस्कृत—लघुश्लेश्मान्तकः, मुक्ताफल, बिन्दुफल, पक्वरक्तफलः। मारवाड़ी—गून्दी। हिन्दी—गून्दी गुजराती—गून्दी। मराठी—गोंदनी। पंजाबी—गून्दी। लेटिन—Cordia Rothii (कोर्डिया रोथी।

वर्णन—गून्दी का वृक्ष पंजाब, सिंध, राजपूताना, गुजरात, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होता है। यह वृक्ष २० से ३० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिंड की गोलाई ३ से ५ फीट तक होती है। इसकी शाखाएँ फैली हुई रहती हैं और उनके अन्त का भाग अक्सर झुका हुआ रहता है। इसके पिंड की छाल मोटी और भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते बरछी के आकार के और खुरदरे रहते हैं। इसके फूल छोटे २ और सफेद रंग के होते हैं। इन फूलों पर छोटे २ हरे फलों के गुच्छे लगते हैं। इसके फल पकने पर सिंदूरी रंग के मकोय के दानों की तरह होते हैं। इन फलों में एक मीठा और चिकना रस भरा हुआ रहता है। माघ और फागुन में इसके नवीन पत्ते आते हैं। गर्मी के दिनों में इसके फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में फल पकते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गून्दी मधुर, शीतल, कृमिनाशक और वातकारक होती है। इसकी छाल संकोचक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पका हुआ फल गरम और तर, कच्चा फल सर्द और तर तथा पत्ते भी सर्द होते हैं।

इसका फल कब्जियत को दूर करता है, पेट के कीड़ों को नष्ट करता है, आवाज को सुधारता है, वीर्य्य को गाढ़ा करता है, कामेन्द्रिय की शक्ति को बढ़ाता है। खाँसी दूर करता है। गून्दी के लुआब में बराबर वजन की शक्कर की चासनी और बबूल का गोंद मिलाकर देने से खांसी में चमत्कारिक लाभ होता है। यह नुस्खा खाँसी के लिए बहुत मुफीद है। गून्दी के फल को बीज समेत सुखाकर, उसका चूर्ण करके समान भाग शक्कर मिलाकर खाने से कमर का दर्द, वीर्य्य की कमजोरी और कामेन्द्रिय की दुर्बलता नष्ट होती है। इसके पत्ते १ तोला, मुनक्का १ तोला और गेरु १ माशा, इन सबको पानी में पीसकर पीने से बवासीर से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है। इसके पत्ते, जड़ और छाल को चबाने से मुँह के छाले अच्छे हो जाते हैं इसकी जड़ को जोश देकर कुल्लियाँ करने से दाँतों का दर्द मिट जाता है। औरतों की नाभि और गर्भाशय के टल जाने पर भी यह औषधि लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों को काली मिरच के साथ घोट छानकर पीने से धातु पुष्ट होती है। इसकी तीन वर्ष की जड़ को जमीन से निकाल कर उसका टुकड़ा मुँह में रखने से पित्त के विकार से बैठा हुआ गला खुल जाता है।

गूमा (द्रोणपुष्पी)

नाम—संस्कृत—द्रोणपुष्पी, द्रोणा, फलेपुष्पा, सुपुष्पी। हिन्दी—गूमा, गोमा, देलदोना। मराठी—देव-कुम्भा, कुम्भा, तुम्बा। बंगाली—द्रोणपुष्पी, घलगसी, पलकसा। गुजराती—कूबो। पंजाब—छत्र, फूमिआन गलदोदा। संथाली—औदिअधुरुष। Leucas Cephalotus (लिउकस सिफेलोटस)।

गूमे के पौधे वर्षा ऋतु में सब जगह होते हैं और जाड़े के पश्चात् सूख जाते हैं। कहीं २ यह वनस्पति बारहो मास पाई जाती है। इसके पौधे आधे से डेढ़ फुट तक लम्बे होते हैं। इसके अन्दर घनी शाखाएँ निकाल कर ऊपर की ओर बढ़ कर जरा नीचे की ओर झुकती हैं। इसके सारे पौधे का दृश्य एक गुम्मज की तरह हो जाता है। इसके पत्ते एक से तीन इंच तक लम्बे, आधे से एक इंच तक चौड़े और सुहावने होते हैं। इसके फूल डण्डियों पर लगते हैं। प्रत्येक डंडी पर प्रायः ५० से १५० तक छोटे सफेद रंग के फूल के गुच्छे रहते हैं। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद या भूरे रंग के रूँए रहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति उष्ण, दुष्पच्य, भारी, स्वादिष्ट, रूखी गरम, वात पित्त कारक, तीक्ष्ण, खारी पचने में स्वादिष्ट, चरपरी, दस्तावर, तथा कफ, आम, कामला, सूजन, तमक श्वास और कृमि को दूर करती है।

शोढल के मतानुसार गूमा चरपरा, गरम, रुचिकारक तथा वात, कफ, मन्दाग्नि और पक्षाघात रोग को नष्ट करने वाला है।

गूमा के पत्ते स्वादिष्ट, रूखे, भारी, पित्तकारक, भेदक तथा कामला, सूजन, प्रमेह और ज्वर को नष्ट करने वाले होते हैं। खाँसी, पीलिया, प्रदाह, दमा, अग्निमांद्य, रक्त विकार और मूत्र सम्बन्धी रोगों में यह लाभदायक है। इसका ताजा रस खुजली पर लगाने के काम में लिया जाता है।

यूनानी मत--यूनानी मत से यह गरम और खुश्क होता है। दस्त को साफ करता है, वायु और कफ को मिटाता है, पीलिया में लाभदायक है, पेट के कृमियों को नष्ट कर देता है, इसका काढ़ा १-२ लौंग के साथ पीने से कफ का ज्वर मिट जाता है। साँप के विष पर इसके ताजा रस की बूँदें पिलाने से और कुछ नाक में टपकाने से बड़ा लाभ होता है। गूमा के एक फल को आध पाव पानी में पीसकर उसमें २ तोले मिश्री मिला कर पिलाने से ठण्ड देकर आने वाला बुखार रुक जाता है। इसके पेड़ को जड़ से उखाड़ कर उसका रस आँख में आँजने से पीलिया मिट जाता है। इसके रस की मात्रा बालकों के लिये ३ माशे से ६ माशे तक और बड़े मनुष्यों के लिये १ तोले से २ तोले तक होती है।

बालकों की खाँसी में इसका तीन माशे रस थोड़ी-सी सुहागी और थोड़ी-सी शहद के साथ मिला कर देने से लाभ होता है। इसके रस में लीडी पीपर का चूर्ण मिलाकर पिलाने से सन्धिवात में लाभ होता है। इसके रस में काली मिरच का चूर्ण मिलाकर कपाल पर लेप करने से वायु और कफ की वजह से होने वाला भयंकर सिरदर्द भी आराम होता है।

सर्प विष और गूमा—सर्प विष के ऊपर भी यह औषधि बहुत कामयाब सिद्ध हुई है। पायोनियर नामक सुप्रसिद्ध इंगलिश पत्र में कुछ वर्षों पहले एक डाक्टर का इस वनस्पति के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, जिसमें लिखा था कि :—

Goomee this a purely an India one. I have not be enable to as certain its English epuelent.

A Girl about fourteen years of age was brought to at night in a Comatose condition. The relatives stating she had been bitten by a snake about 15 months before. I saw her and that she had six faintings fits, not having any relible remedy at hand. I obtained some leaves of the gooma plant and after extracting the juice had it blown in her nostrils. The effect was instant-aneows the girl. Set up, as she had never been out of her sense.

To make sure that the snake was poisionous one. I examined the foot and found two punctres in the skin.

I was told about this plant some years ago by an old Fakir.

अर्थात् गूमा यह एक उत्तम भारतीय वनस्पति है, जिसके साथ किसी भी अँग्रेजो वनस्पति की तुलना करने में मैं कृतंनिश्चय नहीं हूँ।

एक दिन रात के समय एक चौदह वर्ष की लड़की बहुत खराब हालत में मेरे पास लाई गई। उसके सम्बन्धियों ने मुझे बतलाया कि करीब १५ महीने पहले इसको साँप ने काटा था। बातचीत चलते-चलते मैंने देखा कि वह लड़की रह रहकर ६ बार मूर्छित हो गई। उस समय मेरे पास कोई भी दूसरी औषधि मौजूद नहीं थी। इसलिये मैंने गूमा का एक पौधा उखाड़ कर उसके पत्तों को मसल कर उसका रस उसके नाक में दोनों तरफ टपकाया। इस रस का असर इतना जल्दी हुआ कि वह लड़की तुरन्त उठकर बैठ गई और उसके बाद फिर कभी बेहोश न हुई।

उस लड़की को जिस साँप ने काटा था, वह जहरी था या नहीं इसकी परीक्षा करने के लिये मैंने उसके पैरों को जाँचे तो उसकी चमड़ी पर दो छिद्र नजर आये। इस औषधि में सर्प विष नाशक गुण है यह बात कुछ वर्षों के पहिले मुझे एक फकीर ने बतलाई थी।

गूमा का सत्व निकालने की विधी—गूमा के पत्तों को कुचल कर उनको कपड़े में दबा कर उनका रस निकाल लेना चाहिये। जितना यह रस हो उतना ही उसमें पानी मिलाकर किसी कलई के बर्तन में उस को भरकर २४ घण्टे तक स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये। दूसरे दिन उस बर्तन को बहुत धीरे से उठाकर उस का ऊपर का पानी

निथार देना चाहिये। उसके नीचे जो सत्व जमा हो उसको एक थाली में रखकर १ मोटे देग में पानी भरकर उस देग को आग पर चढ़ा कर, उस देग के ऊपर इस सत्व की थाली को रख देना चाहिए। उस देग की भाफ से थाली गरम होकर वह सत्व सूख जायगा। तब उसको नीचे उतार कर एक शीशी में भरकर रख लेना चाहिये। इस सत्व की मात्रा १ माशे की है।

कामला रोग में इस सत्व को शहद के साथ मिलाकर आंजना चाहिये। अफीम के विष पर इस सत्व को पानी के साथ प्रति आधे घण्टे में देना चाहिए। सर्पदंश से अगर कोई मनुष्य बेहोश हो गया हो तो इस सत्व को कागज की एक नली में भरकर रोगी की नाक में फूँकना चाहिए और सुध आने के बाद पानी में घोलकर पिलाना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, उत्तेजक, कृमिनाशक और पसीना लाने वाली है। इसमें उड़नशील तेल और उपक्षार रहते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह साँप और बिच्छू के जहर में निरुपयोगी है।

बनावटें—अग्नि स्थायी हरताल सत्व—शुद्ध हरताल को ७ दिन तक गूमा के रस में खरल करके फिर उस की एक-एक रूपये भर की टिकड़ियें बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। इन टिकड़ियों को एक मिट्टी की हांडी में रखकर उस हांडी पर एक दूसरी हांडी औंधी ढककर [डमरू यन्त्र] कपड़ मिट्टी कर देना चाहिये उसके बाद इस डमरू यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ाकर २४ घण्टे की हल्की आँच देना चाहिए। जब तक आँच लगे तब तक ऊपर वाली हांडी के ऊपर एक आठ तह किया हुआ कपड़ा पानी में तर करके रखना चाहिये। जैसे ही वह कपड़ा गरम हो जाय वैसे ही उसे बदल कर दूसरा कपड़ा रख देना चाहिये। २४ घण्टे के बाद उस यन्त्र को ठण्डा करके ऊपर की हांडी में जमे हुए सत्व को निकाल लेना चाहिये और उसके बाद उस सत्व को फिर गूमा के रस में तीन दिन तक खरल करके टिकड़िए बाँधकर डमरू यन्त्र में आठ पहर की आँच देना चाहिये। उसके पश्चात् उसे खोलकर जो पका हुआ सत्व नीचे की हांडी में रहा हो उसको तथा ऊपर की हांडी वाले सत्व को मिलाकर फिर गूमा के रस में घोट कर डमरू यन्त्र में आँच देना चाहिये। इस प्रकार आठ दस बार करने से यह सब सत्व स्थिर होकर नीचे की हांडी में रह जायगा। जब सब सत्व नीचे रह जाय तब उसको आंकड़े के दूध में खरल करके डमरू यन्त्र में आठ पहर की खूब तेज आँच देना चाहिये। ऐसी तीन आँच देने के पश्चात् यह सत्व पूर्णतया सिद्ध हो जाता है।

इस सत्व को दो रत्ती मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से श्वास, खाँसी, क्षय की प्रथमावस्था, कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, बवासीर इत्यादि रोगों में बहुत अच्छा लाभ होता है। [जंगलनी जड़ी बूँटी]

इसी गूमा की एक जाति और होती है जिसे गुजराती में डूँगरो कूबो, फारसी में मिश्क तरमस और लेटिन में ल्यूकस स्टेलिगेरा कहते हैं। यह वनस्पति उत्तेजक, पेट का आफरा दूर करने वाली और ऋतुस्राव नियामक होती है।

गूलर

नाम—संस्कृत—औदुम्बरम्, उदुम्बर, हेमदुग्धक, जंतुफल, क्षीर वृक्ष। हिन्दी—गूलर, ऊमर, परोआ। गुजराती—उमरो। मराठी—ऊंबर, गूलर। बंगाली—यज्ञ डुम्बर, जगनो डुम्बर। पंजाब—ददुरि, काकमाल। अरबी—जमीझा। तामील—अतिमरम। तेलगू—अत्तिमाणु। फारसी—अंजीरे आदम। लेटिन—Ficus Glomerata [फिकस ग्लोमीरेटा]

वर्णन—गूलर बड़ पीपल और अंजीर के वर्ग का वृक्ष है। इसका वृक्ष २० से ३० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बड़ के पत्तों से मिलते हुए मगर उससे छोटे रहते हैं। इसकी डालियों से इसके फल फूटते हैं। इसके किसी अंग में चीरा देने से उसमें से दूध निकलता है। इसके फल अंजीर के फलों की तरह होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गूलर शीतल, गर्भ रक्षक, व्रण को भरने वाला, मधुर रूखा, कसैला, भारी, हड्डी को जोड़ने वाला, वर्ण को उज्वल करने वाला तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनिरोग को नष्ट करने वाला है। इसकी छाल अत्यन्त शीतल, दुग्ध वर्द्धक, कसैली, गर्भ को हितकारी और वर्ण विनाशक है। इसके कोमल फल स्तम्भक, कसैले, रुचिर के रोगों को नष्ट करने वाला और तृषा, पित्त तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं। इसके

मध्यम कच्चे फल शीतल, कसैले, रुचिकार तथा प्रदर नष्ट करने वाले होते हैं। इसके पके हुए फल कसैले, मधुर, कृमि पैदा करने वाले, अत्यन्त शीतल, रुचिवर्द्धक, कफ कारक, तथा रुधिर विकार, पित्त, दाह, क्षुधा, तृषा, श्रम, प्रमेह और मुर्छा को हरने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर हैं। कुछ लोगों के मत से यह सर्द और तर है। इस पेड़ का फल पेट में फुलाव पैदा करता है। यह सूखी खाँसी, सीने का दर्द, तिल्ली और गुर्दे के दर्द में मुफीद है। आँख की बीमारियों में भी इसके फल खाने से अच्छा लाभ होता है। अगर वर्ष भर में १०–२० दफे इसके फल खा लिये जाँय तो वर्ष भर में नेत्र रोग होने का डर नहीं रहता। इसकी तरकारी बनाकर रोटी के साथ खाने से बवासीर से जाने वाला खून बन्द हो जाता है। इस पेड़ के पचांग का काढ़ा बनाकर उसमें शकर मिलाकर पीने से खाँसी और दमा में लाभ होता है। खाँसी के लिये यह एक आजमूदा चीज है। इस वृक्ष का दूध लगाने से कठिन सूजन भी बिखर जाती है। इसकी छाल को पानी में पीसकर पीने से जहर का असर दूर हो जाता है।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार गूलर खून की खराबी, बेहोशी और गरमी को मिटाता है। यह भूख को बढ़ाता, शरीर को पुष्ट करता और गर्भवती स्त्रियों के लिये बहुत लाभदायक है। यह अधिक मात्रा में खाने से मेदे को नुकशान पहुँचाता है और पेट में फुलाव पैदा करता है। इसके दर्प नाशक अनीसून और शिकंजबीन है।

जिन २ रोगों में शरीर के किसी अंग से खून बहता है और सूजन होती है उन रोगों में गूलर एक उत्तम औषधि है। नाक से खून बहना, पेशाब के साथ खून जाना, मासिक धर्म में अधिक खून का जाना, गर्भपात, वगैरह रोगों में इसके पके हुए फलों को शकर के साथ देने से फौरन लाभ होता है। अगर इससे जल्दी लाभ नहीं हो तो फलों के साथ इसकी अन्तर छाल को भी देना चाहिये। गर्भपात को रोकने के लिये यह औषधि देने से गर्भ को किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता है। प्रमेह और मधुप्रमेह के रोगों में भी गूलर के फल बहुत लाभदायक हैं। ये पौष्टिक होने से धातु की कमजोरी को भी मिटाते हैं।

चेचक की बीमारी में शरीर की जलन को कम करने के लिए इसके फल दिये जाते हैं। तीव्र रक्तातिसार में गूलर का दूध देते हैं। छोटे बच्चों के "सूखा रोग" में जब कि उनको खाया हुआ पचता नहीं है, दस्त और उल्टियाँ होती रहती हैं उस हालत में गूलर के दूध की दस दस बूँद दूध में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है कण्ठमाल, बदगाँठ और दूसरे फोड़े फुंसियों पर तथा सूजन पर इसके दूध को लगाने से बहुत जल्दी लाभ होता है। कमर के दर्द में कमर के ऊपर और दमे के रोग में छाती पर इसके दूध को लगाने से अच्छा फायदा होता है।

गूलर की जड़ें अतिसार में दी जाती हैं। इसकी जड़ों का रस शीतल, स्तम्भक और उत्तम पौष्टिक होता है। जिन रोगों में शरीर से खून निकलता है उन रोगों में यह बहुत लाभदायक है। सुजाक में इसको देने से मूत्र नलिका की सूजन कम होती है। इसकी छाल की फांट बनाकर अत्यधिक रजःस्राव पर दी जाती है।

कर्नल कीर्तिकर और बसु के मतानुसार इसके पत्ते, छाल और फल देशी औषधियों में काम में लिए जाते हैं। इसकी छाल संकोचक औषधि के काम में आती है। शेर या बिल्ली के द्वारा मनुष्य या पशुओं को जो जखम हो जाते हैं उनके विष को दूर करने के काम में भी यह लिया जाता है। इसकी जड़ में छेद करके उसमें से एक रस निकाला जाता है। इसके पत्तों को पीसकर शहद के साथ मिलाकर देनेसे पित्त के रोग दूर होते हैं इसके पत्तों पर छोटी २ फुंसियाँ रहती हैं उनको दूध में पीसकर शहद के साथ मिलाकर चेचक की बीमारी में अधिक मवाद न होने देने के लिये देते हैं। इसके फल का गूदा संकोचक, अग्निबर्द्धक, अत्यधिक रजःस्राव और मुँह से खून जाने की बीमारी में मुफीद है। इसका दूध बवासीर और अतिसार में उपयोगी है। इसको तील के तेल के साथ मिलाकर लगाने से नासूर में भी लाभ होता है। इसका ताजा दूध बहुमूत्र और मूत्र नाली सम्बन्धी अन्य रोगों में भी मुफीद है। इसका रस बहुत ही प्रचलित औषधि हैं। यह कण्ठमाला, बदगाँठ तथा अन्य प्रकार के प्रादाहिक फोड़ों पर काम में लिया जाता है।

ढोरों की महामारी में इसकी छाल को प्याज, जीरा नारियल की दाढ़ी के साथ पीसकर सिरके में मिलाकर दिया जाता है।

तामील बोलने वाले लोग इसकी छाल के शीत निर्यास को अत्यधिक रजःश्राव की बीमारी में काम में लेते हैं।

बिहार के एक सुप्रसिद्ध वैद्य ने इसके रस से "औदुम्बर सार" नामक एक औषधि तैयार की थी यह औषधि हर तरह की सूजन, फोड़े, फुन्सी, कण्ठमाल और बदगांठ, घाव, शस्त्र के जख्म इत्यादि पर बहुत ही मुफीद साबित हुई थी।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गूलर की छाल, पत्ते, फल और दूध सब औषधियों के काम में आता है। इसकी छाल का शीत निर्यास और इसके पत्ते संकोचक हैं। इन्हें मसूड़े की बीमारी में कुल्ले करने के काम में लेते हैं। पेचिश, अत्यधिक रजःश्राव और मुँह से कफ के साथ खून निकलने की बीमारी में इनको पिलाने से अच्छा लाभ होता है। इसके पिण्ड का निस्सरण बहुमूत्र रोग की उत्तम औषधि मानी जाती है। इसका दूध आमवात और कटिवात पर लगाने के काम में लिया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार सांप और बिच्छू के जहर में यह औषधि निरुपयोगी है।

मात्रा—छाल की आधे तोले से एक तोले तक, फल की २ से ४ नग तक और दूध की १० से २० बूँद तक है।

उपयोग—घाव—इसकी छाल के क्वाथ से साधारण और जहरीले घाव को धोने से वह जल्द भर जाता है।

आमातिसार—इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

बल वृद्धि—इसकी जड़ में छेद करने से एक प्रकार का मद टपकता है। उस मद को लगातार कुछ समय तक लेने से बल बढ़ता है।

पित्त विकार—इसके पत्तों को पीस कर शहद के साथ चटाने से पित्त विकार शांत होते हैं।

खूनी बवासीर—इसके दूध को १० बूँद से २० बून्द तक जल में मिलाकर पिलाने से खूनी बवासीर और रक्त विकार मिटता है।

बहुमूत्र—इसकी जड़ से निकाले हुए मद को पिलाने से बहुमूत्र रोग मिटता है।

कर्णमूल शोथ—इसके मद का लेप करने से कर्ण मूल की सूजन और दूसरी पेशियों की पित्त की सूजन मिटती है।

मूत्र कृच्छ—इसका ४ तोला मद रोज पिलाने से मूत्र कृच्छ मिटता है।

दन्त रोग—इसके काढ़े से कुल्ले करने से दांत और मसूड़ों के रोग मिट कर दांत मजबूत होते हैं।

रक्त प्रदर—इसकी छाल का शीत निर्यास पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

रुधिर की वमन—कमल गट्टे और इसके फलों के चूर्ण को दूध के साथ देने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

नं० २—इसके सूखे या हरे फलों को पानी में पीसकर मिश्री मिलाकर पीने से रुधिर की वमन, रक्तातिसार, रक्तार्श और मासिक धर्म में अधिक रुधिर का जाना बन्द हो जाता है।

नकसीर—इसके पिण्ड की छाल को पानी में पीसकर तालू पर लगाने से नकसीर बन्द होती है।

गर्भश्राव—इसकी जड़ को कूटकर उसका काढ़ा करके पिलाने से होता हुआ गर्भश्राव रुक जाता है।

नासूर—इसके दूध में रूई का फोया भिगोकर नासूर और भगन्दर के अन्दर रखने से और उसको रोज बदलते रहने से नासूर और भगन्दर अच्छा हो जाता है।

मूत्ररोग—इसके दूध को दो बताशों में भर कर रोज खिलाने से मूत्र रोग मिटते हैं।

भिलामें की सूजन—इसकी छाल को पीस कर लेप करने से भिलामें के धुएँ से पैदा हुई सूजन उतर जाती है।

पित्त ज्वर—इसकी जड़ की छाल के हिम में शक्कर मिलाकर पिलाने से तृष्णायुक्त पित्त ज्वर छूट जाता है।

श्वेत प्रदर—गूलर का रस पिलाने से श्वेत प्रदर मिटता है

प्रमेह पीठिका—गूलर के दूध में बाबची के बीज भिगोकर और पीस कर लेप करने से सब प्रकार की पीठिका और व्रण मिट जाते हैं।

बच्चों का भस्मक रोग—इसकी अन्तर छाल को स्त्री के दूध में पीसकर पिलाने से बच्चों का भस्मक रोग मिटता है।

मधु प्रमेह—गूलर के पके हुए फलों को सुखाकर उनका चूर्ण करके प्रतिदिन एक तोले की मात्रा में जल के साथ लेने से पेशाब के साथ शकर जाना बन्द हो जाती है।

श्वेत कुष्ठ—इसकी छाल और लाला के बीजों को बराबर पीसकर ४० दिन तक फक्की लेने से श्वेत कुष्ठ में लाभ होता है।

रक्त पित्त—गूलर के रस में शहद मिलाकर पिलाने से रक्त पित्त मिटता है।

गेंदा

नाम—संस्कृत—स्थूल पुष्पा, झंडूगा, झंडू। हिन्दी—गेंदा, हजारी, गुलजाफरी, मखमली। गुजराती—गलगोटो। बंगाल—गेंदा। मराठी—रोज्यांचे फूल, झेंडू, मखमाल। बम्बई—गुलजाफरी। पंजाब—गेंदा, मेन्तोक, सद्वर्गी, टंगला। नसीराबाद—गुलगेन्दो। काठियावाड़—गुलगोटो। अरबी—हजई, हमहमा। फारसी—सदावर्ग, कजेखरूसा। उर्दू—गेंदा। लेटिन—Calendula offlcinalis केलें ड्यूला आफिसिनेलिस, Tagates Ercta टेगेट्सइरेक्टा अंग्रेजी—Mary Gold.

वर्णन—यह एक मशहूर पौधा है। जो बरसात में जमता है। इसका पौधा करीब ३।४ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते १ से २ इञ्च तक लम्बे और चौथाई इञ्च चौड़े होते हैं। ये कंगूरेदार होते हैं। इन पत्तों के अन्दर बड़ी मस्त खुशबू आती है। इसके फूल नींबू के समान पीले रंग की पंखड़ियों से भरे हुए और बड़े-बड़े रहते हैं। इसकी कई जातियाँ होतो हैं। एक जाति के फूल की पंखड़ियाँ बड़ी २, रंग पीला और पत्तियाँ कम होती हैं। इसकी शाखाएँ पतली, हरी और नीलापन लिये होती हैं। इसको जाफरी कहते हैं। दूसरी जाति का फूल बड़ा होता है। इसका रंग पीला और सुनहरी होता है। इसको सदावर्ग और हजारा भी कहते हैं। तीसरी जाति के फूल की पंखड़ियाँ पीली, छोटी २ और लिपटी हुई होती हैं इसको हवशी कहते हैं। चौथी जाति के फूल की पंखड़ियाँ जरा बड़ी और लिपटी हुई रहती हैं इसको सुरनाई कहते हैं। पांचवी जाति के फूल की पंखड़ियाँ लाल रंग की, नीचे की तरफ मुड़ी हुई और भीतर की छोटी पंखड़िया पीले रंग की, बहुत खुशनुमा होती है। इसको मखमली बोलते हैं। फूल की पंखड़ियों के बीच में काले रंग की बारीक केशर रहती हैं यही इसके बीज हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फूल स्वाद में तीक्ष्ण, कड़वा और कसैला होता है। यह ज्वर और मृगी रोग में लाभदायक है। यह रक्त संग्राहक और सूजन को दूर करता है। इसके पंचांग का रस सन्धियों की सूजन और चोट तथा मोच के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है। इसके फूल की पंखड़ियों को आधे तोले से एक तोले तक घी में भूनकर देने से बवासीर से बहने वाला खून बन्द हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे या तीसरे दर्जे में खुश्क है। इसके पत्तों का रस कान में डालने से कान का दर्द मिट जाता है। इसको स्तनों पर लगाने से स्तनों की सूजन बिखर जाती है। दाद के ऊपर इसके पत्तों का रस लगातार लगाते रहने से दाद नष्ट हो जाता है। इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से दाँतों का दर्द फौरन दूर होता है। इसके फूल के बीच की घुण्डी का चूर्ण करके शक्कर और दही के साथ लेने से दमा और खाँसी दूर होते हैं।

गेन्दे के पत्तों का अर्क खींचकर पीने से बवासीर का खून फौरन बन्द हो जाता है। इसका अर्क बनाने की तरकीब इस प्रकार है—

गेंदे के पत्ते एक पाव और केलें की जड़ २ सेर। इनको शाम को पानी में भिंगोकर सुबह भपके से अर्क खींच लें। इस अर्क को पौने दो तोले की मात्रा में देना चाहिये। गेंदे के पत्ते एक तोला पीसकर मिश्री मिलाकर पीने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसका अधिक सेवन मनुष्य की कामशक्ति को नुकसान पहुँचाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गेन्दा धातु परिवर्तक और खून बवासीर में लाभदायक है। इसमें एक उड़नशील तेल और Quercetagetin नामक पीले रंग का पदार्थ रहता है।

गेरू

नाम—संस्कृत—गेरिक, स्वर्णगेरिक, पाषाण गेरिक। हिन्दी—गेरू, सेनागेरू। पंजाब—गिरि। अरबी—मुगरा। लेटिन—Silicate of Alumina [सिलिकेट आफ एल्यूमिना], Oxide of Iron औक्साइड आफ आयर्न।

वर्णन—यह एक प्रकार की लाल रंग की मिट्टी है। जो विशेष कर सोने के चमकाने के काम में आती है। कुछ लोगों के मत से यह एक उपधातु है। हमने नागपुर के पण्डित गोबर्धन शर्मा छांगाणी के यहां गेरू देखा था जो लाल रंग का अत्यन्त चमकदार और एक उपधातु की तरह नजर आता था। यह उनके यहाँ तीन रुपये तोले के भाव में हिन्दू युनिव्हरसिटि से आया था। मगर साधारण गेरू जो बाजार में बिकता है वह तो लाल रंग की मिट्टी की तरह होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यूनानी मत से गेरू दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह कब्जियत और खुश्की पैदा करनेवाला और पेट के कृमियों को नष्ट कर देने वाला होता है। आँख के रोग, सूजन और यकृत रोग में यह फायदेमन्द है। शरीर के किसी भी हिस्से से बहते हुए खून को यह रोकता है। इसका लेप करने से सूजन बिखर जाता है। इसको दूध में घोल कर कान में टपकाने से बहरेपन में लाभ होता है। उबटन की दवाइयों में इसको मिलाने से शरीर की चमक बढ़ जाती है। इसको आग पर गरम करके पानी में बुझा कर उस पानी को पिलाने से वमन और जी मिचलाना बन्द होता है।

खजाइनुल अदबिया के लेखक का कथन है कि पौने दो तोला गेरू और पौने दो तोला चीनी को डेढ़ पाव पानी में शाम को भिगोकर सबेरे घोट कर पिलाने से ३ दिन में सुजाक आराम हो जाता है। लेकिन इसमें पानी पीना मना है, प्यास लगने पर दूध पानी की लस्सी पीना चाहिये। गेरू को शिकंजबीन सादा के साथ चाटने से पित्ती में फायदा होता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गेरू रक्त पित्त, रक्त, विकार, कफ, हिचकी और विष का नाश करता है। यह नेत्रों को हितकारी, बलकारक और हिचकी को रोकनेवाला है।

सुवर्ण गेरू स्निग्ध, मधुर, कसैला, नेत्रों को हितकारो, शीतल, बलकारक, व्रणरोपक, विशद, कान्तिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रुधिर विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्नि से जले हुए व्रण, बवासीर और रक्त पित्त को हरने वाला है।

इसके चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से बच्चों की हिचकी बन्द होती है।

यह औषधि तिल्ली और आंतों को नुकसान पहुँचाती है और पित्त पैदा करती है। इसके दर्प नाशक शहद और शाल पर्णी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शरीर के भीतरी भाग से होने वाले रक्त बहाव को मिटाती हैं।

गेहूँ

नाम—संस्कृत—अरूपा, बहुदुग्धा, गोधूमा, क्षीरी, म्लेच्छभोजन, पवना, गेहूँ, कुनक। मराठी—गहूँ, गहूंगा। गुजराती—घऊँ। बंगाल—गंम। अफगानिस्तान—गनम, गदम। फारसी—गन्दुम। लेटिन—Triticum Aistivum. [ट्रीटिकम एस्टिव्हम] T. Vulgare [ट्रीटिकम व्हलगेरा]।

वर्णन—गेहूँ सारे भारत वर्ष में खाद्य पदार्थ की तरह काम में लिये जाते हैं। इसलिये इनके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गेहूँ शीतल, पौष्टिक, वीर्य वर्धक, भारी, मधुर, स्निग्ध कामोद्दीपक, रुचि कारक, देह को स्थिर रखने वाला, वात पित्त नाशक और कुछ दस्तावर है।

यूनानी मत—यूनानी मत से गेहूँ एक उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। इसकी रोटी तन्दुरुस्ती के लिए दूसरे सब

अन्नों से अच्छी है। यह खून पैदा करती है। शरीर को मोटा करती है और कामेन्द्रिय को ताकत देती है। गेहूँ के मगज को शक्कर और बादाम के साथ पीने से सीने का दर्द दूर होता है। अगर कोई जहरीला कीड़ा काट खावें तो गेहूँ के आटे को सिरके के साथ मिलाकर लगाने से फायदा होता है। अगर किसी को कुत्ता काटे तो उसकी काटी हुई जगह पर गेहूँ के आटे को पानी में मिलाकर बाँध दें। थोड़ी देर बाद उसको खोलकर किसी कुत्ते के आगे डालें अगर कुत्ता उस आटे को नहीं खावे तो समझ लेना चाहिये कि उस आदमी को पागल कुत्ते ने काटा है।

गेहूँ को जलाकर उसमें समान भाग गुड़ मिलाकर थोड़े २ घी के साथ डेढ़ तोले की मात्रा में रोज खाने से चोट और मोच का दर्द बिलकुल जाता रहता है। यहाँ तक कि चौपाये की चोट को भी इससे फायदा होता है। इस औषधि को मोमियाई हिन्दी कहते हैं।

गेहूँ में से पाताल यंत्र के द्वारा एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। यह तेल दाद, झांई, सफेद दाग और सिर की गंज में बहुत मुफीद है। इसको लगाने से सूजन मुलायम होकर बिखर जाती हैं। और जलन मिट जाती है।

उपयोग—खुजली—इसके आटे का ठण्डा या गरम लेप करने से त्वचा की दाह, खुजली, टीस युक्त फोड़ा फुन्सी और अग्नि से जले हुए पर लाभ होता है।

खाँसी—१। तोले गेहूँ और दो माशे सेंधे नमक को पाव भर पानी में औटा कर तिहाई पानी रहने पर छानकर पिलाने से सात दिन में खाँसी मिट जाती है।

नारु—गेहूँ और सन के बीजों को पीसकर घी में भूनकर उसमें गुड़ मिलाकर लड्डू बांध कर खाने से नारू जल जाता है।

पथरी—गेहूँ और चनों को औटाकर उसका पानी पिलाने से वृक्क, गुर्दा और मूत्राशय की पथरी गल जाती है।

मूत्रकृच्छ—दो तोले गेहूँ के सत्व को रात को भिगोकर सवेरे पीने से मूत्रकृच्छ मिटता है।

गेहूँ जंगली

इसका पौधा गेहूँ से बिलकुल मिलता जुलता है।

गुण, दोष और प्रभाव—यह पहले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह वायु की सूजन को बिखेरता है। खुश्की पैदा करता है। सख्त जगह को मुलायम करता है। मेदे के कीड़ों को मारता है। चाकसू और मिश्री के साथ इसको पीसकर आंख में लगाने से आंखके भीतर के रुएँ और गूगंनी कट जाती है। इसका लेप सूखी खुजली में फायदेमन्द है। [खजाइनुल अदबिया]

गैंदर

नाम—बम्बई—गैदर, बांदर रोटी। तेलगू—कन्देलू, चेवि, युक। अँग्रेजी—केवेजट्री। लेटिन—Notonia Grandiflora [नोटोनिया ग्रेन्डिफ्लोरा]।

वर्णन—यह एक क्षुप जाति की वनस्पति पहाड़ों पर पैदा होती है। यह झाड़ीनुमा पौधा है। इस का तना मोटा और दलदार होता है। इसके बहुत शाखायें नहीं होतीं। इसके पत्तों के गिर जाने से इसके पेड़ पर कुछ खड्डे से हो जाते हैं। इसके पत्ते ६.३ से १२.५ सेन्टीमीटर तक लम्बे और २.५ से ७.५ से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये बहुत दलदार होते हैं। इसके फूल डाली के शिरे पर झूमकों में लगते हैं। ये हलके पीले रंग के होते हैं। इसकी मंजरी लम्ब-गोल होती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—सन् १८६० में डाक्टर ए० गिप्सन ने इस वनस्पति को पागल कुत्तों के जहर पर लाभदायक बताया है। उन्होंने इसके उपयोग का तरीका इस प्रकार बतलाया, इसकी ताजी डालियों को ४ औंस लेकर एक पिन्ट ठण्डे पानी में रात को भिगो देना चाहिये। सवेरे इनको मसलने से इनमें से एक तरह का हरा रस

निकलता है। उस हरे रस को पानी के साथ मिलाकर पी लेते हैं। फिर इसी तरह शाम को यह रस निकाल कर आटे के साथ मिलाकर खाने के उपयोग में लेते हैं। इस तरह लगातार ३ रोज तक करने से कुत्ते के विष में बहुत लाभ होता है।

डॉक्टर बारिग का कहना है कि यह औषधि पागल कुत्तों के जहर पर अजमाई गई। इसके जो भी परिणाम सामने आये उनके आधार पर कोई निश्चत सम्मति नहीं दी जा सकती। कुत्ते के काटते ही काटे हुए स्थान पर दाहक वस्तुएँ लगाई गई और उसके पश्चात् इस औषधि का प्रयोग किया गया। ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस वस्तु में रोग निवारक शक्ति कितनी है।

डायमाक का कथन है कि इस वनस्पति का रस डॉक्टर लेन्स ने और हमने कुत्तों पर अजमाया और बाद में यही सन् १८६४ में बम्बई के अस्पताल में अजमाया गया। १ ड्राम की मात्रा में देने पर यह अपना मृदु विरेचक गुण बतलाता है। इसके सिवाय इसका कोई भी दूसरा प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं हुआ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार सह वनस्पति पागल कुत्ते के काटने के कारण पैदा हुए रोग पर लाभदायक है।

गोखरू छोटा

नाम—संस्कृत—बहुकंटका, त्रिकंट, इक्षुगन्धा, गोक्षुर, क्षुद्रगोक्षुर। हिन्दी—गोखरू, छोटा गोखरू। बम्बई—गोखरू। गुजराती—गोखरू, मीठा गोखरू, नहाना गोखरू। पंजाब—भाखरा, देशी गोखरू, लोटक। बंगाल—गोखरि। अरबी—बस्तीतज, ब्रिस्तेरूमी। फारसी—खरेखशक, खुसुक। लेटिन—Tribuls Terrestris (ट्रिब्यूलस टेरेस्ट्रिस)

वर्णन—गोखरू के पौधे वर्षा ऋतु में बहुत पैदा होते हैं। ये जमीन के ऊपर छत्ते की तरह फैले हुए रहते हैं। इनके पत्ते चने के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते है। इसके फूल पीले रंग के और काँटे वाले होते हैं। इसके सारे पौधे पर रुआँ होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोखरू की जड़ और फल शीतल, पौष्टिक, कामोदीपक, रसायन, भूख बढ़ाने वाले तथा पथरी और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक है। प्रमेह, श्वास, खाँसी, हृदय रोग, बवासीर, रक्त दोष, कुष्ठ और त्रिदोष को ये नष्ट करते हैं।

इसके पत्ते कामोद्दीपक और रक्त शोधक होते हैं। इसके बीज शीतल, मूत्रल, सूजन को नष्ट करने वाले, आयु को बढ़ाने वाले तथा शुक्र, प्रमेह और सुजाक को दूर करने वाले होते हैं। इसका क्षार मधुर, शीतल, कामोद्दीपक वातनाशक और शोधक होता है।

गोखरू मूत्रपिंड को उत्तेजना देने वाले, वेदना नाशक और बलदायक होते हैं। मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्म त्वचा पर इनका प्रत्यक्ष असर होता है। गोखरू की जड़ आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध दशमूल क्वाथ का एक अंग है। सुजाक और वस्तिशोथ में भी गोखरू अच्छा काम करता है। इसमें वेदना नाशक गुण कम होने की वजह से ऐसे कष्ट प्रद रोगों में इसको खुरासानी अजवायन के साथ देते हैं। वस्तिशोथ अथवा मूत्रपिंड की सूजन में जब कि मूत्र क्षार स्वभावी, दुर्गन्ध पूर्ण और गन्दला होता है, तब इनका क्वाथ शिलाजीत के साथ दिया जाता है। इनमें वाजिकरण धर्म भी बहुत उत्तम है। गोखरू और तिलों का सम भाग चूर्ण शहद या बकरी के दूध के साथ देने से हस्तमैथुन की वजह से पैदा हुई नपुँसकता दूर होती है। गर्भाशय को शुद्ध करने तथा बन्ध्यत्व को मिटाने के लिए भी इनका उपयोग किया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल और तूरा मूत्रल होता है। इसके चूर्ण की फक्की देने से स्त्रियों का बंध्यत्व मिटता है, इसके पचांग को २ घण्टे तक पानी में भिगोकर मल छान कर पिलाने से सूजाक में लाभ होता है। दो तोले से लेकर ७ तोले तक गोखरू का काढ़ा दिन में ३-४ बार पिलाने से मसाने की पुरानी सूजन उतर जाती है। गोखरू के फल और उसके पत्तों का स्वरस दिन में २-३ बार २ से ५ तोले तक पिलाने से पेशाब की जलन मिट जाती है। छोटे गोखरू के ६ माशे चूर्ण को मिश्री के साथ फक्की देने से प्रमेह में लाभ होता है। गोखरू को

शतावरी के साथ औटाकर पिलाने से कामेंद्रिय की शक्ति बढ़ती है। इसके ३ माशे चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर चटाने से तथा ऊपर से बकरी का दूध पिलाने से पथरी गल जाती है।

इसके अधिक सेवन से सिर, तिल्ली, गुर्दा और पट्ठों को नुकशान पहुँचता है। कभी २ यह कंपकंपी भी पैदा कर देता है। इसके दर्प को नाश करने के लिए बादाम का तेल, गाय का घी और शहद का प्रयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा ६ माशे से १॥ तोले तक की है।

दक्षिणी हिन्दुस्तान में गोखरू को एक प्रभावशाली औषधि मानते हैं। वहाँ इसके फल और इसकी जड़ को चावल के साथ पानी में उबाल कर बीमार को देते हैं। जिससे फौरन पेशाब उतर जाता है।

चीन में इसका फल पौष्टिक और संकोचक माना जाता है। वहाँ इसे खाँसी, खुजली, अनैच्छिक, रजःश्राव, रक्त न्यूनता और नेत्र रोग में काम में लिया जाता है। पेचिश में और रक्तश्राव में भी यह बहुत लाभदायक माना जाता है। मसूड़ों के फूलने पर और मुखक्षत पर इसके काढ़े के कुल्ले कराये जाते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में यह सन्धिवात रोग को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का शीतनिर्यास आमाशय के प्रदाह में लाभदायक माना जाता है।

कोमान के मतानुसार यह सारा वृक्ष खासकर इसके फल शीतल, मूत्रल, पौष्टिक और कामोद्दीपक होते हैं। यह पथरी और नपुंसकता में विशेष फायदा पहुँचाते हैं। इन्हें जलोदर की बीमारी में खासकर ब्राइट्स डिसीज में काम में लिया जाता है। ऐसे कई बीमारों को इससे बहुत लाभ हुआ। सूजाक और आमवात से पीड़ित रोगियों को भी यह दिया गया और उनको भी इससे काफी लाभ हुआ। इन रोगों में इस Bdellium के साथ में दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गोखरू का सारा वृक्ष और विशेषकर इसके फल और जड़ें उपचार में काम में ली जाती हैं। इसके फल शीतल, मूत्रल, पौष्टिक और कामोद्दीपक होते हैं। मूत्र सम्बन्धी व्याधियों, नपुंसकता और पथरी में ये लाभदायक हैं। इनका शीत निर्यास उत्तरी भारत में खाँसी, हृदय रोग और मूत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करने के लिये दिया जाता है। दक्षिणी यूरोप में इसको मृदु विरेचक और मूत्रल पदार्थ के रूप में काम में लेते हैं। इस वनस्पति का प्रभाव मूत्र मार्ग की श्लेष्मिक झिल्लियों पर प्रत्यक्ष होता है। इस कार्य में अर्थात् मूत्र सम्बन्धी व्याधियों को दूर करने के लिये इसको अफीम अथवा खुरासानी अजवायन के साथ में देते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—रासायनिक विश्लेषण के द्वारा इसमें कुछ उपक्षार और एक प्रकार का सुगन्धित तत्व पाया गया। इसके उपक्षारों को अलग करने के बाद जो पदार्थ इसमें बचते हैं उनमें शक्कर वगैरा रहती है जो कि औषधि शास्त्र में विशेष उपयोगी नहीं होती।

इसके रस की औषधि क्रिया को पूरी तरह पर जाँचने से मालूम होता है कि यह रक्त भार को बढ़ा देता है। गुर्दे पर भी इसका प्रभाव होता है। इसमें मूत्रल गुण भी मौजूद है। इसका यह मूत्रल गुण इसके बीजों में पाये जाने वाले नाइट्रेट और उड़नशील तेल की वजह से ही होता है इसके सिवाय दूसरी बीमारियों में जो इसकी उपयोगिता बतलाई जाती है वह सिद्ध नहीं हो सकती।

के० एल० दे० के मतानुसार यह वनस्पति खास करके इसके सूखे फलों का शीतनिर्यास इसके मूत्रल गुणों की वजह से भारतवर्ष में बहुत उपयोग में लिया जाता है। कुछ वर्षों के पहले डाक्टर थामस क्रिष्टी एफ० एल० एस० लन्दन ने छोटे गोखरू के एक्ट्रैक्स और शरबत को अनैच्छिक वीर्य श्राव, मूत्र क्रिया प्रणाली तथा जनन के कई रोगियों पर बहुत सफलता के साथ अजमाया था।

मतलब यह है कि यह वनस्पति मूत्र सम्बन्धी रोग, सुजाक, पथरी, नपुंसकता, अनैच्छिक वीर्य्य श्राव और सन्धिवात पर बहुत उपयोगी है।

गोखरू बड़ा

नाम—संस्कृत—गोक्षुर, त्रिकंटक। हिन्दी—बड़ा गोखरू, मालवी गोखरू, फरीद बूँटी, कड़वा गोखरू। गुजराती—उभो गोखरू, मालवीर। मराठी—मोठे गोखरू। पंजाब—गोखरू कली। फारसी—खरकेकलां।

तामील—आनेनेरिंजल । तेलगू—एनुगपल्लेरू । मलयालम—काकमुल्लू । लेटिन—Pedalium Murex [पेडेलियम मुरेक्स] ।

वर्णन—बड़े गोखरू के पौधे बरसात में बहुत पैदा होते हैं ये एक फुट से १॥ फुट तक ऊँचे होते हैं । इनकी डालियां जमीन पर झुकी हुई रहती हैं । इनके पत्ते इमली के पत्तों से कुछ छोटे, फूल पीले और फल ३ या ५ कांटे वाले होते हैं । इसकी जड़ केसरिया और पौधे लुआबदार होते हैं । यह वनस्पति काठियावाड़, गुजरात, कोकण, राजपुताना और मध्य भारत में खेतों के किनारे और रेतीली जमीन में बहुत होती है ।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोखरू की जड़ और फल मीठे, शीतल, पौष्टिक, मज्जावर्द्धक, कामोद्दीपक और धातु परिवर्तक होते हैं । पथरी, मूत्राशय का रोग और गुदाभ्रंश रोग में यह लाभदायक है । यह जलन को कम करता है । त्रिदोष को नष्ट करता है । कफ रोग, दमा और श्वास कष्ट में फायदा पहुँचाते हैं । चर्म रोग, हृदय रोग, बवासीर और कुष्ठ में मुफीद है । इसके पत्ते कामोद्दीपक और रक्तशोधक होते हैं । इनका क्षार शीतल, कामोद्दीपक, वातनाशक और रक्तशोधक होता है ।

गोखरू, कौंचबीज, सफेद मूफली, सफेद सेमर की कोमल जड़ें, आंवला, गिलोय का सत्त और मिश्री इन सातों चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण बनाया जाता है । इस चूर्ण को बृद्धदण्ड चूर्ण कहते हैं । इस चूर्ण की एक तोला से डेढ़ तोला तक की मात्रा में प्रतिदिन दो बार दूध के साथ सेवन करने से हर तरह की नपुंसकता, वीर्य्य की कमजोरी हस्तक्रिया के विकार, स्वप्नदोष और अनैच्छिक वीर्यश्राव बन्द होते है ।

अपस्मार रोग के ऊपर भी यह वनस्पति बहुत उपयोगी साबित हुई है । इस रोग के लिये इस औषधि का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है । गोखरू की ताजी हरी जड़ों के ऊपर की छाल सोलह तोले लेकर उसको चटनी की तरह बारीक पीसकर लुग्दी बनाकर उस लुग्दी को एक कलईदार पीतल की कढ़ाई में रख दें और उस कढ़ाई में २५६ तोले पानी और ६० तोले घी डालकर मन्दी आँच से पकावें, जब सब पानी जलकर केवल घी शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लें । इस घी को एक से चार तोले तक की मात्रा में सबेरे शाम लेने से और भोजन में केवल दूध और भात खाने से अपस्मार का भयंकर रोग नष्ट हो जाता है ।

नये सुजाक में इसकी ताजी वनस्पति का शीतनिर्यास दोनों टाइम देने से बहुत लाभ होता है । अगर ताजा वनस्पति मिलने की सुविधा न हो तो गोखरू का काढ़ा बनाकर उसमें मुलेठी और नागरमोथा मिलाकर देने से भी सुजाक में अच्छा लाभ होता है । स्वप्नदोष, पेशाब के साथ वीर्य जाना और कामशक्ति की कमी में गोखरू की फांट बनाकर दिया जाता है । अथवा इसके फलों का चूर्ण ६ माशे की मात्रा में शक्कर, घी और दूध के साथ देते हैं । बड़े गोखरू का पौष्टिक और बाजिकरण धर्म कभी २ स्पष्ट नजर आता हैं । प्रसूति रोग में इसके फलों का काढ़ा देने से लाभ होता है । यकृत और तिल्ली की बढ़ती में भी इसका काढ़ा अथवा पंचाग का रस देने से बहुत फायदा होता है । इसका मूत्रल गुण बहुत उत्तम और जल्दी दृष्टिगोचर होता हैं ।

यूनानी-मत—यूनानी मत से गोखरू प्रमेह, यकृत की गरमी, सुजाक, पेशाब की जलन और मूत्राशय के रोगों में मुफीद है । यह पेशाब और मासिकधर्म को साफ करता है । गुरदे और मसाने की पथरी को तोड़कर निकाल देता है । कमर का दर्द, जलोदर और वायु के उदरशूल में यह लाभ पहुँचाता है । वीर्य को बढ़ाता है । कामोद्दीपक है । इसको पानी में उबाल कर उस पानी को कमरे में छिड़कने से पिस्सू भाग जाते हैं । इसको पीसकर गरम करके लेप करने से सूजन बिखर जाती है । गोखरू को तीन बार दूध में जोश देकर तीनों बार सुखाकर उसके बाद उसका चूर्ण बनाकर खाने से कामेंद्रिय की शक्ति बहुत बढ़ती है । इसकी तरकारी खून को साफ करती है । इसके पंचाग को पानी में भिगोकर खूब मसलने से इसका लुआब निकल आता है इस लुआब में मिश्री मिलाकर पीने से सुजाक और पेशाब की जलन में बहुत लाभ होता है ।

जख्मो और घावों के ऊपर भी यह वनस्पति अच्छा काम करती है । इसके जोशांदे से घावों को धोने से या इसका रस लगाने से घावों का मवाद साफ होकर घाव जल्दी भर जाते हैं । नेत्र रोगों के ऊपर भी इस वनस्पति का

प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसका ताजा रस आँख में लगाने से आँख की बिमारियों में लाभ होता है। इसको ताजा कुचलकर आँख के ऊपर बाँधने से आँख की ललाई, आँख से पानी का बहना और आँख के खटकने में फायदा होता है। इसको पानी में जोश देकर उस पानी से कुल्ले करने से मसूढ़ों के जख्म और बदबू मिट जाती है। हलक की सूजन भी इससे नष्ट हो जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गोखरू रात्रि के समय होने वाले अनैच्छिक मूत्रश्राव और स्वप्नदोष तथा नपुंसकता और धातु दौर्बल्य में काम में लिया जाता है।

उपयोग—पथरी—गोखरू और पाषाण भेद का शीतनिर्यास अथवा काढ़ा बनाकर पिलाने से पथरी गल जाता है।

[२]—भेड़ के दूध में शहद मिलाकर उसके साथ इसके चूर्ण को फंकाने से पथरी दूर होती है।

आमवात—गोखरू और सोंठ का काढ़ा प्रतिदिन सवेरे पिलाने से आमवात में लाभ होता है।

प्रसूति रोग—गोखरू का जोशांदा बनाकर पिलाने से प्रसूति के बाद गर्भाशय में रही हुई गन्दगी साफ हो जाती है।

पुराना सुजाक—गोखरू के पञ्चाग का जोशांदा बनाकर उसमें जवखार मिलाकर पीने से पुराना सुजाक मिटाता है।

बनावटें—गोखरू रसायन—गोखरू के पौधे पर जब उसके फल कच्चे हों तब उसको उखाड़ कर छाया में सुखा लेना चाहिये। उसके पश्चात् उसको कूटकर उसका बारीक चूर्ण कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् उस चूर्ण को हरे गोखरू का रस निकालकर उस रस में तर करके सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार उसे सात बार हरे गोखरू के रस में तर करके सुखा लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन २ तोले की मात्रा में दूध मिश्री के साथ सेवन करने से और तेल, खटाई, लाल मिर्च इत्यादि चीजों का परहेज करने से पुरुष के धातु सम्बन्धी सभी विकार दूर हो जाते हैं। पेशाब में खून का गिरना, पेशाब का रुक २ कर कष्ट से आना, पथरी, प्रदर, प्रमेह इत्यादि सब रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर का सौन्दर्य और बल बहुत बढ़ता है। कामशक्ति में अत्यन्त वृद्धि होती है। यह रसायन परम बाजिकरण है।

गोक्षुरादि चूर्ण—गोखरू, शातावरी, तालमखाना, कौंच के बीज, खिरेंटी के बीज और गंगेरन की जड़ इन छः चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में १ तोला मिश्री मिलाकर सवेरे, शाम गाय के दूध के साथ लेने से कामशक्ति बढ़ती है।

गोखरू पाक—गोखरू १ से लेकर उनका बारीक चूर्ण करके चार सेर दूध में उनको डालकर मन्दी आँच पर उनका खोआ बना लें। फिर जावित्री, लौंग, लोध, काली मिरच, कपूर, नागरमोथा, सेमर का गोंद, समुद्रशोष, हलदी, आंवला, पीपर, केशर, नाग केशर, सफेद इलायची, पत्रज, दालचीनी, कौंच के बीज, अजवायन ये सब चीजें दो २ तोले, धुली हुई भांग ४ तोले और अफीम १ तोला इन सबका चूर्ण करके उस खोए में मिला दें और बत्तीस तोले घी में उन सब औषधियों को भून लें। उसके बाद सब औषधियों का जितना वजन हो, उतने ही वजन की शक्कर की चासनी करके उस चासनी में इन औषधियों को मिलाकर एक १ छटाक के लड्डू बना लें। इस पाक को सबेरे, शाम दूध के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह और सब प्रकार के वीर्य दोष मिटकर काम शक्ति बहुत प्रबल होती है।

गोखरू कलां

नाम—हिन्दी—गोखरू कलां, देशी गोखरू। पञ्जाब—भाखरा, इसक, लोटक। सिन्ध—लटक, निन्दोत्रि-कुण्ड, त्रिकुण्डी। उर्दू—भाकरा। लेटिन—Tribulus Alatus [ट्रिब्यूलस एलेटस]।

वर्णन—यह भी गोखरू की एक जाति है जो सिंध, कच्छ और पश्चिमी राजपूताने के रेगिस्तान और बलूचिस्तान में पैदा होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका फल उत्तम, क्षुधा वर्धक पदार्थ है। यह ऋतु स्राव नियामक है और प्रदाह को कम करता है। इसके गुण छोटे गोखरू के समान ही हैं। बलूचिस्तान में इसके फल प्रसूति के बाद के गर्भाशय के विकारों को दूर करने के लिये दिए जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके गुण दोष और प्रभाव गोखरू के गुण दोष और प्रभाव से मिलते जुलते हैं।

गोइला

नाम—मराठी—गोइली, तुर्गेलमी। कनाड़ी—कुगिनिबालि। लेटिन—Ipomoea Kampanulata [आयपोमोइया कंपेन्यूलेटा]।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिण, कोकण, पश्चिमी घाट, सीलोन और मलाया में पैदा होती है। यह एक लम्बी, पराश्रयी वेल है। इसकी कोमल शाखाएँ रुएँदार और पुरानी शाखाएँ मुलायम होती हैं। इसके पत्ते अण्डाकार, तीखी नोक वाले, मोटे, फिसलने और दोनों तरफ रुएँदार होते हैं। इसकी फली लम्बगोल और मुलायम रहती हैं, इसके बीजों पर हलका मखमली रुआं होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है।

गोगी साग

नाम—पंजाब—गोगी साग, नाना, नारपनीरक, सोनचाल, सप्परा। लेटिन—Malva Parviflora [मालवा परवीफ्लोरा]।

वर्णन—यह वनस्पति बंगाल, संयुक्त प्रदेश, काश्मीर, पंजाब, सिन्ध, बम्बई, मैसूर, मथुरा और अफगानिस्तान में पैदा होती है। यह एक कांटेदार और फैलने वाली वनस्पति है। इसके बीज काले और मुलायम होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका शीतनिर्यास स्नायु मण्डल के लिये एक पौष्टिक पदार्थ है। घाव और सूजन पर इसके पत्तों का पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा आंतों के कृमियों को नष्ट करता है और अत्यधिक रजःस्राव को कम करता है। इसके बीच खाँसी और गुर्दे की तकलीफ में शान्तिदायक वस्तु की तरह दिये जाते हैं।

गोपाली

नाम—बम्बई—गोंपाली। लेटिन—Anisomeles Indica [एनीसोमेलस इण्डिका]।

वर्णन—यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसका पौधा छोटे कद का, शाखाएँ चौकोर, पत्ते मोटे, फल गोलाकार, कुछ चपटे और पकने पर काले हो जाते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट का आफरा उतारने वाली, संकोचक और पौष्टिक है। इसमें पाया जाने वाला इसेंशियल ऑयल गर्भाशय की तकलीफों में लाभदायक है।

गोपी चन्दन

नाम—संस्कृत—सौराष्ट्री, पर्पटी, कालिका, सती, सुजाता, गोपी चन्दन। हिन्दी—गोपी चन्दन, सोरठ की मिट्टी। बंगाली—सौराष्ट्र देशीय मृतिका। मराठी—गोपी चन्दन। गुजराती—गोपी चन्दन।

वर्णन—यह एक जाति की मिट्टी है जो किसी कदर खुशबूदार होती है। इसका रंग मटमैला होता है। यह सौराष्ट्र देश की तरफ पैदा होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोपी चन्दन शीतल, दाह नाशक, व्रण को दूर करने वाली, विष निवारक, और विसर्प रोग को हरने वाली है। प्रदर, रुधिर विकार तथा पित्त और कफ को यह नष्ट करती है। इसका लेप करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता हैं।

यूनानी मत--यूनानी मत से यह सर्द हैं। गरमी की जलन को मिटाती है। खून का फसाद, मासिक धर्म की अधिकता, योनिद्वार से सफेद पानी का बहना, जखम और जहर के उपद्रवों को दूर करती है इसको पानी में घोल कर शक्कर मिलाकर छानकर पीने से मासिक धर्म की अधिकता और श्वेत प्रदर में लाभ होता है। फोड़े फुन्सियों पर इसका लेप करने से लाभ होता हैं।

गोमेद मणि

नाम--संस्कृत--पिंगस्फटिक, गोमेद, पीत रत्नक। हिन्दी—गोमेद मणि। बंगाल—गोमेद। तेलगू—गोमेदकम्। लेटिन—Onyx [ओनिक्स]।

वर्णन—गोमेद मणि हिमालय और सिन्ध में होती है। स्वच्छ कान्ति वाली, चिकनी, दीप्तिमान, व गोल, गोमेद मणि उत्तम होती है। जाति के भेद से यह चार प्रकार की होती है। सफेद रंग की ब्राह्मण, लाल रंग की क्षत्रिय, पीले रंग की वैश्य और नीले रंग की शूद्र होती है। सफेद रंग की चिकनी, अत्यन्त पुरानी, गोमेद मणि को धारण करने से लक्ष्मी और धन की वृद्धि होती है। हलकी, कुरूप, खरदरी और मलिन गोमेद मणि को धारण करने से सम्पत्ति, बल और वीर्य का नाश होता है। जो दोष हीरे में है, वे ही दोष गोमेद मणि में भी होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोमेद मणि कफ, पित्त नाशक, क्षयरोग को दूर करने वाली, नेत्रों को हितकारी, पाण्डुरोग को नष्ट करने वाली, दीपन, पाचक, रुचिकारक, त्वचा को हितकारी, बुद्धि वर्धक और खाँसी को दूर करने वाली होती है।

गोभी

नाम—संस्कृत—अधोमुखा, अनदुजिव्हा, दरवी, दर्विका, गोजिव्हा; गोभी। हिन्दी—गोभी, फूल गोभी। बंगाली—गजियालता, दधिशाखा, शामदुलम। बम्बई—हस्तिपदा, महका, पथरी। मराठी—गोजीभ, पथरी। गुजराती—गोभी। फारसी—कलमेरूमी। अरबी—किब्रनपति। तामील—अनशोवादि। तेलगू--इदुमलिकेचदु, इनुगविरा, हस्तिगसका। उर्दू—गोभी। लेटिन—Elephantopus Scaber [एलीफेण्टापस स्केबर]।

वर्णन—फूल गोभी की तरकारी सारे भारतवर्ष में सब दूर खाई जाती हैं। इसको सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, तीक्ष्ण, कड़वी, कसैली, घाव को भरने वाली आंतों को सिकोड़ने वाली, ज्वर निवारक और कृमिनाशक है। यह वात को पैदा करने वाली, कफ पित्त नाशक, हृदय को लाभकारी तथा प्रमेह, खाँसी, रुधिर विकार, व्रण और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह मुँह की बदबू को दूर करती है। रक्त रोग, हृदय रोग, मूत्र रोग, श्वासनलियों की जलन, विष के उपद्रव और छोटी माता में भी इसको देने से लाभ होता है। इसके पञ्चांग का काढ़ा मूत्रकृच्छ्र में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से यह सर्द और खुश्क हैं। यह कामेंद्रिय की शक्ति को बढ़ाती है। पेट में फुलाव पैदा करती है। पेशाब अधिक लाती है। दिमाग को नुकसान पहुँचाती है। अगर अच्छी तरह हजम न हो तो पेट और पसलियों के बीच में दर्द पैदा करती है। शराब पीने के पहले अगर इसको खा ली जाय तो शराब का नशा नहीं आता।

नुस्खा सईद में लिखा है कि गोभी वायु पैदा करती है, काबिज है, पित्त और खून के विकारों को मिटाती है। उस प्रमेह को जो सुजाक के बाद पैदा होता है, लाभ पहुँचाती है। खाँसी और फोड़े फुन्सी में मुफीद है। इसके पत्तों को पानी में पीसकर पिलाने से वमन के साथ आने वाला खून बन्द हो जाता है। इसके पत्तो के जोशांदे [काढ़ा] से धार देने से गठिया में लाभ होता हैं। इसके पत्तों को पकाकर खाने से ३ दिन में खूनी बवासीर से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है इसके पत्तों को पीसकर टिकिया बनाकर उस टिकिया को कोरे मिट्टी के बर्तन पर गरम करके आँख पर बाँधने से दुखती हुई आँख अच्छी हो जाती है।

सुश्रुत के मतानुसार गोभी सर्पदंश में लाभदायक है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को पुष्ट करने वाली, धातु परिवर्तक, ज्वर निवारक और सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग—मूत्राघात—गोभी की जड़ का काढ़ा पिलाने से मूत्रा घात मिटता है।

आमाशय की सूजन—गोभी के पत्तों को कूटकर चांवलों के साथ औटाकर छानकर पिलाने से आमाशय की सूजन और पीड़ा मिटती है।

ज्वर—इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से ज्वर छूट जाता है।

मूत्र कृच्छ—इसके पत्तों को औटाकर उस पानी को छानकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र कृच्छ मिटता है।

रुधिर का वमन—इसको पानी के साथ पीसकर तोले सवा तोले की मात्रा में पिलाने से रुधिर की वमन और कफ के साथ खून का जाना बन्द होता है।

स्वर भंग—इसके पत्ते और डालियों को पानी में औटाकर उस क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से स्वर भंग मिटता है।

बवासीर—इसके पत्तों का साग बनाकर खाने से खूनी बवासीर मिटता है।

गोभी जंगली

वर्णन—इसके पत्ते मूली के पत्तों की तरह होते हैं। गोभी के पत्तों से इसके पत्तों का रंग ज्यादा सफेद होता है। यह स्वाद में कड़वी होती है। इसके बीज सफेद मिर्चों की तरह मगर उससे कुछ छोटे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह दस्त लाती है, खुश्की पैदा करती है, इसके पत्तों के लेप से जखम भर जाते हैं, इसके पत्तों का रस लगाने से सूखी और गीली खुजली मिट जाती हैं। इसके बीज या सूखी हुई जड़ सात माशे पीसकर शराब के साथ पिलाने से सर्प विष उतर जाता है। [ख० अ०]

गोरख इमली

नाम—संस्कृत—चित्रला, दीर्घदण्डी, सर्पदण्डी, गोरक्षी, गन्धबहुला, पञ्चपर्णिका। हिन्दी—गोरख इमली। मराठी—गोरखचिंच, गोरख इमली। गुजराती—गोरख इमली, मौरम्बली, रुंखड़ो। पोरबन्दर—गोरख इमली। अजमेर—कलवृक्ष कल्पवृक्ष तामील—अनेइपुलि, पेरुकु। तेलगू—ब्रह्मअमलिका। लेटिन—Adansonia Digitara एडन्सोनिया डिजिटेरा।

वर्णन—इस वृक्ष का मूल उत्पत्ति स्थान अफ्रिका है। भारतवर्ष में भी यह कई स्थानों पर लगाया जाता है। इसका पिण्ड नीचे से बहुत मोटा और ऊपर से पतला होता चला जाता है। इसकी ऊँचाई ६० से ७० फुट तक होती है। इसके पिण्ड की गोलाई १६ से ४० फुट तक होती है। इसके फूल बड़े और सफेद कमल के समान होते हैं। गर्मी में इसके पत्ते गिर जाते हैं और बरसात में नये आ जाते हैं। इसका फल एक फुट लम्बा लौकी या तूम्बी की तरह होता है। कहीं २ इसके फल नींबू की तरह छोटे भी रह जाते हैं। इसका फल स्वाद में कुछ खट्टा होता है और इसमें भूरे बीज निकलते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोरख-इमली मधुर, शीतल, कड़वी और ज्वर निवारक तथा दाह, पित्त, विस्फोटक, वमन और अतिसार को दूर करती है। इसके फलों का गूदा शीतल, स्नेहन रोचक और हृदय को बल देने वाला होता है। इसके पत्ते स्नेहन और संग्राहक तथा छाल शीतल, दीपन, स्नेहन और संग्राहक होती है। इसके कोमल पत्तों का लेपव्रण की सूजन पर करने से सूजन की जलन और सख्ती कम होती है।

इसके सूखे पत्तों का चूर्ण अतिसार और ज्वर में लाभदायक हैं। इसके फल का गूदा प्रादाहिक ज्वर या साधारण ज्वर में प्रदाह की हालत में लाभदायक होता है। यह गरमी को कम करके प्यास को बुझा देता है। बम्बई में इसके गूदे को मट्ठे के साथ आमातिसार और रक्तातिसार को दूर करने के लिए देते हैं। कोकण में दमे के रोग को दूर करने के लिए इसके गूदे को अंजीर के साथ देते हैं। इसको जीरे और शक्कर के साथ देने से पित्त से पैदा हुई मन्दाग्नि मिटती है।

यूरोप के अन्दर इसकी छाल ज्वर को नष्ट करने के लिए सिनकोना की प्रतिनिधि मानी जाती है। गायना में इसके फल से बनाया हुआ खट्टा चूर्ण आमातिसार और ज्वरातिसार में उपयोगी माना जाता है। इसके पत्ते स्निग्ध, मूत्रल, ज्वर निवारक और गठान को पकाने वाले माने जाते हैं। इसके बीजों को भूजकर उनका चूर्ण दाँतों की पीड़ा और मसूड़ों की सूजन को दूर करने के काम में लेते हैं। इसकी छाल के तन्तुओं का काढ़ा ऋतुश्राव नियामक माना जाता है।

गोल्ड कास्ट, गेम्बिया और मध्य अफ्रीका में इसकी छाल को कुनैन की तरह प्रभावशाली ज्वर निवारक औषधि मानते हैं। संक्रामक ज्वरों में इसके फल का गूदा बहुत उपयोगी माना जाता है। पेचिश के रोगों में भी इन देशों के अन्दर इसका फल बहुत उपयोगी माना जाता है।

कीर्तिकर और बसु के मतानुसार पार्यायिक ज्वरों में ३० से ४० ग्रेन तक की मात्रा में इसकी छाल का चूर्ण दिन में ३-४ बार देने से अच्छा लाभ होता है।

डाक्टर मूडीन शरीफ के मतानुसार इसके फल का गूदा प्रादाहिक ज्वरों की गर्मी को कम करता है और प्यास को बुझाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गूदा मृदुविरेचक, शांतिदायक और ज्वर तथा पेचिश में उपयोगी है।

वर्तमान अनुभवों से यह निर्णय प्राप्त किया जा चुका है कि यह क्षयरोग में रात के समय होने वाले पसीने को और ज्वर की गर्मी को शांत कर देती है। इसकी छाल अविराम और सविराम दोनों ही प्रकार के ज्वरों में चाहे वे साधारण हों चाहे उपद्रव युक्त हों कुछ लाभ अवश्य पहुँचाती है।

रासायनिक विश्लेषण —इसके फल के गूदे में ग्लूकोज, लुआब, टारटारिक एसिड, ऐलकेलाइड ऐसीटेट और पोटेशियम बाय टारट्रेट पाये जाते हैं। इसमें घुलनशील टेनिन, मोम, क्लोराइड आफ सेडियम और गोंदके समान पदार्थ रहता है। इसकी छाल की राखमें खासकर क्लोराइड आफ सोडियम और कारबोनेट्स आफ पोटास और सोडा पाये जाते हैं।

इसके अन्दर पाये जाने वाले टारटारिक एसिड की तादाद २ प्रतिशत और पोटेशियम बाय टारट्रेट की तादाद १२ प्रतिशत होती हैं। इसमें एडेन्सोनिन नामक एक चमकीला पदार्थ भी पाया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फल का मगज दूसरे दर्जे में सर्द और तर होता है। इसके फल का गूदा पित्त को दस्त की राह से निकाल देता है। वमन और जी का मचलना रोकता है। मेदे में कब्ज पैदा करता है। इसके पत्ते पतले वीर्य को गाढ़ा करते हैं।

मतलब यह कि यह औषधि ज्वर के ऊपर अपना प्रभावशाली असर बतलाती है। कई देशों में इसका महत्व ज्वर के लिए कुनेन या सिनकोना के बराबर समझा जाता है। पेचिश और अतिसार के अन्दर भी इसके पत्ते और फल अच्छा लाभ पहुँचाते हैं। गर्मी की वजह से होने वाली घबराहट और बहुत प्यास लगने के लक्षण को भी यह वनस्पति दूर करती है। दमे के ऊपर इसके फल के गूदा को सूखे अंजीर के साथ कुछ दिनों तक लगातार लेने से दमा हमेशा के लिए चला जाता है।

उपयोग—आमातिसार—इसके फल के गूदे को आधी रत्ती से १० रत्ती तक मट्ठे के साथ खिलाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

ज्वर—इसकी २॥ तोले छाल को १५ छटांक जल में औंटाकर १० छटाँक जल रहने पर छानकर उसकी

चार खुराक कर दिन में चार बार पिला देने से ज्वर उतर जाता है। इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से बारी से आने वाला ज्वर छूट जाता है।

पाचन शक्ति की कमजोरी--इसके क्वाथ पर पीपल का चूर्ण भुर भुरा कर पीने से पाचन शक्ति बढ़ती है।

त्वचा रोग--त्वचा और चर्म रोगों पर इसकी गिरी का लेप करने से लाभ होता है।

मस्तक शूल--इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से पित्त का मस्तक शूल मिटता है।

मूत्राविरोध--इसकी छाल के क्वाथ में जौखार डालकर पिलाने से मूत्र की रुकावट दूर होकर मूत्र अधिक होता है।

दमा--इसके फल के गूदा के चूर्ण को सूखे अंजीर के साथ लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से दमा मिट जाता है।

गोरखमुण्डी

नाम--संस्कृत--अरूणा, महामुण्डी, मुंडिरिका, नील कदम्बिका तपस्विनी, श्रावणी। हिन्दी--गोरखमुण्डी बंगाल--गोरखमुण्डी, मुरमुरिया, चऊलनदि। मराठी--मुण्डी, मुन्दरी, गोरखमुण्डी। गुजराती--गोरख मुण्डी, मुण्डी, बढ़ियोकलर। पंजाब-गोरखमुण्डी, मुण्डी, खमद्रुस, जख्मेहयात। तामील--कोटकरंडई। तेलगू--बोड सोरम, बोडेतरपू। अरबी--कमझारियुस, कमदारियुस। फारसी--कमदुरियुस। उर्दू--कामदरयुस, मुण्डी। लेटिन--Spheranthus Inbicus (स्पेरेन्थस इण्डिकस) S. Mollis (एस० मोलिस)।

वर्णन--गोरख मुण्डी का क्षुप आधे से लेकर डेढ़ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पौधा विशेष कर जमीन पर फैला हुआ रहता है। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद जाति के रुँए रहते हैं। इसकी जड़ के सिरे पर से इसकी शाखाएँ निकलती हैं जो सुतली के समान मोटी होती हैं। इसके पत्ते आधे से दो इञ्च तक लम्बे होते हैं इनकी किनारे के ऊपर छोटे २ दांत कटे हुए रहते हैं। ये गेंदे के पत्तों की तरह होते हैं। इसके पत्तों का रंग फीका हरा होता है। डालियों के सिरे पर गुलाबी या बैंगनी रंग के फूल आते हैं। फूलों की घुण्डी होती है। यह १।४ से १।२ इञ्च के व्यास की होती है, इस घुण्डी में पास २ बहुत से छोटे फूल गुंथे हुए रहते हैं। इसकी गन्ध बहुत तीव्र होती है। यह वनस्पति वर्षा ऋतु के बाद तर जमीन में पैदा होती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक को मुण्डी और दूसरी को महामुण्डी कहते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव--आयुर्वेदिक मत से मुण्डी कसैली, पचने में चरपरी, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, मधुर, दस्तावर हलकी, बुद्धिवर्द्धक, बलदायक, धातु परिवर्तक तथा कण्ठमाल, अजीर्ण क्षय, की ग्रंथियाँ, वायु नलियों का प्रदाह, पागलपन श्लीपद, पांडुरोग, अरुचि, योनिशूल, गर्भाशय और योनि सम्बन्धी व्याधियाँ, बवासीर, पथरी पित्त, मृगी, श्वास, कृमि रोग, कुष्ठ, विष विकार, अतिसार और वमन को दूर करने वाली है। यह गुदा द्वार के शूल, छाती का ढीलापन और आधा शीशी में भी लाभदायक है।

महामुण्डी मधुर, कड़वी, गरम, रसायन, रुचिकारक, स्वर को शुद्ध करने वाली, प्रमेह को नष्ट करने वाली और वात विनाशक है।

चक्रदत्त के मतानुसार गोरखमुन्डी के पचांग का चूर्ण करके ६ माशे से लेकर एक तोला तक १ तोला घी और ५ माशे शहद के साथ मिलाकर दिन में दो बार खाने से और ऊपर नीम गिलोय का क्वाथ पीने से भयंकर वात रक्त वा कुष्ठ का रोग नष्ट होता है।

भाव मिश्र के मतानुसार गोरखमुन्डी और सूंठ को समान भाग लेकर, उसका चूर्ण बनाकर गरम पानी के साथ लेने से आमवात का रोग नष्ट होता है।

बवासीर के रोग के अन्दर भी यह औषधि प्रभावशाली असर बतलाती है। इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में मट्ठे के साथ पीने से थोड़े दिनों में बवासिर नष्ट हो जाता है। इसको सिल पर

पीसकर लुग्दी बनाकर बवासीर, कण्ठमाला और सूजी हुई गठानों पर बाँधने से अच्छा लाभ होता है। इसकी जड़ के चूर्ण को सेवन करने से पेट के कृमि भी नष्ट होते हैं।

स्टेवर्ट के मतानुसार पंजाब में इसके फूल विरेचक, शीतल और पौष्टिक माने जाते हैं।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष का काढ़ा मूत्रसम्बन्धी बीमारियों में विशेष उपयोगी होता है। मूत्राशय की पथरी में इसके परिणाम बहुत सन्तोषजनक पाये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार वह वनस्पति कटु, अग्निवर्द्धक और उत्तेजक है। यह ग्रंथियों की सूजन पथरी और पीलिया में लाभदायक है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल और स्पेरेन्थाइन नामक उपक्षार पाया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के अन्दर गोरखमुण्डी को बहुत अधिक महत्व प्राप्त है। कई यूनानी चिकित्सकों ने इसको आबे हयात अथवा संजीवन बूँटी बतलाया है।

यूनानी मत से इसकी दोनों जातियाँ गरम और तर होती हैं। किसी २ के मत से ये मौतदिल और तर होती हैं। यह वनस्पति दिल, दिमाग, जिगर और मेदे को ताकत देती है। दिल की धड़कन, देहशत, पीलिया, आँखों का पीलापन, पित्त और वात से पैदा हुई बीमारियों तथा पेशाब और गर्भाशय की जलन दूर करती है। कण्ठमाला क्षयजनित ग्रंथियाँ, तर और खुश्क खुजली, दाद, कोढ़ और वात सम्बन्धी रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

गोरखमुण्डी के सारे पौधों को छाया में सुखाकर, पीसकर उनका हलवा बनाकर खाने से मनुष्य का यौवन स्थिर रहता है। उसके बाल सफेद नहीं होते। नेत्र रोगों पर भी यह वनस्पति अच्छा काम करती है। ऐसा कहा जाता है कि गोरखमुण्डी की १ घुन्डी [फल] साबित निगल जाने से एक वर्ष तक आँख नहीं आती।

मुफर्रेदाद इमाम नामक ग्रन्थ का मत है कि अगर गोरखमुण्डी को ३॥ तोले की मात्रा में रात में पानी में भिगो दें और सबेरे उस पानी को मल छानकर पीलें तो गण्डमाला का रोग बिलकुल मिट जाता है। अगर रोगी बच्चा हो तो मात्रा कम देना चाहिये।

तालीफ शरीफ नामक मशहूर ग्रन्थ के ग्रन्थकार का कथन है कि गोरखमुण्डी बुद्धि को बढ़ाती है। इसके प्रयोग से पेट के कीड़े मर जाते हैं। फोड़े फुंसी और योनि के दर्द में भी यह लाभ पहुँचाती है। शरीर के पीलेपन को मिटाती है। सुजाक में भी यह लाभदायक है। गोरखमुण्डी के बीजों को पीसकर उनमें समान भाग शक्कर मिला कर एक हथेली भर प्रतिदिन लगातार खाने से बहुत ताकत पैदा होती है और मनुष्य दीर्घायु हो जाता है।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार जब तक इस पौधे को इकट्ठा करके उसका चूर्ण करके शहद और घी के साथ खाने से ४० दिन में जवानों की सो ताकत हासिल होती है। इसके फूलों को भी ४० दिन तक खाने से मनुष्य की शक्ति बढ़ती है। अगर इसकी जड़ को दूध के साथ २ साल तक लगातार खाई जाय तो मनुष्य का शारीरिक संगठन बहुत अच्छा हो जाता है और बाल कभी सफेद नहीं होते।

एक दूसरे यूनानी हकीम के मतानुसार अगर इसके पत्ते और इसकी जड़ को पीसकर गाय के दूध के साथ ३ रोज तक लगातार खावें तो मनुष्य की कामशक्ति बेहद बढ़ जाती है। इस औषधि को श्रावण और भादो के महीने में गाय के घी के साथ, चैत्र और बैशाख में शहद के साथ, जेठ और आषाढ़ में शक्कर के साथ, माघ और फागुन में कांजी के साथ, कुवार और कार्तिक में गाय के दूध के साथ और अगहन तथा पौष में मट्ठे के साथ सेवन करें तो मनुष्य की कामशक्ति की ताकत, स्तम्भन की ताकत और बलवीर्य बहुत बढ़ जाते हैं।

अगर इसके पूरे पेड़ को उखाड़ कर, सुखाकर उसकी धूनी बवासीर के मस्सों को दी जाय तो वे सूख कर खिर जाते हैं। इसके पत्तों का लेप नारू पर करने से नारु नष्ट हो जाता है।

सैय्यद महम्मदअली खां अपने आबेहयात नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि हर साल चैत्र के महीने में ५-७ गोरख मुण्डी के ताजे फल थोड़े से दाँत से चबाकर पानी के घूँट के साथ हलक में उतार लें तो मनुष्य की आँख की तन्दुरुस्ती और रोशनी हमेशा कायम रहती है।

मात्रा—इसके फल के चूर्ण की मात्रा २० रत्ती की है।

उपयोग—पेट के कीड़े—इसके बीजों के चूर्ण की फक्की देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

बवासीर—इसकी छाल के चूर्ण को मट्ठे के साथ पिलाने से बवासीर मिटता है।

नपुंसकता—इसकी ताजा जड़ को पानी के साथ पीसकर उसकी लुग्दी को कलइदार पीतल की कड़ाही में रख कर लुग्दी से चौगुना काली तिल्ली का तेल और तेल से चौगुना पानी डालकर मंदी आंचपर पकावें। जब पानी जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको छान कर रख लें। इस तेल का कामेंद्रिय पर मालिश करने से तथा १० से ३० बूँद तक पान में लगातार दिन में २-३ बार खाने से नपुंसकता मिटती है।

नेत्ररोग—इसकी जड़ को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बनाकर उसमें समान भाग शक्कर मिलाकर गाय के दूध के साथ खाने से नेत्रों के बहुत से रोग मिटते हैं।

गुल्म रोग—इसकी एक तोला जड़ को पीस कर उसको मट्ठे में छान कर पीने से गुल्म रोग मिटता है।

गण्डमाला—गोरखमुण्डी की जड़ को गोरखमुण्डी के रस के साथ पीस कर लेप करने से और इसका ४ तोला रस पीने से गण्डमाला रोग मिटता है।

वातरक्त—गोरखमुण्डी के चूर्ण को कुटकी के चूर्ण में मिलाकर शहद और घी के साथ चाटने से वातरक्त में लाभ होता है।

श्वेत कुष्ट—एक भाग मुण्डी और आधा भाग समुद्र शोष का चूर्ण बनाकर २ माशे से ९ माशे तक की मात्रा में लेने से श्वेतकुष्ट में लाभ होता है।

सन्धिवात—इसके ८ माशा चूर्ण को गरम जल के साथ फक्की लेने से सन्धिवात मिटता है।

कम्पवात—लौंग के चूर्ण के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से कम्पवात मिटता है।

बवासीर—गाय के दूध के साथ इनके चूर्ण को लेने से बवासीर में लाभ होता है।

अनेक रोग—इसके चूर्ण को नीम के रस के साथ लेने से नपुंसकता, शक्कर के साथ लेने से वीर्य की कमजोरी, बासी पानी के साथ लेने से भगन्दर, रक्तपित्त, 'श्वास और तेजरा, बकरी के दही के साथ लेने से मृतवत्सा रोग, शक्कर के साथ लेने से जलोदर, काली मिरच के साथ लेने सें ज्वर, जीरे के साथ लेने से दाह, गाय के दूध के साथ लेने से चित्तभ्रम और प्रमेह, धनिये के साथ लेने से आंख का रोया, कपूर के साथ लेने से बवासीर और नींबू के साथ लेने से मिरगी रोग मिटता है। जायफल के चूर्ण के साथ इसका चूर्ण मिला कर बकरी के दूध के साथ लेने से स्त्री गर्भ धारण करती है।

बनावटें—गोरखमुण्डी का अर्क—गोरखमुण्डी के फलों को शाम के वक्त पानी में भिगोकर, सवेरे भपके में रखकर उसका अर्क खींच लेते हैं। यह अर्क नेत्र रोग, दिल की धड़कन और हृदय की कमजोरी को दूर करता है। इसके लगातार पीने से गीली और सुखी खुजली मिट जाती है। शुरू में इसको १॥ तोले की मात्रा में लेना चाहिये। उसके बाद इसको धीरे २ बढ़ाते रहना चाहिये। इसे सेवन करते समय खट्टी और गरम चीजें, अधिक मेहनत के काम और मैथुन से बचना चाहिये।

गोरखमुण्डी का तेल—गोरखमुण्डी के पेड़ को थोड़े पानी में भिगोकर, बाद में सिल पर पीसकर पानी में छानकर जितना वह पानी हो, उसका चौथाई काली तिल्ली का तेल डालकर मन्दी आँच से पकाना चाहिये। जब पानी जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस तेल में से ७ माशे तेल रोजाना ४० दिन तक खाने से कामेन्द्रिय को बहुत शक्ति मिलती है।

माजून गोरखमुण्डी—पीली हरड़, आंवला, बड़ी हरड़, काबुली हरड़, धनिये की मगज, शहातरा और मुलेठी एकएकतोला। गोरखमुण्डी के फल ७ तोला; मिश्री ४२ तोला इन सब चीजों को लेकर पहले तीनों प्रकार की हरड़ को बादाम के तेल में भून लेना चाहिये। उसके बाद सबका चूर्ण करके मिश्री की चाशनी बना कर उसमें डाल देना चाहिये।

इस माजून में से २ तोला माजून प्रतिदिन सवेरे शाम गाय के दूध के साथ लेने से हर प्रकार के नेत्र रोगों में बहुत लाभ होता है। जिन लोगों को आंखे आने की आदत पड़ गई हो उनके लिये यह वस्तु बहुत लाभदायक है।

कुच कठोर तेल—गोरखमुंडी के पचांग को और लींडी पीपर को समान भाग लेकर पानी के साथ सिल पर पीसकर लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार पीतल की कड़ाही में रखकर उस लुगदी से चौगुना काली तिल्ली का तेल और तेल से चौगुना पानी डालकर हलकी आँच से पकावें। जब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लें।

इस तेल में रुई भिगोकर उस रुई को स्तनों के ऊपर बांधने से व तेल को नाक के द्वारा सूँघने से स्त्रियों के ढीले पड़े स्तन बहुत कठोर हो जाते हैं। [बंगसेन]

गोरख मुण्डी घृत—गिलोय, देवदारू, हलदी, जीरा, स्याह जीरा, बच्छ, नागकेशर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गूगल, तज, जटामासी, कूट, तमाल पत्र, इलायची, रासना, काकड़ा सिंगी, चित्रक की जड़, वायविडंग असगन्ध, शिलारस, सेंधानिमक, कुटकी, तगर, इन्द्रजौ, अतीस और चन्दन इन सब चीजों को एक २ तोला, लेकर चूर्ण करके पानी के साथ सिलपर पीसकर लुग्दी बना लेना चाहिये। इस लुग्दी को एक कलाईदार बड़ी पीतल की कड़ाही में रखकर उस कड़ाही में गोरखमुण्डी का रस ४६ तोला, अड्सूसे के पत्तों का रस ४६ तोला, अरंडी की जड़ या पत्तों का रस ४६ तोला, वेल के पत्तों का रस ४६ तोला भोरीगणी का रस ४६ तोला, गाय का दूध ४६ तोला, और गाय का घी ४६ तोला इन सब को डालकर धीमी आंच से पकावें। जब सब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये।

इस मुंडी के घृत को १ तोले से चार तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन सवेरे शाम दूध के साथ लेने से अण्ड वृद्धि, आंतवृद्धि, हिरनियां इत्यादि अण्डकोष के तमामरोग, अण्डकोष में वायु उतरने को, आँत उतरने, पानी भरने अथवा मेद वृद्धि से होने वाली सारणगाँठ तथा श्लीपद, यकृत या लीव्हर की वृद्धि, तिल्ली की वृद्धि, बवासीर इत्यादि तमाम रोग नष्ट होते हैं।

ज्वर नाशक भस्म—२० रुपये भर संगजरात को लेकर उसको २ सेर मुण्डी के पंचांग के रस में पीसकर टिकड़ी बना लेना चाहिये। दूसरी तरफ गोरखमुण्डी को पीसकर लुग्दी बनाकर उस लुग्दी में इस टिकड़ी को रखकर कपड़ मिट्टी में करके २० सेर कण्डे की आँच में रख देना चाहिये। ठंडी होने पर उस कपड़ मिट्टी को हटाकर उसके भीतर की राख को खरल करके रख लेना चाहिये। इनमें से ३ तीन रत्ती तक भस्स तुलसी के रस और शहद या शक्कर के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। [जंगलनी जड़ी बूँटी]

गोरखमुण्डी रसायन—गोरखमुण्डी के पौधों को फूल आने से पहले शुभ मुहूर्त में लाकर छाया में सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इसी प्रकार काले भांगरे का भी चूर्ण बना लेना चाहिये। इन दोनों चूर्णों को समान भाग मिला कर इनमें से १ तोला चूर्ण घी के साथ प्रतिदिन चाटना चाहिये। पथ्य में केवल दूध और भात लेना चाहिये। इस प्रकार ४-६ महीने तक लगातार इसका सेवन करने से वृद्धावस्था नष्ट होकर युवकों के समान बल, वीर्य, उमंग और और कामशक्ति प्राप्त होती है।

गोल

नाम—संस्कृत—जीहनी, जीवंती। हिन्दी—गोल। मराठी—गोल। बंगाल—चिक्नु, जीवन, जीवन, जबोन, जुपोंग। बम्बई—गोल, खरगुल। बरमा—सपचपन। मध्यप्रदेश—बहुमनु। तामिल—मिनि, वेन्दह, विरई, अम्बरति। तेलगू—अवकाक, मुष्टि प्रियालु, मोरली। लेटिन—Trema orientalis [ट्रेमा ओरिएण्टेलिस]।

गुण, दोष और प्रभाव—यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। यह एक बहुत जल्दी बढ़ने वाला वृक्ष होता है इसके पत्ते खरदरे और ७ से १२॥ सेन्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसका फल पकने पर काला हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मृगी रोग में उपयोगी मानी जाती है।

गोविन्दफल (गिटोरन)

नाम—संस्कृत—गोविंदी, ग्रंथिला, किंकिणी, व्याघ्रनखी, व्याघ्रघटी। हिन्दी—गोविन्दफल। मारवाड़ी—गिटोरन। बंगाली—कालुकेर। बम्बई—अन्ति, तरन्ती, वाघांटी। मराठी—गोविन्दी, वाघांटी। पंजाब—हिंगुरना। तामील—अदनिदई, इबुदी। तेलगू—सालिकी। लेटिन—Capparis Zeylanica [केपेरिस झेलोनिका]।

वर्णन—यह एक बहुत बड़ी बेल होती है। इसमें मुड़े हुए कांटे लगते हैं। इसके फूल सफेद और बड़े होते हैं। इसके पत्ते अण्डाकार और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसका फल लम्बगोल और पकने पर लाल रंग का होता है। इसके कोमल फलों की तरकारी बनाई जाती है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ की छाल कड़वी, शीतल, पित्त निस्सारक, कफनाशक, उत्तेजक और सूजन को नष्ट करनेवाली होती है। इसका फल कफ और वात को नष्ट करता है। इसकी जड़ की छाल शान्तिदायक, अग्निदीपक और पसीने को रोकने वाली होती है। सूतिका ज्वर में इसका क्वाथ बनाकर देने से लाभ होता है। गर्मी के दिनों में बगल में तथा मुँह पर जो फुन्सियाँ उठती हैं उन पर इसकी जड़ को ठंडे पानी में पीसकर लेप करने से लाभ होता है। नासूर और भगन्दर में इसके तेल में रुई को तर करके उसकी बत्ती बनाकर रखने से घाव भर जाता है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर उसमें पानी मिलाकर जितना पानी हो उससे चौथाई तेल डालकर आग पर पकाने से पानी जल जाने पर इसका तेल तैयार होता है।

एटकिन्सन के मतानुसार उत्तरी भारतवर्ष में इसके पत्ते बवासीर, फोड़े, सूजन और जलन पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

केम्पबेल के मतानुसार छोटा नागपुर में इसकी छाल देशी शराब के साथ हैजे की बीमारी में दी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक और मूत्रल है।

उपयोग—दाह और खुजली—इसके पत्तों का लेप करने से दाह और खुजली मिट जाती है।

बवासीर की सूजन—बवासीर की सूजन मिटाने के लिये इसके पत्तों की लुग्दी बनाकर बाँधना चाहिये।

हैजा—इसकी छाल के चूर्ण को सिरके में घोंटकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

उपदंश—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से उपदंश मिटता है।

गोबिल

नाम—बंगाल—गोबिल। हिन्दी—गोबिल, पानीवेल। मारवाड़ी—पानीवेल, मुसल मुरीया। गुजरात—जंगलीदाख। पोरबन्दर—जंगलीदाख। तेलगू—बदसरिया। लेटिन—Vitis Latifolia [व्हिटिस लेटिफोलिया]।

वर्णन—यह एक लता होती है। इसकी बेल पतली, लम्बी, सन्धियों वाली और बैंगनी रंग की होती है। इसके पत्ते द्राक्ष के पत्तों की तरह होते हैं। पत्तों के सामने की ओर से तन्तु निकलते हैं। इन तन्तुओं पर बहुत सुन्दर लाल रंग के फूलों के गुच्छे लगते हैं। इसके फल कुछ गोलाई लिये हुये काले रंग के करोंदों की तरह होते हैं। इसकी बेल, पत्ते, फूल और फल सब द्राक्ष से मिलते जुलते होते हैं। मगर ये खाने के काम में नहीं आते।

गुण, दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मूत्रल और धातु परिवर्तक है।

इसके पत्तों को पीसकर नारू के ऊपर बाँधते हैं। इसकी जड़ को जहरी जानवरों के डंक मारने पर लगाने से लाभ होता है।

गौलोचन

नाम—संस्कृत—गौरोचन, गोपित्त, वन्दनीया, मनोरमा, मंगला, शिवा, गोपित्तसंभवा, पिंगला, इत्यादि। हिन्दी—गौलोचन। बंगाल—गोरोचना। मराठी—गोरोचन। गुजराती—गोरो चन्दन, गोरोन। तेलगू—गोरोचनम। फारसी—गयरोहन। अरबी—हजरुल वक्कर। लेटिन—Bostanrus (बोस्टेंरस)

वर्णन—गोरोचन गाय के मस्तक का पित्त होता है। इसका रंग पीला होता है। इसकी गोली चपटी, लम्बी और कोई-कोई तिकोनी होती है। जब इसको निकालते हैं तब यह मोम की तरह मुलायम होती है। फिर ठंडी होने पर बुझे हुए चूने की तरह सख्त हो जाती है। इसका रंग पीला होता है। किसी-किसी पर काले छींटे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से गोलोचन अत्यन्त शीतल, रुचिकारक, मंगलदायक, वशीकरण, शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला, कमोद्दीपक तथा भूतबाधा, ग्रह की पीड़ा, विष विकार, कोढ़, कृमि, उन्माद, गर्भश्राव क्षत, रक्त विकार और नेत्र रोगों को नष्ट करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। गिल्लानी के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम है। यह वायु की सूजन को बिखेरता है। पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ता है। इसका लेप करने से चेहरे के दाग और झाँई मिटकर सुन्दरता बढ़ती है। घाव पर या किसी स्थान पर बहते हुए खून पर इसको भुरभुराने से खून बन्द हो जाता है।

बच्चों की सरदी और डिब्बे की बीमारी में इसको १ जौ की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है। पीलिया और बवासीर में यह लाभ पहुँचाता है। सिर की गंज पर इसको शराब के साथ पीसकर लगाने से बाल आ जाते हैं। इसको आँख पर लगाने से आँख का जाला कट जाता है और ज्योति तेज हो जाती है। इसको मसूर के दाने के बराबर लेकर चुकन्दर के रस में पीसकर नाक में टपकाने से आँख से नजले का पानी आना रुक जाता है।

यह वस्तु चर्बी वर्द्धक भी है। इसको ४ जौ के बराबर लेकर बादाम या पिस्ते के साथ खाने से कुछ दिनों में में शरीर मोटा हो जाता है।

मिरगी के रोग पर भी यूनानी हकीम इसको बहुत उपयोगी मानते हैं। चुकन्दर के हरे पत्ते के रस में इसे पीस कर नाक में टपकाने से बच्चों की मिरगी जाती रहती है। अगर एक एक माशा गौरोचन दिन में ३ बार गुलाब जल में पीसकर ३ दिन तक पिलाया जाय तो जन्म भर के लिए मिरगी आना बन्द हो जाती है। मगर इसकी इतनी बड़ी मात्रा शरीर में विषैल असर दिखलाती है। इसके लिए इसका प्रयोग बहुत समझ बूझकर करना चाहिये।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा १ रत्ती से ६ रत्ती तक की है। मगर मोहित में लिखा है कि मिरगी वाले को इसकी २१ रत्ती तक की मात्रा दी जा सकती है।

यह गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाता है और सिर में दर्द पैदा करता है। इसका दर्पनाशक कतीरा है।

घड़मकड़ा

नाम—यूनानी—घड़मकड़ा।

वर्णन—यह एक रोइदगी होती है जिसके बीज लाल रंग के राई के दाने की तरह होते हैं। ये बीज फलियों में रहते हैं। इसके पत्ते नागर बेल के पान की तरह, फूल काले रंग के और फली कुल्थी की फली की तरह होती है। इसकी एक जाती और होती है। जिसे दूधिया घड़मकड़ा कहते हैं। यह सफेद और चमकीला होता है। इसके पत्ते सेम के पत्तों की तरह, फल बड़ के वृक्ष के फलों की तरह और जड़ मूली की तरह सफेद होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह खुश्क है। किसी किसी के मत से पहले दरजे में गरम और तर है। यह गुर्दे और कमर को ताकत देती है। वीर्य को गाढ़ा करती है। काम शक्ति को बढ़ाती है। काम शक्ति को बढ़ाने वाले चूर्ण और माजूनों में कई जगह यह वस्तु डाली जाती है। (ख० अ०)

घनसर

नाम—संस्कृत—भूतंगकुशा, नागदन्ती। हिन्दी—घनसर, हकुम,। बंगाल—बरागाछ। बम्बई—गनसुर, गुनसूर। मराठी—घणसर। आसाम—बरमापरोकुपि। अवध—अर्जुना। तामील—मिलगुनरी। तेलगू—भूतल भेरी, भूतनकुसुम। लेटिन—Croton Oblongifolium (क्रोटन आँबलांगिफोलियम)।

वर्णन—यह वनस्पति दन्ती और जमालगोटे की ही एक जाति है। यह दक्षिणी कोकण और बंगाल में बहुत पैदा होती है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल चिकनी और खाकी रंग की, पत्ते आम के पत्तों की तरह पर किनारों पर कुछ कटे हुए होते हैं। ये पत्ते डण्ठल समेत ६ से १२ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसके फूल फीके हरे रंग के होते हैं। इसकी मजरी पकने पर रूएँदार होती है। इस औषधि की छाल, पत्ते और बीज काम में आते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके बीज और फल विरेचक होते हैं। सूजन को दूर करने वाली औषधियों में यह एक उत्तम औषधि है। किसी भी प्रकार की सूजन में फिर चाहे वह शरीर के भीतर हो या बाहर इस औषधि को देने से लाभ होता है। फेफड़े की सूजन, सन्धियों की सूजन, यकृत की सूजन इत्यादि सब प्रकार की सूजन को नष्ट करने वाली औषधियों के वर्ग में इसका एक प्रधान स्थान है। नवीन और जाज्वल्य सूजन में इसका बहुत चमत्कारिक असर होता है। प्राचीन सूजन में इसका असर इतना प्रभाव शाली नहीं होता।

इसकी मात्रा कुछ अधिक दे देने पर भी कोई विशेष हानि नहीं होती। सिर्फ कुछ दस्त अधिक होते हैं और सूजन की बीमारी में अधिक दस्त होने से कोई नुकसान नहीं होता। घनसर को अगर निर्गुण्डी और कणगच [कटकरंज] के साथ दिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। क्योंकि कटकरंज इसकी तीव्रता को कम करके दोषों को दूर कर देता है।

नवीन ज्वर और जिस ज्वर के साथ सूजन हो अथवा जो ज्वर पित्त के दूषित होने से हुआ हो उसमें इस औषधि के सूजन को नष्ट करने और यकृत को उत्तेजित करने के लिए देते हैं। ऐसे समय में इसको नौसादर के साथ देने से यह अच्छा काम करती है। इस मिश्रण से यकृत की क्रिया सुधरती है। पित्त शुद्ध होता है। दूषित पित्त दस्त की राह बाहर निकल जाता है और बढ़ा हुआ यकृत ठीक हो जाती है। यकृत की सूजन को दूर करने के लिए वास्तव में यह दिव्य औषधि है।

घनसर को एक उत्तम विष नाशक औषधि भी माना जाता है। कोकण में साँप के विष पर इसे १ से २ तोले तक की मात्रा में दो २ घण्टे के अन्तर पर देते हैं। कोकण में कलेजे [लीवर] के बढ़ जाने की पुरानी बीमारी में और पार्यायिक ज्वरों में इसको भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रयोग में लेते हैं। मोच, रगड़ और सन्धिवात की सूजन पर इसको लगाने के उपयोग में लिया जाता है।

नागपुर की मुण्डा जाति के लोग इसकी जड़ को दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर प्राचीन आमवात और सन्धिवात को दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक और धातु परिवर्तक है। इसको सर्पदंश के काम में भी लेते हैं। इसमें एक प्रकार का उपक्षार रहता है।

केश और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

मात्रा—इसकी मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक है जो उचित अनुपान के साथ देना चाहिये।

घनेरी

नाम—हिन्दी और मारवाड़ी—घनेरी। मराठी—घनेरी। गुजराती—घनिदलियो। तामील—मकदम्बुउनि। लेटिन—Lantana Indica [लेंटेना इण्डिका]

वर्णन—घनेरी के पौधे २ से ५ हाथ तक ऊँचे होते हैं। ये बरसात में बहुत पैदा होते हैं। इसकी कोमल शाखाओं पर तीन २ पत्ते चक्र की तरह लगे रहते हैं। ये बहुत सुन्दर और कंगूर दार होते हैं। इसके फूल सूक्ष्म, सफेद रंग के और अन्दर पीले रंग के रहते हैं। इसके फल काली मिरच के समान होते हैं। इस सारे पौधे में एक तीव्र गन्ध रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी जड़ का काढ़ा प्रसूति कष्ट से ग्रसित स्त्री को पिलाने से फौरन प्रसव हो जाता है। इसके पत्ते फोड़े फुंसी और घावों पर बाँधने से अच्छा लाभ होता है। इस वनस्पति को ब्राजील में चाय की तरह इस्तेमाल करते हैं। इसके पत्तों को मसल कर सूँघने से सर्दी चली जाती है और शरीर में स्फूर्ति आती है।

इसकी एक जाति और होती है। जिसको लेटिन में लेंटेना एक्यूलिएटा तथा लेंटेना केमेरा कहते हैं। यह ज्वर निवारक, शांतिदायक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और आक्षेप निवारक मानी जाती है। इसका काढ़ा मलेरिया, सन्धिवात और धनुष्टङ्कार रोग में दिया जाता है। यह एक तेज, पौष्टिक वस्तु है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

घासलेट (मिट्टीका तेल)

नाम—हिन्दी--घासलेट का तेल, मिट्टी का तेल अंग्रेजी--केरोसिन ऑइल।

वर्णन—घासलेट या मिट्टी का तेल हिन्दुस्तान के घर २ में जलाने के काम में लिया जाता है। इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से मिट्टी का तेल चौथे दर्जे तक गरम और खुश्क हैं। किसी किसी के मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह कृमिनाशक, वायु को बिखेरने वाला और घाव को भरने वाला होता है। इसमें कपड़े को भिगोकर योनिद्वार में रखने से मासिक धर्म साफ हो जाता है। इसको कान में टपकाने से कान का दर्द और बहरापन चला जाता है। इसके तेल में कपड़ा तर करके जख्म को साफ करने से जख्म जल्दी भर जाता है मगर जलन बहुत होती है। सरदी की बीमारियों में भी बहुत लाभदायक है। फालिज, लकवा, गठिया, धनुर्वात और स्नायुयंत्र से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी बीमारियों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। इसको २ माशे पानी में डालकर पीने से कफ की पुरानी खाँसी और दमे में बहुत लाभ होता है। इसके अन्दर बत्ती को तर करके रखने से गुदा द्वार के कीड़े मर जाते हैं। यह गर्भाशय की वायु को बिखेरता है, सरदी को मिटाता है। बवासीर में लाभदायक है। पथरी को तोड़ता है और मरे हुये बच्चे को गर्भाशय से निकाल देता है।

मिट्टी का तेल और प्लेग—प्लेग के ऊपर भी यह औषधि बहुत मुफीद साबित हुई है। जो लोग प्लेग के दिनों में इसका भीतरी या बाहरी प्रयोग करते रहे हैं वे इस दुष्ट बीमारी से बच गये हैं। प्लेग के ऊपर इस तेल को प्रयोग करने का तरीका यह है।

नीम और जल पिप्पली [Lippia Nodiflora] के हरे पत्ते लेकर उनका रस निकाल लेना चाहिये। जितना रस हो उतना ही घासलेट का तेल उसमें मिलाकर रख लेना चाहिये। इसमें से प्लेग के रोगी को २ तोला औषधि हर दो घंटे के अन्तर से पिलाना चाहिये और गठान पर लगाने के लिये नीचे लिखा मरहम तैयार कर लेना चाहिये।

आकड़े का दूध ४० तोला, मुर्दासिंगी २ तोला, लींडी पीपल २ तोला, भैंसा गूगल ४ तोला, मनुष्य की हड्डी ५ तोला, पलाश की जड़ ५ तोला, सिंदूर ५ तोला इन सब चीजों को एक दिल करके इसका गठान पर लेप करना चाहिये। अगर गठान बहुत सख्त हो और वह न फूटती हो तो इस लेप में ५ तोला सज्जी खार और ५ तोला बुझाया हुआ कली का चूना मिलाना चाहिये।

अगर रोगी एकदम मृत्यु के मुँह में चला गया हो और उसके बचने की उम्मीद न हो तो उसे एक दम २० तोला सफेद रंग का घासलेट पिला देना चाहिये। इस उपाय से कभी २ असाध्य अवस्था में भी लाभ हो जाता है।

जो लोग प्लेग के रोगियों की परिचर्या करते हों उनको चाहिये कि वे अपने सारे शरीर पर घासलेट का तेल चुपड़लें।

साँप का जहर और घासलेट का तेल—सर्प के विष के ऊपर भी यह तेल बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कुछ वर्षों के पहले यू० पी० के एक ग्राम में सर्प मृत्यु कार्यालय स्थापित हुआ था और इसी तेल के योग से एक औषधि बनाकर उसका प्रचार इस कार्यालय ने किया था। इस औषधि का नुस्खा सन् १९३४ के वैद्यकल्पतरु में प्रकाशित हुआ था वह इस प्रकार था :--सफेद मिट्टी का तेल २० तोला, पीपरमेंट के फूल ५ तोला, कपूर १० तोला, कारबोलिक एसिड २॥ तोला और युक्लेप्टस आइल १ तोला। इन सब चीजों को एक मजबूत काग वाली शीशी में बन्द करके काग लगाकर थोड़ी देर धूप में रख दें और जब सब चीजें एक दिल हो जाय तब उसको उपयोग में लें।

जिस किसी को साँप काटे उसके दंश स्थान पर चाकू से थोड़ा चीरा लगाकर, ४०, ५० बूँद दवा रुई में तर करके उस जगह रख कर पट्टा चढ़ा देना चाहिये और २० बूँद दवा कपड़े में डालकर यह कपड़ा रोगी को सुँघाना चाहिये। अगर जहर ज्यादा व्याप्त हो गया हो और रोगी मूर्छाग्रस्त होकर निर्जीव की तरह हो गया हो मगर उसकी

आँख का प्रकाश कायम हो तो इस दवा का इन्जेक्शन देने से वह पुनर्जीवित हो जाता है, अगर इन्जेक्शन की तुरन्त व्यवस्था न हो सके तो रोगी को २ तोले सरसों के तेल में १० से २० बूँद तक यह दवा डालकर पिला देना चाहिये और ऊपर से गरम पानी पिला देना चाहिये जिससे दस्त और उल्टी के जरिये सब जहर बाहर निकल जायगा। बेहोश रोगी को होश में लाने के लिए इस दवा की दस बूँद नाक में टपकाने से रोगी होश में आ जाता है।

साँप के सिवाय कनखजूरा, छिपकली, पागल कुत्ता और पागल सियार के काटने पर इस दवा के लगाने और सुंघाने से फौरन आराम होता है। उक्त कार्यालय ने अपने विज्ञापन में लिखा था कि इस दुनियाँ में एक भी जहरी जानवर ऐसा नहीं है जिसका जहर इस दवा से न उतरे। बिच्छू के जहर पर अगर इस दवा के लगाने से तुरन्त फायदा न हो तो इसमें थोड़ी-सी मुर्गे की बीट मिलाकर लगाने से फौरन लाभ होता है।

जहर के सिवाय इस दवा के लगाने से हर तरह के जख्म और घाव फौरन आराम हो जाते हैं। रक्तपित्त से अगर हाथ-पांव जल रहे हों तो इस दवाका इन्जेक्शन देने से और लगाने से फौरन लाभ होता है।

जलोदर, पाकस्थली की शून्यता, मस्तिष्क के रोग, मलेरिया, हिचकी वगैरह सम्पूर्ण रोग इस दवा के सेवन से मिट जाते हैं। १००० भाग पानी में एक भाग दवा मिलाकर उस पानी को लेने से प्रलाप, सन्निपात, प्लेग, वगैरह रोगों में शान्ति मिलती है। इस दवा की आधी बूँद रोज लेने से कालरा और प्लेग के दिनों में रोग होने का डर नहीं रहता। थोड़ी-सी रूई को इसमें तर करके उस रुई को दाँत के छिद्र में रख देने से दाँत का कीड़ा नष्ट होकर दाँत का दर्द दूर हो जाता है।

उपदंश एक बहुत भयानक व्याधि है। उसके घाव और चट्ठों पर भी इस दवा को चुपड़ने से बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार श्वेत कुष्ट, बवासीर, सब प्रकार के घाव, चर्म रोग, कारबंकल आदि भयंकर रोगों पर भी यह औषधि बहुत लाभ करती है।

पसली के दर्द के ऊपर साम्हर के सींग को घिसकर उसमें इसको मिलाकर चुपड़ने से और ऊपर से सेक करने से फौरन लाभ होता है।

अगर किसी का कान बहता हो तो इस दवा को २ से ४ बून्द तक लेकर सफेद फूल की हुल-हुल के दस बून्द रस में मिलाकर बादाम के तेल के साथ सवेरे शाम कान में टपकाने से बहुत लाभ होता है।

बवासीर के मस्सों पर भी इसे लगाते रहने से थोड़े दिनों में मस्सें मुरझाकर खिर जाते हैं।

नारू पर अरीठे के फल की मगज, अफीम और गुड़ को समान भाग लेकर बारीक पीसकर उसमें इस औषधि की २।४ बून्द डालकर नारू के स्थान पर रखकर ऊपर धतूरे के पत्तों को गरम करके बाँधने से थोड़े दिनों में नारू भीतर ही भीतर गल कर साफ हो जाता है।

मात्रा—यूनानी मत से मिट्टी के तेल की मात्रा खाने के लिये १ माशे से २ माशे तक है। यह गरम मिजाज-वालों के लिए जिगर, फेफड़ा और सिर को नुकसान पहुँचाता है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये इसबगोल का लुआब और कतीरा मुफीद है।

घिया तरोई

नाम—संस्कृत—हस्तिपूर्ण, राजकोष्टकी, महापुष्पा, महाफला, इत्यादि। हिन्दी—घियातरोई, निनुआ, पुरुला, गिल्की। मराठी—घोंसाले, घड़घोसड़ी। गुजराती—गल्का, तुरिया, गोंसली। तामील—पिक्कू। तेलगू—गुरिबिरा, नेटिबिरा, नूनेबिरा। बंगाल—हस्तीघोषा, धुन्दल। फारसी—खीया। लेटिन—Luffa Pentandrea (ल्यूफा पेएटेन्ड्रिया)।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में सब जगह तरकारी बनाने के काम में आती है। यह एक पराश्रयी लता होती है। इसके पत्ते लम्बे की अपेक्षा चौड़े ज्यादा होते हैं। ये कटे हुए रहते हैं। इसके फल तुरई की तरह होते हैं मगर उनके ऊपर तुरई की तरह रेखा नहीं रहती।

गुण, दोष और प्रभाव--आयुर्वेद के मतानुसार इसका फल स्निग्ध, रक्तपित्त नाशक, मृदु विरेचक और घाव को भरने वाला होता है। इसके अन्दर व्रणरोपक गुण विशेष मात्रा में मौजूद रहता है। इसका बनाया हुआ मरहम सब प्रकार के व्रणों पर लाभ पहुँचाता है। इसका मरहम इस प्रकार बनाया जाता है।

इसके पत्तों का रस २ तोला, घी १ तोला इन दोनों को मिलाकर गरम करना चाहिये। जब रस जल कर घी मात्र शेष रह जाय तब उसमें ३ माशे मोम डालकर फिर गरम करना चाहिये। जब मोम गल जाय तब उसको छानकर ठण्ढे पानी के बरतन पर रख देना चाहिये। इस मरहम को लगाने से सब प्रकार के व्रणों पर लाभ होता है।

इसके रस में गुड़, सिंदूर और थोड़ा सा चूना मिला कर बदगाँठ पर लेप करने से बदगाँठ बैठ जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह कफ निस्सारक पौष्टिक तथा पित्त, तिल्ली के रोग, कुष्ट, बवासीर, ज्वर, फिरंग रोग और पेशाब के साथ खून जाने की बीमारी में लाभदायक है। इसके बीज वमन कारक और विरेचक होते हैं।

गायना में इसके फूलों का पुल्टिस गठानों पर बाँधते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज वमन कारक और विरेचक होते हैं। इनमें सेपानिन रहता है।

घी

नाम—संस्कृत—घृत, नवनीतक, वन्हिभोग्य। हिन्दी—घी, घृत। मराठी—तूप। गूजराती—घी। तेलगू—नेई। फारसी—रोगनेजर्द। अरबी—समन, दुहनुलककर। लेटिन—Butyrum Depuratum (ब्यूटीरम डेप्यूरेटम)।

वर्णन—घी एक मशहूर पदार्थ है जो गाय, भैंस, बकरी इत्यादि पशुओं के दूध में से प्राप्त होता है।

आयुर्वेदिक मत—सुश्रुत के मतानुसार घी सौम्य, शीत वीर्य्य, कोमल, मधुर, अमृत के समान गुणकारी स्निग्ध और उदावर्त, उन्माद, मृगी, उदरशूल, ज्वर और पित्त को दूर करने वाला, अग्निदीपक तथा स्मरण शक्ति, बुद्धि, मेधा, सौन्दर्य, स्वर, लावण्य, सुकुमारता, ओज, तेज और बल तथा आयु को बढ़ाने वाला वीर्य्य वर्धक, अवस्था को स्थापन करने वाला, नेत्रों को हितकारी, विषनाशक और राक्षस बाधा को दूर करने वाला होता है।

यह अजीर्ण, उन्माद, क्षय, रक्त पित्त, व्रण, रुधिर विकार, क्षत, दाह, योनि रोग, नेत्र रोग, कर्ण रोग, दाद, शिरो रोग, सूजन और त्रिदोष को नष्ट करने वाला है। यह अविराम बात ज्वर वाले को हितकारी और आम ज्वर पर विष के समान हानिकारक है।

गुण, दोष और प्रभाव--यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और तर है। यह दस्त को साफ करता है। शरीर को पुष्ट करता है। पित्त और कफ के जमें हुए सुद्दे को बिखेरता है। सीने और गले की जलन को दूर करता है। गले की खुश्की को मिटाता है। दिमाग को ताकत देता है बच्चों के मसूड़ों पर इसको मलने से उनके दाँत जल्दी निकल आते हैं। गरम और खुश्क जहरों के उपद्रव दूर करता है नमक के साथ घी को खाने से वात के उपद्रव दूर होते हैं। सोंठ काली मिरच और लींडी पीपर के साथ घी खाने से कफ की बीमारी में लाभ होता है। सोंठ और जवाखार के साथ घी को मिला कर चाटने से मेदा की कमजोरी मिटती है और भूख बढ़ती है। १३॥ माशे शक्कर के साथ २ तोला घी को मिला कर चाटने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। रात को सोते समय घी को मुँह पर मलने से चेहरे के काले दाग मिटते हैं।

किसी भी जुलाब को लेने के पहले अगर तीन दिन तक घी को काली मिरच के साथ खालें तो आँतें मुलायम होकर मल फूल जाता है और पेट की सब गन्दगी जुलाब के साथ निकल जाती है।

धोया हुआ घी बाह्य उपचारों के लिए अच्छी चीज है। इसका मलहम गठिया, शरीर की सुन्नता पट्ठों का दर्द, जोड़ों की सूजन और पाँव की जलन में लगाने से लाभ होता है। सौ बार का धोया हुआ घी सिर पर मलने से रक्त

पित्त में लाभ होता है। इसी घी को हाथ पांव पर मालिश करने से हाथ पांव में होने वाली बादी की सूजन मिट जाती है इसके मालिश से भिड़ और मक्खी का जहर भी उतर जाता हैं।

गाय का घी--आयुर्वेदिक मत से गाय का घी सब प्रकार के घी से उत्तम होता है। यह बुद्धि, कांति और स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाला, वीर्य वर्द्धक, मेधाजनक, वातकफ नाशक, श्रम निवारक, पित्त को दूर करने वाला, हृदय को हितकारी, अग्निदीपक, पचने में मधुर और यौवन को स्थिर करने वाला होता है। यह अमृत के समान गुणकारी, विष को नष्ट करने वाला, नेत्रों की ज्योति बढ़ाने वाला और परम रसायन है।

यूनानी मत--यूनानी मत से भी गाय का घी सब से बढ़कर है। यह जहर को दूर करता है। चित्त में प्रसन्नता पैदा करता है। शरीर को मजबूत करता है। कफ, पित्त और वात के रोग, सीने का दर्द और शरीर की बेचैनी को मिटाता है।

गाय का दूध और घी मिलाकर पिलाने से अफीम वगैरह स्थावर पदार्थों के विष में लाभ पहुँचाता है। गाय का घी, शहद और गाय के गोबर के रस में मिलाकर पिलाने से रक्तपित्त में लाभ होता है। गाय का गरम घी पिलाने से हिचकी बन्द हो जाती है। खाना खाने के बाद गाय के घी में काली मिरच मिलाकर चटाने से आवाज की खराबी मिट जाती है। गाय का गरम घी सुँघाने से आधा शीशी में भी लाभ होता है।

भैंस का घी—भैंस का घी, उत्तम, स्वादिष्ट, रक्त पित्त नाशक, वात निवारक, बल कारक, शीतल, वीर्य वर्द्धक, भारी, हृदय को हितकारी और पाक में स्वादिष्ट है।

यूनानी मत—यूनानी मत से भैंस का घी मेदे को ढीला करता है। इसको सवेरे खाली पेट शकर, के साथ खाने से पित्त के उपद्रव शान्त होते हैं। यह वायु को मिटाता है, भूख, कम करता है और वीर्य्य वर्धक है।

बकरी का घी—आयुर्वेदिक मत से बकरी का घी अग्निवर्धक, नेत्रों को हितकारी, श्वास, खाँसी और क्षय रोग में लाभदायक, पाक में कड़वा तथा कफ और राजयक्ष्मा रोग को दूर करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से बकरी का घी गरम है। यह खाँसी, दमा और तपेदिक में लाभ पहुँचाता है। कान के बहरेपन में मुफीद है। भूख बढ़ाता है, जल्दी हजम हो जाता है तथा पित्त को फायदा पहुँचाता है।

भेड़ का घी—आयुर्वेदिक मत से भेड़ का घी पाक में हलका, पित्त को कुपित करने वाला, विष नाशक, हड्डियों को बढ़ाने वाला तथा पथरी और मूत्र में जाने वाली शकर को दूर करने वाला होता है। यह वात, कम्प और सूजन में हितकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से भेड़ का घी कफ और वायु की बीमारियाँ पैदा करता है। सब प्रकार के घी से यह घी खराब होता है। गर्भाशय और कम्पन की बीमारियों में लाभदायक है।

घोड़ी का घी—आयुर्वेदिक मत—घोड़ी का घी मधुर, किंचित अग्नि दीपक, कसैला, चरपरा, मल मूत्ररोधक, किंचित वात कारक, गरम, भारी, विषनाशक, नेत्र रोगों को दूर करने वाला तथा कफ और मूर्छा को हरने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से घोड़ी का घी देर से हजम होनेवाला और वायु को दूर करने वाला होता है।

नवीन घी—ताजा घी तृप्ति कारक, दुर्बल मनुष्यों के लिये लाभदायक, रुचिकारक, नेत्रों के लिए लाभदायक और पांडु रोग को नष्ट करने वाला होता है। भोजन, तर्पण, श्रम, बलक्षय, पांडुरोग, कामला और नेत्र रोग में हमेशा ताजा घी का प्रयोग करना चाहिये।

पुराना घी—पुराना घी तिमिर रोग, जुकाम, आम, खाँसी, मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रह की पीड़ा और मृगी रोग को नष्ट करता है। दस वर्ष का रखा हुआ घी उग्र गन्ध वाला, लाख के समान लाल रंग वाला घी पुराना घी कहलाता है। घी जितना अधिक पुराना होता है उतना ही अधिक गुणवान होता है भाव मिश्र ने १ वर्ष के घी को पुराना घी कहा है। मगर दूसरे आचार्यों ने दस वर्ष के घी को ही पुराना घी माना है।

सौ बार धोया हुआ घी—१०० से १००० बार तक ठण्ढे जल से धोया हुआ घी कई रोगों को मिटाता है।

धोया हुआ घी साबुन के झाग जैसा कोमल हो जाता है। यह ठण्डा और शिथिल करने वाला होता है। स्नायु सम्बन्धी मस्तक पीड़ा, श्वास, गठिया, जोड़ों का दर्द, हाथ पैरों को जलन इत्यादि कई रोगों में यह बाहरी उपचार के काम में आता है। खाने के काम में यह घी नहीं लिया जाता।

उपयोग—चातुर्थिक ज्वर— पुराने घी में हींग मिलाकर उसको सुँघाने से चातुर्थिक ज्वर में लाभ होता है।

पांडु रोग—सोंठ की लुग्दी से सिद्ध किया हुआ घी संग्रहणी, पांडुरोग, प्लीहा, खाँसी, इत्यादि रोग में लाभ पहुँचाता है।

हिचकी—थोड़ा सा गरम २ ताजा घी पिलाने से हिचकी बन्द हो जाती है।

स्वर भंग—भोजन के पश्चात् घी में काली मिरच का चूर्ण मिलाकर पिलाने से स्वर भंग मिटता है।

मन्दाग्नि—जीरा और धनिये की लुग्दी से सिद्ध किया हुआ घी वमन, अरुचि और मन्दाग्नि में लाभ पहुँचाता है।

शुक्रदोष—धनिया और गोखरू के क्वाथ और लुग्दी से सिद्ध किया हुआ घी मूत्रघात, मूत्र कृच्छ्र और शुक्र दोष को मिटाता है।

अण्डवृद्धि—गाय के घी के अन्दर सेंधा नमक मिलाकर पीने से और उसका लेप करने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है।

विसर्प रोग—सौ बार के धोये हुये घी का लेप करने से विसर्प रोग में लाभ होता है।

रक्त पित्त—चार भाग अडूसे के रस में एक भाग घी को सिद्ध करके सेवन करने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

अम्ल पित्त—शतावरी की लुगदी से सिद्ध किया हुआ घी अम्लपित्त, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा और श्वास में लाभ पहुँचाता है।

आमवात—चार भाग कांजी के जल में १ भाग घी मिलाकर उसके बीच में सोंठ की लुगदी रखकर आग पर सिद्ध करके उस घी का सेवन करने से आमवात और मन्दाग्नि मिटती है।

परिणाम शूल—पीपल के क्वाथ और कल्क से घी को सिद्ध करके उस घी में असमान भाग शहद मिलाकर चाटने से परिणाम शूल मिटता है।

हृदय रोग—अर्जुन के स्वरस और उसकी लुगदी से घी को शुद्ध करके उसको सेवन करने से सब प्रकार के हृदय रोग मिटते हैं।

बनावटें—फलघृत-मेदा, महा मैदा, मजीठ, मुलेठी, कूट, त्रिफला, खरेंटी, काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध, अजवायन, हलदी, हींग, कुटकी, नीलकमल, दाख, सफेद चन्दन का बुरादा, लाल चन्दन का बुरादा, ये सब चीजें दो २ तोला लेकर बारीक चूर्ण करके सिल पर पानी के साथ पीस कर इनकी लुगदी बना लेना चाहिये। उस लुगदी को कलईदार पीतल की कढ़ाही में रखकर उसमें चार सेर घी और चार सेर शतावरी का रस डालकर हलकी आँच से पकाना चाहिये। जब वह रस जल जाय तब उसमें और चार सेर शतावरी का रस डालना चाहिये। इस प्रकार १६ सेर शतावरी का रस उसमें पचा देना चाहिये। जब सब रस जल जाय तब उसमें १६ सेर गाय का दूध भी चार-चार सेर करके पचा देना चाहिये। उसके बाद उसको उतार कर छानकर रख लेना चाहिये। यह घी खून को बढ़ाने वाला, कामोद्दीपक और अत्यन्त बाजीकरण है। स्त्रियों के योनि रोग, हिस्टीरिया और उन्माद पर भी यह बहुत लाभ पहुँचाता है। बंध्या स्त्री के रजोदोष को मिटाकर उसे सन्तान उत्पत्ति के योग्य बनाता है। इसकी मात्रा १ तोले से २ तोले तक है।

त्रिफलादि घृत—त्रिफला, बच, दन्तीमूल, निसोथ, और कपीला। इन पांचों चीजों को सोलह तोला लेकर पानी के साथ सिलपर पीसकर लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार कढ़ाहो में रखकर उसमें चार सेर गाय का घी और १६ सेर गौमूत्र डालकर हल्की आंच पर पकाना चाहिये। जब घी मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये। इस घी को चार से छः माशे की मात्रा में दूध के साथ लेने से सब प्रकार के कृमि रोग नष्ट होते हैं।

बृहत्कल्याण घृत—नागरमोथा, कूट, हलदी, दारू हलदी, पीपल, कुटकी, काकोली, क्षीर काकोली, बायबिडंग, त्रिफला, बच, मेदा, रासना, असगंध, इन्द्रायण, प्रियंगू, दोनों सारिवा, शतावर, लक्ष्मणा, दन्ती, मुलेठी, कमल, अजमोद, महामेदा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेली के फूल, बंशलोचन, मिश्री, हींग और जायफल। इन सब चीजों को दो-दो तोले लेकर सिलपर पानी के साथ पीसकर लुगदी बना लें। इस लुगदी को कलईदार तांबे की कढ़ाही में रखकर उसमें तीन सेर गाय का घी और १२ सेर गाय का दूध भरकर पुण्य नक्षत्र में मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब दूध जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये।

जिस स्त्री के गर्भ न रहता हो, गर्भ होकर नष्ट हो जाता हो, मरी सन्तान पैदा होती हो, सन्तान होकर मर जाती हों अथवा जिसके लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती हों, ऐसी स्त्रियों को इस घी का १ तोले से २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ लम्बे समय तक सेवन करने से सुन्दर और बलवान पुत्र प्राप्त होता है। अगर पुरुष इस घी का सेवन करे तो उसकी कामशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

बृहत्फल घृत—मोथा, हलदी, दारूहलदी, कुटकी, इन्द्रायण, कूट, पीपल, देवदारू, कमल, काकोली, क्षीर काकोली, त्रिफला, वायविडंग, मेदा, महामेदा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, रासना, प्रियंगू, दन्ती, मुलेठी, अजमोद, बच, चमेली के फूल, दोनों तरह की सारिवा, कायफल, बंशलोचन, मिश्री और हींग। इन सब चीजों को दो २ तोला लेकर लुगदी बनाकर उसमें दो सेर घी और आठ सेर दूध डालकर ऊपर बतलाये तरीके से मन्दाग्नि पर सिद्ध कर लेना चाहिये।

यह घी भी उचित मात्रा में सेवन करने से बृहत् कल्याण घृत की तरह फायदा बतलाता है।

अशोक घृत—अशोक की छाल १ सेर लेकर ८ सेर पानी में पकाना चाहिये। जब दो सेर जल रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। फिर चिरोंजी, फालसा, रसोत, मुलेठी, अशोक की छाल, शतावर, चौंलाई की जड़, मेदा, महामेदा, कांकोली, जीवक, ऋषभक, इन औषधियों को दो २ तोला लेकर और उनकी लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार कढ़ाही में रख कर, उसमें १० तोले मिश्री, ऊपर बताया हुआ २ सेर अशोक का काढ़ा, १ सेर चावलों का घोवन, १ सेर बकरी का दूध, १ सेर कुकुर भाँगरे का रस, १ सेर जीवक का रस और १ सेर घी डालकर मन्दाग्नि पर पकाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब छान लेना चाहिये।

इस घी के सेवन से श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, नीलप्रदर, गर्भाशय का दर्द, कमर का दर्द, योनि का दर्द, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, श्वास और खाँसी नष्ट होते हैं। स्त्री रोगों के लिए यह बहुत अच्छी वस्तु है।

इसी प्रकार सब प्रकार के उन्माद को नष्ट करने के लिए कल्याण घृत, बुद्धि को बढ़ाने के लिये महापैशाचिक घृत, उदर और रक्त रोगों के लिये मंजिष्टादि घृत, महातिक्त घृत, मस्तक रोग के लिये षड़बिंदु घृत इत्यादि अनेक प्रकार के घृत आयुर्वेद में बतलाये गए हैं। जिन्हें चिकित्सा ग्रन्थों में देखना चाहिये।

घी गुवार

नाम—संस्कृत–घृत कुमारी, दीर्घ पत्रिका, बहुपत्री, स्थूलदला, रसायनी। हिन्दी–घी ग्वार, ग्वारपाठा। बंगाली—कोमारी, घृत कोमारी। मराठी—कोरफल, कोरकांड। गुजराती—कड़वीकुँवार, कुँवार। तामील—अंगनि कट लई, कोड़ियन, चिरू कत्तारे। तेलगू—चिंकलवंदी। फारसी—दरख्तेसिन्न। अरबी–मुसब्बर। उर्दू—घीकुआर। लेटिन—Aloe Vera (एलो व्हेरा)

वर्णन—घी ग्वार के क्षुप, खारी जमीन, रेतीली भूमि तथा नदी के तट पर प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होते हैं। इसके पत्ते दो फुट तक लम्बे और चार इंच तक चौड़े होते हैं। इनके दोनों तरफ कांटे होते हैं। ये पत्ते बहुत मोटे और दलदार होते हैं। इन पत्तों को छीलने से इनके भीतर घी के समान गूदा निकलता है। इनके ऊपर लम्बी २ फलियाँ लगती हैं जिनकी शाग बनाई जाती है।

घी ग्वार के रस को सुखाकर उसका १ पदार्थ बनाया जाता है। जिसको संस्कृत में कुमारी रस, कृष्ण बोल, हिन्दी में एलवा, बंगाली में मोशब्बर, मराठी में एलिया, गुजराती में एलियो और तेलगू में मुशाम्बर कहते हैं।

उत्तम एलुआ, कुछ सुनहरी और भूरे रंग का, बाहर से कठिन और भीतर से नरम तथा पारदर्शी होता है। इसका चूर्ण नारंगी रंग का होता है। यह झंझीबार से आता है। जाफराबाद का एलुआ काला होता है। यह हलके दर्जे का होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से घी ग्वार मीठा, कडुआ, शीतल, विरेचक, धातु-परिवर्तक मज्जा वर्धक, कामोद्दीपक, कृमिनाशक और विषनिवारक होता है। नेत्ररोग, अर्बुद, तिल्ली की वृद्धि, यकृत रोग, वमन, ज्वर, खाँसी, विसर्प, चर्मरोग, पित्त, श्वांस, कुष्ठ, पीलिया, पथरी और व्रण में यह लाभदायक होता है।

इसकी फलियाँ मधुर तथा पित्त और कृमियों को नष्ट करने वाली होती हैं।

आयुर्वेद के अंदर धीरे २ लेकिन निर्भयता के साथ निश्चित और रामबाण लाभ पहुँचाने वाली जो थोड़ी सी प्रभावशाली और अमूल्य औषधियां हैं, उनमें घी गुवार अपना एक प्रधान स्थान रखती है। यह औषधि समशीतोष्ण होने की वजह से चाहे जैसी हवा में, चाहे जैसी ऋतु में और चाहे जैसी प्रकृति के रोगी को देने से अपना निश्चित असर बतलाती है। इसके सेवन से मल शुद्धि होती है और शरीर में संचित रोग जनक तत्व निकल जाते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होकर भोजन का पाचन व्यवस्थित रूप से होता है। रस, रक्त वगैरह सप्तधातुओं की शुद्धि होती है। जिससे हर प्रकार की खाँसी, श्वास, क्षय, उदर रोग, वात व्याधि, अपस्मार, गुल्म, नष्टार्त्तव, भोजन के पीछे होने वाला उदर शूल, मन्दाग्नि, कब्जियत, तिल्ली और लीवर के रोग, हलका बुखार, कामला, पांडु, अम्लपित्त, कृमि रोग इत्यादि सब रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

लेप के लिए भी यह एक उत्तम वस्तु है, इसके गूदा को पेट के ऊपर बाँधने से पेट के अन्दर की गाँठ गल जाती है। कठिन पेट मुलायम हो जाता है और आँतों में जमा हुआ मल बाहर निकल जाता है। कामला रोग के अन्दर घी गुवार को देने से दस्त साफ आती है, पित्त का जमाव बिखर जाता है, जिससे आँख और शरीर का पीलापन मिटकर रोग आराम हो जाता है। इस औषधि में रक्त शोधक गुण होने की वजह से विस्फोटक इत्यादि चर्म रोगों में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है। जिन रोगों में खून के अन्दर पित्त का जोर बढ़ जाता है, उसमें इसका उपयोग करने से निश्चित लाभ होता है। इसके उपयोग से मगज की गर्मी शांत होती है। मस्तिष्क का भ्रम दूर होता है। आँखें ठण्डी होती हैं और गर्मी की वजह से आँखों में कोई खराबी पैदा हो जाय तो इसके सेवन से दूर हो जाती है। घी गुवार की जड़ को एक तोला भर लेकर गरम पानी के साथ पिलाई जाय तो वमन होकर बहुत दिनों का पुराना विषम ज्वर मिट जाता है।

इसके रस से बनाये हुए एलुवे में भी इसी के समान गुण रहते हैं। मगर यह इसकी अपेक्षा विशेष गरम होता है। नष्टार्तव, अनार्तव, मासिक धर्म की अनियमितता, हिस्टीरिया, वगैरह स्त्रियों के रोगों पर इसका असर बहुत उत्तम होता है। कब्जियत के ऊपर तो यह एक रामबाण औषधि है। इसके उपयोग से बिना किसी उपद्रव के साफ विरेचन हो जाता है। अगर दूसरी अग्निदीपक औषधियों के साथ इसका उपयोग किया जाय तो बहुत पुराना अग्निमाँद्य, कब्जियत, गोला, कृमि शूल, आफरा और वायु के सब उपद्रव शान्त होते हैं। एलुवा गरम और भेदक होने की वजह से गर्भिणी स्त्री को नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार दूसरे मनुष्यों को भी इसे लगातार कई दिनों तक नहीं लेना चाहिये क्योंकि इससे गुदा में दाह और मरोड़ी पैदा होती है। [जंगलनी जड़ी बूँटी]

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार इस वनस्पति की प्रधान क्रिया पाचन नली के ऊपर होती है। यह पाचन क्रिया और यकृत की क्रिया को सुधारती है। बड़ी मात्रा में लेने से एलुआ विरेचक सूत्रल, कृमिघ्न और आर्तव प्रवर्तक गुण बतलाता है। इसके लेने से मरोड़ी पैदा होकर १०-१२ घण्टे में जोर का दस्त होता है। इसकी प्रधान क्रिया बड़ी आँत और उत्तर गुदा पर विशेष होती है। गर्भाशय, बीज कोष, और बीज वाहक नलियों पर इसका दाह-जनक प्रभाव होकर आर्तव शुरू हो जाता है।

घी ग्वार का स्वरस नेत्र भिश्यन्द, विद्रधि, बवासीर और अग्नि से जले हुए व्रण की शान्ति के लिए हलदी के

साथ मिलाकर दिया जाता है। इससे दाह की कमी होती है। इसके रस को थोड़ी हलदी और सेंधे निमक के साथ खिलाने से कब्ज, मन्दाग्नि के वजह से पैदा हुई खाँसी, मासिक धर्म की रुकावट, पाण्डुरोग, गुल्म, इत्यादि में बहुत लाभ होता है। इससे पाचन क्रिया सुधरकर आँतों में जोश पैदा होता है। दस्त साफ होती है। रस क्रिया शुद्ध होती है। रस की विनिमय क्रिया सुधरती है। नवीन और शुद्ध रक्त उत्पन्न होता है और शक्ति बढ़ती है। छोटे बच्चों और स्त्रियों के लिए यह विशेष उपयोगी पड़ता है। फीका रंग, मोटा पेट, कब्जियत और इन लक्षणों के साथ होने वाली स्त्रियों के मासिक धर्म की रुकावट को दूर करने के लिए घी ग्वार के समान दूसरी औषधि नहीं है। ज्वर में कब्जियत के साथ जीभ की सफेदी और दाह होने पर इस वनस्पति का उपयोग किया जाता है।

बड़ी आँत की शिथिलता, अरुचि, अग्निमांद्य, कब्ज, अजीर्ण, शारीरिक थकावट, पाण्डुरोग और मासिक धर्म की रुकावट में एलुवे का बहुत अधिक प्रयोग होता है।

यौवन के प्रारम्भ से घी ग्वार के गूदा का नियमित रूप से सेवन करने से और उसपर नीम गिलोय का स्वरस बराबर पीते रहने से प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में जब कि इन्द्रियों की शिथिलता का युग प्रारम्भ होता है मनुष्य का यौवन इस औषधि के प्रभाव से सुरक्षित रहता है। हमारे सामने एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है जिसकी अवस्था इस समय ८० वर्ष की है। (हाल ही में उसका देहान्त हुआ है)। जो घर का बहुत गरीब है। जिसको जीवन में कभी पौष्टिक अन्न नसीब नहीं हुआ और जो माँसाहार से हार्दिक घृणा करता है। यह व्यक्ति २० वर्ष की उम्र से अभी तक लगातार घी ग्वार का सेवन करता रहा है। उसका कहना है कि मैं प्रतिदिन ४-५ ग्वार पाठे छीलकर उनका गूदा निकाल कर खा लेता हूँ और उसके ऊपर नीम गिलोय को सिल पर पीस कर उसको आधा सेर पानी में छानकर पी लेता हूँ। इसके सिवाय जीवन भर में कभी दूसरी औषधि का सेवन नहीं किया। इस आदमी की हालत यह है कि शरीर पर एक धोती और पगड़ी के सिवाय उसने कभी कोई वस्त्र धारण नहीं किया। कड़ाके की सर्दी और जेठ महीने की भयंकर गर्मी में हमेशा नंगे बदन और नंगे पैर रहता है। रात को भी उसे ओढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती। उसके दांत की बत्तीसी मोती के दानों की तरह अखण्ड सुरक्षित है और उसका कण्ठ स्वर आज भी बालकों की तरह है। वह आज भी बालकों की तरह गाता है। वह आज भी दिन भर में ४० मील बिना थकावट अनुभव किये चल सकता है। उसने अपने लड़के को भी इस औषधि का सेवन कराया जिसका प्रभाव यह है कि वह लड़का भी अत्यन्त हट्टाकट्टा और स्वस्थ है। एक औसत दर्जे के आदमी से वह दुगना-तिगुना परिश्रम करता है। अभी तक वह दो शादियाँ कर चुका है और तीसरी की फिक्र में है। खाने को बिलकुल सादा कम कीमत का भोजन खाता है।

इसी प्रकार और भी कुछ केसों पर घी ग्वार और नीम गिलोय का साथ प्रयोग करके हमने देखा है और उसमें बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से घी ग्वार दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होता है। किसी किसी के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और तर है। यह पित्त और कफ की खराबियों को दस्त की राह निकाल देता है। तिल्ली की सूजन और पेट के दर्द के लिए लाभदायक है। पाचन क्रिया को तीव्र करता है। कामेन्द्रिय की ताकत को बढ़ाता है। घी ग्वार का लुआब, आँबी हलदी और सफेद जीरे को मिलाकर सूजन पर लेप करने से सूजन बिखर जाती है। इसका हलवा वात की बीमारियों को दूर करता है। सत गिलोय के साथ इसका गूदा खाने से मधुमेह रोग में लाभ होता है। इसका शाग बनाकर खाने से नारू में लाभ होता है। घी ग्वार के गूदा में हलदी का चूर्ण मिलाकर गरम करके पैरों के तलवे पर बाँध देने से दुखती हुई आँखें आराम हो जाती हैं।

बहुत से यूनानी हकीम बवासीर को नष्ट करने के लिए इसको एक बहुत उत्तम औषधि मानते हैं। गन्धना नामक वनस्पति के काढ़े में एलुवे को मिलाकर उसमें सांप की केंचुली का चूर्ण डालकर वे उसका बवासीर के मस्सों पर लेप करते हैं। उनका ऐसा ख्याल है कि बवासीर के रोग को नष्ट करने के लिए इससे उत्तम दूसरी औषधि नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका ताजा रस विरेचक, शीतल और ज्वर में उपयोगी होता है। इसका गूदा

गर्भाशय पर असर दिखलाता है। इसकी जड़ उदरशूल में लाभदायक है। इसमें एलोइन [Aloin] आयसोबारबेलोइन [Isobarbaloin], और एमोडिन [Emodin] नामक तत्व रहते हैं।

उपयोग—नेत्राभिष्यन्द—इसकी गूदा पर हलदी डालकर गरम कर बाँधने से नेत्र की पीड़ा मिट जाती है।

तिल्ली—गवार पाठे के गूदा पर सुहागी भुरभुराकर खिलाने से तिल्ली कट जाती है।

फोड़ा—गवार पाठे के गूदे को पकाकर बांधने से फोड़ा जल्दी पक जाता है।

वायुगोला—गवार पाठे का गूदा ६ माशे, गाय का घी ६ माशा, हरड़ चूर्ण एक माशा, सेंधा नमक एक माशा मिलाकर खाने से वायुगोला मिट जाता है।

मासिक धर्म की अनियमितता—घी गुवार के गूदा पर पलास का खार भुरभुराकर लेने से मासिक धर्म शुद्ध होने लगता है।

उदर रोग—अजवायन को गुवार पाठा के रस की सात भावनाएँ देकर फिर नीबू के रस की सात भावनाएँ देना चाहिये। इस अजवायन को ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में लेने से अजीर्ण, आफरा, मन्दाग्नि और सब प्रकार के उदर रोग मिटते हैं।

नेत्र रोग—इसका १ माशा गूदा लेकर उसमें तीन रत्ती अफीम मिलाकर उसकी पोटली बनाकर पानी में डुबा डुबा कर आंखों पर फेरने से और उसमें से एक-दो बूँद नेत्र में टपका देने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

कर्ण पीड़ा—इसके रस को गरम करके जिस कान में पीड़ा हो उसकी दूसरी तरफ के कान में टपकाने से पीड़ा मिटती है।

बालक का डिब्बा रोग—गुवार पाठे रस में ६ माशे एलवा और १ तोला बबूल का गोंद मिलाकर पीसकर पेट पर लेप करने से बालक का डिब्बा रोग मिटता है।

बनावटें—घीगुवार का अचार—घीगुवार के पत्ते को लेकर उनका सफेद गूदा निकाल कर दो-दो तीन अंगुल के टुकड़े कर लें। ऐसे पांच सेर के टुकड़े लेकर उनमें आधा सेर नमक डालकर खूब हिलावें। उसके बाद बर्तन का मुँह बन्द करके तीन दिन तक धूप में रख देवें और दिन में दो तीन बार हिला दिया करें, फिर उसमें दस तोले हलदी, दस तोले धनियां दस तोले सफेद जीरा, पन्द्रह तोला लाल मिर्च, सवा छै तोले सेकी हुई हींग, तीस तोले अजवायन, दस तोले सोंठ, साढ़े सात तोले काली मिर्च, साढ़े सात तोले पीपर, पांच तोले लौंग, पांच तोले दालचीनी, पांच तोले सुहागा, पांच तोले अकलकरा, दस तोले स्याहजीरा, पांच तोले इलायची, तीस तोले जवाहरड़, तीस तोले राई इन सब चीजों को लेकर जवाहरड़ को छोड़ कर सब चीजों का बारीक चूर्ण करके उसमें मिला दें। जवाहरड़ को साबित डाल दें।

इस अचार को रोगी का बलाबल देखकर छः माशे से दो तोले तक खिलाने से सब प्रकार के उदर रोग, मन्दाग्नि और पेट के वात, कफ सम्बन्धी सभी विकार मिटते हैं। यह अचार बहुत ही स्वादिष्ट और रोचक होता है। सूख जाने पर भी इसको पीसकर दाल और साग में मिलाकर खा सकते हैं।

कुमारी आसव—घीगुवार का गूदा १०२४ तोले, गुड़ ४०० तोले, शहद २०० तोले, मंडूर की भस्म २० तोले इन सब चीजों का मिला कर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, लौंग, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, चित्रक, पीपलामूल, बायबिंडग, गजपीपर, चव्य, धनिया, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला, रासना, देवदारू, हलदी, दारू-हलदी, मुलेठी, दन्ती की जड़, मूरवा, कूट, बलबीज, गोखरू, सोया, अकलकरा, ऊँट कटारा के बीज, सफेद पुनर्नवा की जड़, लाल पुनर्नवा की जड़, चिकनी सुपारी, लोध और सोनामक्खी की भस्म सब चीजें, दो-दो तोले और धावड़ी के फूल ३२ तोले लेकर उनको कूट पीस छानकर उसमें मिलाकर बरणियों में भरकर उनका मुँह बन्द करके अनाज के भीतर गाड़ देना चाहिये। एक महीने के पश्चात् उनको निकाल कर छान लेना चाहिये।

इस आसव को एक तोला से दो तोले तक मात्रा में भोजन के पश्चात् जल में मिलाकर पीने से रक्त शुद्ध होता है। शरीर में बल, कान्ति और वीर्य की वृद्धि होती है। जठराग्नि बहुत प्रदीप्त होती है और यकृत तथा तिल्ली के रोग, पांडु रोग, सूजन, कामला, प्रमेह, क्षय इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है। घी गुवार के साथ मंडूर का योग होने से यह बहुत प्रभावशाली हो गया है।

कुमारी पाक—घी गुवार की जड़ ८० तोले लेकर उसको ३२ तोले गाय के दूध के साथ औटाना चाहिये। जब सब दूध जल जाय तब उसको निकाल कर छाया में सुखा कर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये, फिर सोंठ, काली मिर्च और छोटी पीपर आठ २ तोले और जायफल, जावित्री, लौंग, मालवी गोखरू, कबाबचीनी, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर और चित्रक चार २ तोले लेकर सबका चूर्ण करके घी गुवार के चूर्ण के साथ मिला देना चाहिये। फिर ८० तोला शक्कर, ४० तोला गाय का घी, ४० तोला भैंस का दूध और ४० तोला शहद, मिलाकर, इन सबको धीमी आँच से पकाना चाहिये। जब चासनी अच्छी हो जाय और घी छोड़ दे तब उसको उतारकर ठंडी होने पर उसमें ऊपर लिखा हुआ घीगुवार वगैरह का मिला हुआ चूर्ण डाल दें और ऊपर से एक तोला उत्तम लौह भस्म, एक तोला स्वर्ण भस्म और एक तोला रस सिन्दूर डाल कर अच्छी तरह मिला लें।

इस पाक को एक तोला से दो तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से जीर्ण ज्वर, खाँसी, श्वास, क्षय, मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात इत्यादि अनेक रोगों में लाभ होता है। इससे स्त्रियों के गर्भाशय के सब दोष दूर होकर वे उत्तम सन्तानोत्पत्ति के योग्य बन जाती हैं, इसी प्रकार इसके सेवन से पुरुषों के वीर्य सम्बन्धी सब दोष दूर होकर उनकी कामशक्ति बहुत प्रबल हो जाती है।

चातुर्वङ्ग भस्म—शुद्ध किया हुआ बंग १ तोला, शुद्ध जस्ता १ तोला, शुद्ध सीसा १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला लेकर पहले बंग, जस्ता और सीसे को एक लोहे की कड़ाही में डालकर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब ये तीनों गल जाय तब इनको उतार कर फौरन उसमें पारा डालकर खूब हिलाना चाहिये। फिर कढ़ाई को आग पर चढ़ाकर उसमें थोड़ा २ सुहागा धीरे-धीरे डालते जाना चाहिये और लोहे के मोटे डण्डे से हिलाते रहना चाहिये। जब पीले रंग की भस्म तैयार हो जाय तब उसे उतारकर एक मिट्टी के सरावले में आधे भाग तक पीसा हुआ सुहागा भरकर ऊपर उस भस्म को रखकर उसके ऊपर फिर पीसा सुहागा दाब कर भर देना चाहिये। जब सारा सरावला भर जाय तब उस पर ढक्कन रखकर कपड़ मिट्टी कर पच्चीस सेर उपले कंडों की आग में फूँक देना चाहिये! ठंढी होने पर उस भस्म को निकालकर घीगुवार के रस में घोटकर टिकड़ियाँ बना लेना चाहिये और इन टिकड़ियों को फिर सरावसम्पुट में रखकर कपड़मिट्टी करके दस सेर कंडों में फूँक देना चाहिये। इस प्रकार दस-बीस बार इस भस्म को घीगुवार के रस में खरल करके शराब सम्पुट में फूँकना चाहिये। तब यह उत्तम पीले रंग की भस्म तैयार होती है। इस भस्म की मात्रा एक से तीन रत्ती तक है। यह भस्म सुजाक, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, इत्यादि में बहुत लाभ पहुँचाती है।

सुजाक में इसकी एक मात्रा एक तोला मक्खन के साथ खिलाकर उसके ऊपर एक गिलास दूध की लस्सी में आधा तोला बबूल का गोंद, दस बूँद चन्दन का तेल, दस बूँद बिरोजे का तेल, दस बूँद कबाब चीनी का तेल और दस बूँद बादाम का तेल मिलाकर पीने से पहले ही दिन पेशाब की जलन बन्द हो जाती है।

रक्त प्रदर में—जिसमें धारा प्रवाहीत रक्त बह रहा हो—इस भस्म को बकायन के आधा तोला रस में मिलाकर देने से अत्यन्त चमत्कारिक प्रभाव होता है। इसके साथ ही पाताल गरुड़ी के पत्तों को सिल पर पीसकर उनकी लुगदी बनाकर उस लुगदी में इस भस्म को मिलाकर योनि मार्ग में रखने से बहुत जल्दी फायदा होता है। [जंगलनी जड़ी बूँटी]।

घीगुवार लाल

नाम—संस्कृत—रक्त घृतकुमारी। हिन्दी—लाल घीगुवार। लेटिन-Aloe Rupescens [एलोइरूपेसेंस]।

वर्णन—इसके पौधे बंगाल और सीमाप्रान्त में होते हैं इसके नारंगी और लाल रंग के फूल लगते हैं, इसके पत्तों के नीचे का हिस्सा बैंगनी रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—लाल घी गुवार कड़ुआ, पाचक, किञ्चित् गरम और उदर शूल, मंदाग्नि, बवासीर तथा यकृत और तिल्ली के रोगों में लाभदायक है। इसके गूदा का हलवा बनाकर खाने से बवासीर में लाभ होता है।

इसको स्पिरिट में गलाकर लेप करने से बाल काले पड़ जाते हैं। गुलाब के इत्र में मिलाकर इसे आँखों में लगाने से नेत्र रोग मिटते हैं। निसोत के साथ इसे देने से कब्जियत मिटती है। बच्चों की आँतों के कीड़े मारने के लिए भी यह एक बहुत उत्तम वस्तु है। इसके ताजे गूदा में हल्दी मिलाकर गरम करके बांधने से चोट की सूजन मिट जाती है। रात को सोते समय इसकी गोली देने से सबेरे साफ दस्त होकर बवासीर की पीड़ा में लाभ होता है। इसके रस को काढ़ा करके उस में हलदी मिलाकर, गरम करके बच्चों के पेट पर लेप करने से शूल और फेफड़े सम्बन्धी रोग मिटते हैं। इसी लेप का बड़े आदमियों के पेट पर लेप करने से तिल्ली के रोग मिटते हैं। इसके रस से बनाये हुए एलुवे की थोड़े गन्धक के साथ गोली बनाकर देने से बवासीर की पीड़ा मिटती है। इसके गाढ़े किए हुए रस में शक्कर मिला कर देने से सुजाक मिटता है। इसके कोमल गूदा को खाने से गठिया की पीड़ा में फायदा होता है। इसके गूदा पर रसौत और हलदी भुरभुराकर गरम करके बाँधने से बदगाँठ बिखर जाती है। इसके एक तरफ का छिलका दूर करके अग्नि पर रखकर उस पर थोड़ी अफीम और हलदी भुरभुराकर गरम होने पर उसका रस निकाल कर पीने से चौथिया ज्वर छूट जाता है। (अनुभूत चिकित्सा सागर)।

घीगुवार छोटा

नाम—संस्कृत—लघु घृतकुमारी। हिन्दी—घीगुवार छोटा। लेटिन—Aloe Indica [एलोइण्डिका]।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का गुवार पाठा है। जो मद्रास जिले के दक्षिणी किनारे पर बहुत पैदा होता है। इसके पत्ते एक बालिस्त से एक हाथ तक लम्बे होते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसके पत्तों के गूदा को ठण्डे पानी में धोकर उस पर मिश्री भुरभुराकर खाने से शरीर की गर्मी और रुधिर के भ्रमण का वेग कम हो जाता है। इसके गूदापर थोड़ी फुलाई हुई फिटकिरी भुरभुराकर बाँधने से नेत्र पीड़ा मिटती है। शरीर की सूजन पर इसके ताजे रस का लेप करना लाभदायक है। इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है। इसके साढ़े सात तोले ताजा पत्तों का गूदा निकाल कर उसमें ११। माशे नमक मिलाकर जल में औटाना चाहिये, जब पानी खौलने लगे तब उसे छानकर उसमें २॥ तोला मिश्री मिलाकर प्रातः काल पिलाने से जुलाब लगकर तिल्ली कम हो जाती है। [अ० चि० सा०]

घापाण ❀

नाम—संस्कृत—कपूर पाषाण। मराठी—शिरगोला। हिन्दी—कुलनार, पाणपख। अंग्रेजी—Plaster of Paris प्लास्टर आफ पेरिस। लेटिन—Gypsum Selenite [जिप्सम सेलेनाइट।]

वर्णन—घापाण यह सफेद रंग का कांच के समान चमकता हुआ पत्थर होता है। इस पत्थर को पीस कर दक्षिण के लोग रांगोली बनाने के काम में लेते हैं। बम्बई वगैरह के बाजारों में यह डेढ़ आना दो आना रतल के भाव से बिकता है। पकाये हुए घापाण का बारीक चूर्ण बिलायत से एक २ पौंड के डिब्बों में पेक होकर यहाँ आता है और बिकता है। यह इमारतों के ऊपर चित्रकारी करने के काम में भी आता है।

गुण, दोष और प्रभाव—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि के सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं पाया जाता, मगर आधुनिक गुजराती वैद्यों में इस औषधि का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ता चला जा रहा है। वे लोग इसकी भस्म बनाकर उसको अंग्रेजी औषधि कैलशियम की जगह पर काम में लेते हैं। इसकी भस्म बनाने का तरीका इस प्रकार है—घापाण को लाकर उसके बारीक टुकड़े करके एक दिन गुबार पाठे के रस में भिगों देना चाहिये। फिर उसे मिट्टी के सरावले में भरकर उस पर दूसरा सरावला ढक कर कपड़मिट्टी करके एक गज लम्बे, एक गज चौड़े और एक गज गहरे गड्ढे में ऊपले कंडे भर कर, उन कंडों के बीच में उस सरावले को रखकर आग लगा देना चाहिये। जब आग ठंडी हो जाय तब उसको निकाल कर बोतल में भर लेना चाहिये।

जंगली जड़ी बूटी नामक ग्रंथ के कर्त्ता लिखते हैं कि इस भस्म में हड्डियों को पोषण देने वाला कैलशियम या चूने का तत्व बहुत अधिक परिमाण में रहता है। इसलिये क्षय और शोष के समान रोगों में जहाँ पर डाक्टर केलशियम

की भिन्न भिन्न प्रकार की बनावटें प्रयोग में लेते हैं वहाँ यह भी काम में लिया जा सकता है। खास करके बालकों के सूखा रोग में जिसमें कि बालक दिन प्रतिदिन सूखता हुआ चला जाता है उसमें यह भस्म अच्छा काम करती है। एक या दो वर्ष के बालक को ३-४ रत्ती भस्म घी, मक्खन अथवा शीतोपलादि चूर्ण के साथ मिलाकर दी जाती है और इस भस्म को घी में मिलाकर बालक के शरीर पर मालिश भी की जाती है। इस भस्म के प्रयोग से बहुत से बालकों को अच्छा लाभ होते हुए देखा गया है।

बालशोथ के सिवाय अग्नि से जले हुये स्थान पर इस भस्म को तेल में मिलाकर लगाने से शान्ति मिलती है और इसी प्रकार स्त्रियों के श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, मलेरिया बुखार, बालकों की दुर्बलता और निर्बलता में भी इसको उचित अनुपान के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

रक्तप्रदर पर इसका जो योग बनाकर दिया जाता है वह इस प्रकार है—

घापाण को गौमूत्र अथवा नीबू के रस में डेढ़ घंटा औटाने से वह शुद्ध हो जाता है। ऐसे घापाण को गुवार पाठे के रस में घोटकर टिकड़ियें बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर उसको मेंहदी के हरे पत्तों की लुगदी में रखकर उस पर कपड़ मिट्टी करके एक मन कण्डों की आँच में फूँक देना चाहिये। जब आँच ठंढी हो जाय तब उसे फिर घीगुवार के रस में घोंट कर मेंहदी की लुगदी में रखकर फूँकना चाहिये। इस प्रकार पाँच बार फूँकने पर घापाण की उत्तम भस्म तैयार होती है। यह भस्म रक्त प्रदर के लिये एक उत्तम वस्तु मानी जाती है। इस भस्म को ६-७ रत्ती की मात्रा में ३ माशे जीरा और ६ माशे शक्कर के साथ मिलाकर दिन में २-३ बार देने से भयंकर रक्तप्रदर भी आराम होता है। इस भस्म को साढ़े दस रत्ती की मात्रा में दो रत्ती सोना गेरु मिलाकर देने से श्वेत प्रदर में भी अच्छा लाभ होता है।

अनन्त वात और घापाण—अनन्त वात के रोग पर भी यह औषधि लाभदायक सिद्ध हुई है। इस रोग में इसे देने का तरीका इस प्रकार है।

गेहूँ का आटा दो सेर लेकर उसमें घी का मोण देकर उसको घियातरोई के पत्तों के एक सेर रस में गून्दना चाहिये। फिर उसकी रोटी बनाकर सेंक कर उसका चूरमा कर लेना चाहिये उस चूरमें में एक तोला घापाण की भस्म तथा जरूरत के मुआफिक शक्कर डालकर एक एक छटाँक के लड्डू बना लेना चाहिये। इनमें से एक एक लड्डू प्रातः काल ४ बजे खाकर थोड़ी देर सो जाना चाहिये और तेल, खटाई, मिरची, इत्यादि चीजों से परहेज करना चाहिये। साथ में एरंडी के पत्तों को गरम करके सिर पर बांधना चाहिये। इस प्रयोग को ४-६ सप्ताह तक लगातार करने से अनन्त वात के रोग में अच्छा लाभ होता है।

इसी प्रकार मलेरिया ज्वर, मृगी, हिस्टीरिया इत्यादि रोग में भी इससे फायदा होता है।

घामोर

नाम—हिन्दी—घामोर, गुनरा, घारम। गुजराती—घमघास, गुमघास, दन, दनघास। पंजाब—घमरूर, घमुर, घरन, घिरि, मगरूर। राजपुताना—बनवटी। लेटिन—Panicum Antidotale [पेनिकम एण्टिडोटेल]।

वर्णन—यह वनस्पति कच्छ, भुज, पंजाब और गंगा के उत्तरी मैदानों में बहुत पैदा होती है। इस घास के पौधे २ से ४ हाथ तक ऊँचे होते हैं। ये बरू की तरह दिखाई देते हैं। इसके तने पर फुट-फुट पर गठाने रहती हैं। इस घास को अगर ढोर खाते हैं तो उनको नशा आ जाता है। इसके पत्ते लम्बे और सकरे होते हैं। इसके फूलों की मंजरी बहुत पतली होती है।

गुण, दोष और प्रभाव—इसका धुआँ कृमिनाशक और संक्रामक [छूत] को दूर करने वाला होता है। छोटी माता में इसकी धूनी देने से रोगी को शान्ति मिलती है। गले की तकलीफ में भी यह मुफीद है। इसके

तने को छीलकर पानी में घिसकर पशुओं की आँखों में आँजने से उनकी आँखें बहती हुई बन्द हो जाती हैं और आँखों की फूली भी कट जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति गले के रोगों पर उपयोगी है इसका धुआँ घाव पर लगाने से लाभ होता है।

घोर बेल (चमार मूसली)

नाम—हिन्दी—घोरवेल, कामराज। मराठी—वेन्दरबेल, वेन्द्री। लेटिन—Vitis Araneosa विटिस एरेनिओसा।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिण, पश्चिमी घाट और नीलगिरी में पैदा होती है। यह एक पराश्रयी लता है। इसका फल गोल मटर के आकार का होता है और बीज लम्बगोल होते हैं। इसकी जड़ें गठानदार होती हैं और इन जड़ों पर एक छिलका रहता है। कोकण में औषधि बिक्रेता इसके टुकड़े करके सुखा लेते हैं और उनको चमार मूसली के नाम से बाजार में बेचते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—इसकी जड़ें शीतल, संकोचक और पौष्टिक होती हैं।

LIMITED, NEW DELHI

293

DEBIT

of .... 20.......

Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.	TOTAL P.